महिलाओं की दृष्टि में पुरुष

डॉ पुरुषोत्तम आसोपा

मरुधर साहित्य मन्दिर, बीकानेर

प्रकाशक
मरुधर साहित्य मंदिर
124 बिन्नाणी बिल्डिंग
मलवसागर बीकानेर

संस्करण प्रथम 1987

मूल्य पैंसठ रुपये

आवरण शिवजी

कलापक्ष काहदमसी

मुद्रक
साखला प्रिंटर्स, बीकानेर

Mahilaon Ki Drishti Men Purush By Dr Purushottam Asopa Rs 65 00

प्रेम व प्रेरणा की अजस्र स्रोत
जीवन संगिनी श्रीमती कमला आसोपा
के लिए

मै आभारी हूँ—

— समस्त उपन्यास लेखिकाओ का, उनके उपन्यासो व विचारो का शोध प्रबंध म उपयोग करने के लिए

— गुरुवर डा कन्हैयालाल शर्मा का, शोध निर्देशन के लिए

— अभिन्न डा शिव नारायण जोशी (शिवजी) का, पग पग पर प्रेरित कर उत्साह बढाने के लिए

— भाई सूय प्रकाश बिस्सा का, शोध हेतु सामग्री उपलब्ध कराने के लिए

— विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का ग्रन्थ की प्रकाशन सहायता देन के लिए

— राजस्थान विश्वविद्यालय के कुल सचिव श्री एन के सेठी एव उप कुल सचिव श्री आर एन श्रीवास्तव का तथा प्रोजेक्ट सेक्शन के श्री पी पी पारीक का, यू जी सी की प्रकाशन साहयता दिलाने हेतु कष्ट उठान के लिए

— मित्रवर डा गेवरचन्द आचार्य, श्री प्रेमरत्न व्यास, डा धमचन्द्र जन, डा दिवाकर शर्मा एव श्री हरीश मेहता का, उत्साहवद्धन के लिए

— डा नामवरसिंह का, परीक्षक के रूप मे 'शोध प्रबन्ध की जितनी तारीफ की जाय कम है' कहते हुए इसे हिन्दी शोध को नयी दिशा देने वाला शोध प्रबन्ध बतलाने के लिए

— भाई देवीचन्द गहलोत व श्री वाइदअली का, पुस्तक का आवरण पृष्ठ तैयार करवाने के लिए

— श्री दीपचन्द सांखला व 'सांखला प्रिंटस' के समस्त कमचारी बन्धुओ का, पुस्तक की सुन्दर छपाई के लिए

— डूगर कालेज बीकानेर के विभागीय साथियो का, उनकी शुभकामनाओ के लिए

— बीकानेर के साहित्यकार बन्धुओ व समस्त साहित्यिक सस्थाओ का, साहित्य की समझ पनपाने म सहायक होन के लिए

— सभी मित्रो, हितषियो, परिजनो का, कम की प्रेरणा भरने के लिए

— आत्मज परितोष व पुनीत का शोध हेतु सभी प्रकार के परिश्रम करने के लिए

डा पुरुषोत्तम आसोपा

आमुख

प्रस्तुत पुस्तक हिन्दी म एव सवथा नए प्रकार का शोध प्रयास है। इसमे महिलाओ के उपन्यासो मे चित्रित पुरुष पात्रो का विस्तत अध्ययन करते हुए आज की महिलाओ की दृष्टि मे पुरुष के स्वरूप को स्पष्ट करने की गम्भीर चेष्टा की गई है। समाज म स्त्री और पुरुष दोना उसकी स्थिरता के लिए अनिवाय हैं। कि तु पुरुष प्रधान सामाजिक सोच के वचस्व के कारण अब तक महिलाओ के चिन्तन को अनदेखा किया जाता रहा है। उसकी अपनी भी मान्यताएँ हो सकती हैं या उसकी अपनी भी अलग कोई दुनिया हो सकती है, इस तथ्य की सदव उपेक्षा की जाती रही है। किन्तु अब आधुनिक सस्या को प्रसार के साथ साथ नारी की स्थिति म भी पर्याप्त परिवतन हुआ है। समाज मे आज नारी अपने वास्तविक अधिकारो को प्राप्त करने के लिए सचेष्ट है। दिए गए सोचो का अनुपालन करत चले जाने की जगह अब वह अपने आत्म विश्वास के आधार पर निजी व्यक्तित्व का परिभाषित करने के लिए कृत सकल्प है।

आज नारियो का अपना चिन्तन पक्ष है अपनी मान्यताएँ हैं, अपनी रुचियाँ हैं, अपनी आस्थाएँ है और अपनी ही जीवन दृष्टि है। सामाजिक स्थितयो समस्याओ के प्रति अपने स्वतन्त्र विचार रखती है, उन्हे निस्सकोच अभिव्यक्त भी करती है। उनमे सबसे अधिक पुरुषो के व्यक्तित्व एव आचरण से सम्बन्धित उनकी मान्यताएँ है। पुरुष के व्यक्तित्व के बारे म मानो पहली बार नारियो ने मुह खोलकर कुछ कुछ कहा है। समाज मे वचारिक सन्तुलन के लिए अत आज जिस प्रकार नारियो के प्रति पुरुषो के विचारा की जानकारा अपेक्षित है वसे ही पुरुषो के प्रति नारियो के चिंतन को जान लेना भी अत्यन्त आवश्यक है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध म लेखिकाओ के उपन्यासों म प्रकट होने वाली इसी दृष्टि को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। शोध प्रबन्ध का विचारणीय विषय 'हिन्दी उपन्यास लेखिकाओ के उपन्यासो मे पुरुष चित्रण' है। प्रबन्ध म प्रारम्भ स लेकर महिला वप (1976) तक के उपन्यासो को आधार बनाकर पुरुषो के प्रति महिलाओ की दृष्टि को स्पष्ट करन का प्रयास हुआ है। शोध प्रबन्ध के पहल अध्याय म महिलाओ द्वारा चयनित विषय क्षेत्र को स्पष्ट किया गया है। दूसरा अध्याय 'उपन्यास

लेखिकाओं का व्यक्तित्व एवं जीवन दृष्टि है। तीसरा अध्याय 'महिला उपन्यासकारों के पुरुष पात्र' है। चौथा अध्याय 'महिला उपन्यास लेखिकाओं के उपन्यासों में पुरुष का व्यक्तित्व' है।

शोध प्रबन्ध का अंतिम अध्याय उपसंहार है। इसमें शोध के निष्कर्षों को प्रस्तुत किया गया है। महिलाकृत उपन्यासों के पुरुष पात्रों के निरूपण द्वारा आज की महिलाओं की दृष्टि में पुरुष' को स्थापित करने का प्रयास किया गया है। निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए यह स्पष्ट किया गया है कि उपन्यासों में पुरुष को चित्रित करते समय नारी रूप में लेखिकाओं की दृष्टि क्या रही है? क्या पुरुष का नायकत्व खण्डित किया गया है? क्या पुरुष की सामाजिक प्रधानता को अस्वीकारा गया है? नारी की विवशताओं से इस दृष्टि में किस रूप में आगे बढ़ा गया है? इन बिन्दुओं पर दृष्टि डालने के उपरान्त नारी की दृष्टि में पुरुष, को स्थापित किया गया है।

अध्ययन के द्वारा यह प्रमाणित होता है कि महिलाओं के उपन्यासों में पुरुष के चित्रण में क्रमशः विकास हुआ है। स्वतन्त्रता के पूर्व तक पुरुषों के प्रति पूज्यभाव के दर्शन होते है। यही भावना स्वतन्त्रता बाद के प्रारम्भिक उपन्यासों में भी रही, किन्तु परवर्ती उपन्यासों में पुरुष के प्रति पूज्य भाव में कमी आई। उसके दोषों का उद्घाटन अधिक विस्तार से किया गया और उसके व्यक्तित्व के समकक्ष नारी के व्यक्तित्व को उठाया गया। साठोत्तरी काल में पुरुष के अहंकार, यौन दुर्बलता, पलायनवादिता आदि पर प्रश्न चिह्न लगाए गए। कहीं कहीं उसकी विवशता, लघुता आदि को भी प्रस्तुत किया गया। पुरुष के व्यक्तित्व पर नारी के अहं को प्रत्यारोपित करने का प्रयास भी किया गया। पुरुष का यह व्यक्तित्व जहाँ समकालीन पुरुष उपन्यास लेखकों के पुरुष पात्रों के समकक्ष है वहीं आज के पुरुष की भी सुन्दर अभिव्यक्ति देता है।

हिन्दी में इस प्रकार के विश्लेषणात्मक शोध प्रबन्धों का अभाव है। मैंने अपनी ओर से इस दुष्कर कार्य को करने की यथाशक्ति चेष्टा की है। पुस्तकाकार सामग्री के अभाव में पत्रिकाओं में बिखरी सामग्री का तथा अध्ययन के उपरान्त निर्मित दृष्टि का प्रचुर उपयोग किया गया है। अपने प्रयास में मैं कितना सफल रहा हूँ इसका मूल्यांकन करने का दायित्व विद्वान् समीक्षकों पर छोड़ते हुए मैं शोध की त्रुटियों के लिए अग्रिम क्षमा मांग लेता हूँ।

डा० पुरुषोत्तम आसोपा

अनुक्रम

लेखिकाओ के उपन्यासो मे चयनित कथा-विषय

उपन्यास मानव और उसके जीवन का यथार्थ निरूपण किया करता है। यही कारण है कि युग विशेष के उपस्थित सामाजिक सत्यों का प्रत्यक्ष प्रभाव उपन्यासो के कथानकों पर भी देखा जा सकता है। यथार्थ के अपेक्षित आग्रह के कारण उपन्यासकार सदैव उनमे बँधा रहता है। अपनी मौलिक प्रतिभा से वह जीवन यथार्थ में कल्पना का अद्भुत सम्मिश्रण करते हुए युगसत्य की वास्तविक छवि को चित्रित करने की चेष्टा करता है। मानव जीवन का सफल अकन करना ही उपन्यासकार का मूलभूत प्रयास होता है। उसके पात्र काल्पनिक होते हुए भी वास्तविक प्रतीत होते है। इसी भाँति उपन्यास की घटनाएँ सच्ची न होने पर भी सत्य होने का आभास देती है। इस प्रकार उपन्यासकार अपने कथ्य को कृत्रिम किन्तु यथार्थ प्रतीत होने वाले रूप में अभिव्यक्त करता है।

विषय क्या हो ?

उपन्यासो के समग्र अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इनका विषय क्षेत्र मुख्यत जीवन यथार्थ पर केन्द्रित होता है। इसके अकन में लेखकों का यह प्रयास रहता है कि अपने कथ्य को वे वास्तविकता के निकट बनाए रखे। वैज्ञानिक युग में जब से मानव के सामाजिक मूल्यो में परिवर्तन हुआ है तब से उपन्यासकारों के द्वारा कथानक निर्माण मे भी वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाया जाने लगा है। अब सहज विश्वास या परम्परानुमोदित विश्वासो के आधार पर जीवन की अभिव्यक्ति नही की जाती है। अब उसका यथार्थपरक आधार भी अत्यत आवश्यक समझा जाता है। यही कारण है कि पूर्वापेक्षा सामयिक उपन्यासो का विषय-क्षेत्र न केवल विस्तृत हो गया है वरन् वह जीवन के विविध स्रोतो से प्राप्त सत्य का आकलन करने की भी चेष्टा कर रहा है। आज उपन्यास के विषय को बाह्य जीवन के अकन तक ही सीमित न रखकर व्यक्ति के आतरिक सत्यो के उद्घाटन मे भी सलग्न करना जरूरी हो गया है। इसे देखते हुए अब उपन्यास के विषय क्षेत्र की परिधि को सुनिश्चित् करना आसान नही रहा है। चूँकि किसी एक ही प्रकार की जीवन सामग्री उपन्यास के लिए रूढ़ि नही बन सकती है अत विषय की रूढ़ि या निर्देशक व्यवस्था भी उसकी कथा के निर्धारण के सम्बन्ध में अनिवार्यता के रूप में प्रकट नही की जा सकती है।

बनाए रखते हुए उन्हे विशिष्ट आनन्द की अनुभूति करा सके। स्तरीय साहित्यिक उपन्यासो की अपेक्षा जासूसी, घटना प्रधान, अविश्वसनीय कथा प्रसगो वाले उपन्यासो की माग यह सिद्ध करती है कि पाठक चाहे जितना शिक्षित ही क्या न हो वह सदैव उपन्यासकार से अपने मनोरजन के साधनो की पूर्ति चाहता है। किन्तु जब लेखक उपन्यास के माध्यम से अपने विचार प्रस्तुत करने लगता है तब वह पाठको की अपेक्षाओ की उपेक्षा कर जाता है। अत उपन्यास के माध्यम से अपनी राजनीतिक सामाजिक धार्मिक मान्यताओ या जानकारियो का निरूपण करने के प्रयास मे लेखक पाठकीय जिज्ञासाओ का अपशमन कर देता है।

लेखकीय विचाराभिव्यक्ति के सम्बन्ध मे सामान्य धारणा यह है कि यदि वह अपने विचार उपन्यास मे प्रकट करना चाहता है तो उसे सचेत कलाकार की भाति कथा प्रवाह को बाधा न पहुँचाने वाले प्रसगो के द्वारा ही ऐसा करना चाहिए। डा गणेशन के अनुसार अगर कथा ठोकर खाए बिना ठीक तरह से चलती हो तो उसके साथ थोडी बहुत राजनीति और फिलासफी को सहन किया जा सकता है। ऐसी दशा मे भी यह आवश्यक है कि विषय के साथ इन विचारो का दूध पानी का सा मिलन हो जाय।[7]

लेखक के विचारो के प्रतिनिधि-पात्र

अधिकाश उपन्यासकार अपने विचारो के प्रकाशन के लिए पृथक कथा प्रसगो की रचना के स्थान पर पात्रो का सहारा लिया करते है। वसे भी उपन्यास के पात्र लेखक के चाहे अनचाहे उसके विचारो का ही प्रतिनिधित्व करते है। पात्रो के व्यक्तित्व निर्माण मे उसके स्वय के अनुभव तो प्राय करते ही है चरित्रो के बारे मे उसके पूर्वाग्रहो रुचियो अरुचियो व विचारो का भी अत्यत महत्व होता है। कभी कभी तो पात्रो के बारे मे लेखक की निजी धारणाओ का दबाव इतना प्रबल हो जाता है कि लेखक उनको अभिव्यक्त किए बिना नही रह सकता है। यद्यपि उपन्यास के स्वरूप की दृष्टि से यह कोई अच्छी बात नही है फिर भी ऐसे पात्रो मे लेखक के व्यक्ति विशेष के प्रति की धारणाओ को समझा जा सकता है।

लेखिकाओ के पुरुष पात्र

हिन्दी उपन्यास लेखिकाओ के उपन्यासो मे जो पुरुष पात्र चित्रित हुए है वे अप्रत्यक्षत उपरि उल्लिखित सिद्धान्त के आधार पर यथार्थ जगत् मे लेखिकाओ के पुरुषो के प्रति धारणाओ का सकेतन कर जाते हैं। एक स्त्री के रूप मे ये लेखिकाएँ पुरुष के बारे मे क्या विचार रखती हैं उसी का अकन करना प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का प्रयोजन है।

लेखिकाओं के द्वारा चुने उपन्यास विषय

समानता व स्वातन्त्र्य की बहुचर्चित नारेबाजी के बावजूद भारतीय नारी अनेक सीमाओं में बँधी हुई है। यहाँ की समाज व्यवस्था में पुरुषों को जो अधिकार और सुविधाएँ प्राप्त हैं उनसे नारी आज भी काफी दूर है। हम नारी महिमा की पूजता का गिफ पर की देहरी के भीतर ही दमन के अभ्यस्त हैं। इस कारण नारी के लिए अनेक प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष वंचनाओं की सृष्टि नित्य होती रहती है। लेखिकाओं ने नारी पर होने वाले इन अत्याचारों को गहराई से अनुभव किया है। सम्भवतः के स्तर पर नारी की पीड़ामयी अनुभूतियों से अत्यन्त गहराई से जुड़े होने का लाभ इन्होंने अपने लेखन में भी लिया है। इनके उपन्यासों के विषय इसी कारण मुख्यतः नारी की समस्याओं से ही निर्मित हुए हैं। नारी की समस्याओं से परे प्रेम भावना पारिवारिकता का सत्य, पति पत्नी सम्बन्ध आदि विषयों से सम्बन्धित उपन्यासों में भी मुख्यतः नारी को ही केन्द्रीय महत्त्व प्राप्त हुआ है।

विषय चयन के सम्बन्ध में लेखिकाओं के विचार

नारी ने सिर्फ नारी को ही अपने उपन्यासों का विषय बनाया है इस सत्य को ये लेखिकाएँ भी स्वीकार करती हैं। इस सम्बन्ध में आत्म स्वीकारोक्ति के रूप में सूर्यबाला का यह कथन उचित ही प्रतीत होता है कि 'अक्सर यही कहता है कि लेखिकाओं का क्षेत्र अधिकतर घर और नारी मन रहा है जबकि पुरुष लेखक का घर बाहर दोनों लेकिन हम इस क्षति की पूर्ति भी तो कर लेती हैं—नारी मन की अथाह गहराईयों में पैठकर। और इतना तो मैं दावे के साथ कह सकती हूँ कि नारी के अन्दर इतने गूढ़ निभिस्म गुफाएँ और प्राचीरें हैं कि इनका भेद पाना आसान नहीं—जितनी सहजता और ईमानदारी से नारी भेद सकती है पुरुष नहीं।[4]

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने नारियों के विषय चुनाव को सगत बतलाते हुए कहा है 'यह विचित्र बात है कि स्त्री जब साहित्य लिखती है स्त्रियों के बारे में ही लिखती है और पुरुष जब साहित्य लिखता है तब भी स्त्रियों के सम्बन्ध में ही लिखता है। दोनों में अन्तर यह होता है कि स्त्री के लिखने का उद्देश्य है अपने विषय में फैले हुए भ्रम का निराकरण और पुरुष का उद्देश्य है उसके विषय में और भी भ्रम पैदा करना।[5]

लेखिकाओं के उपन्यासों का विभाजन

लेखिकाओं के प्रायः सभी उपन्यास नारी का एवं उसकी समस्याओं को ही केन्द्र में रखकर लिखे गए हैं। इनके उपन्यासों के ऐसे मर्यादित विषय-क्षेत्र को देखते हुए उन्हें शास्त्रीय परम्पराओं के आधार पर विभाजित करके देखना उचित नहीं है।

त यहाँ लखिकाओ क द्वारा स्वीकृत विषयो के आधार पर निम्नलिखित ढग स भाजित किया जा सकता है—

1 नारी की पीडा को मुखरित करन वाल उप यास
2 सघषशील नारी की कहानी कहन वाल उपन्यास
3 नौकरी पेशा नारी की समस्याओ को प्रस्तुत करन वाल उपन्यास
4 नारी के भटके कदम की त्रासदी का प्रस्तुत करने वाल उपन्यास
5 प्रमाश्रित रोमास चेतना के उपन्यास
6 यौन भावना का मुखरित करने वाल उपन्यास
7 पारिवारिक जीवन के कथानका पर आधारित उपन्यास
8 दाम्पत्य सम्बन्धा का प्रस्तुत करन वाले उपन्यास
9 सामाजिक समस्याआ पर आधारित उपन्याम

नारी की पीडा को मुखरित करने वाले उपन्यास

नारी की पीडा को प्रकट करने वाल उपन्यास सख्या म सबस अधिक है। महिला लेखिकाओ द्वारा चयनित अन्य वस्तु–सेना म भी नारी ही कथा के मूल म विद्यमान है। रजनी पनिकर के 'काली लडकी' बदलत रग, 'दूरियाँ' दुर्गा महेश्वरी का 'जुड हुए पृष्ठ' उवशी शर्मा का 'एक थी सध्या' दिनशनन्दिनी डालमिया का 'मुझे माफ करना' निमला जन का 'मुग्धा', सुनीता का 'सफर के साथी', कान्ता भारती का 'रेत की मछली', शिवानी क 'करवी', 'मायापुरी', 'श्मशान चम्पा', शशिप्रभा शास्त्री क 'नावें', अमलतास, उषा प्रियम्वदा का 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' मालती जोशी का 'पाषाणयुग', शारदा मिश्र का 'नयना' कान्ता सिन्हा का 'सूखी नदी का पुल', मजुल भगत का 'टूटा हुआ इन्द्रधनुष', कृष्णा अग्निहोत्री का 'बात एक औरत की', दीप्ति खण्डेलवाल का 'प्रिया' इत्यादि सभी उपन्यास नारी की पीडा को ही अभिव्यक्त करत है। नारी चाहे शिक्षित हो या चाहे अशिक्षित, प्रगतिशील विचारो की हो या परम्पराआ का पालन करने वाली हो सुन्दर हो चाहे कुरूप समाज म उसे पीडा ही प्राप्त होती है। उसकी भावनाआ का समाज ने सदव निरादर ही किया है।

काली लडकी की रानी अपनी कहानी कहकर झूठी सहानुभूति प्राप्त नही करना चाहती क्याकि काले रग क कारण बाहर तो क्या घर म भी उसे अस्वीकारा जाता है। त्वचा उज्ज्वल न होन पर भी हृदय उज्ज्वल हो सकत ह यह जानन की किस फुरसत है।' 'रग को छोडकर समस्त योग्यता रखन पर भी वह सदव अपनी बडी बहिन के साथ तुलना म रख दी जाती है और सिफ रग के कारण पिछडी रहती है। किन्तु अततोगत्वा कमल के रूप मे उसके गुणा का पारखी उसे प्राप्त हो जाता है। जुडे हुए पृष्ठ' विधवा नारी की पीडा को अभिव्यक्त करता है। पति की मृत्यु पर

परिवार की भत्सना की शिकार मिसज श्रीवास्तव शिक्षित होते हुए भी सामाजिक बधनों की निरर्थक कड़ियों में जकड़ी जाने को विवश हैं। 'सोचा था, आखिर कष्ट के सिवाय कोई समस्या सामने नहीं आयगी परन्तु यहाँ तो ढेरों परम्पराएँ सामने है जिन्हें तोड़ने के लिए कितना संघर्ष करना पड़ रहा है और दुख तो तब होता है जब हम जैसे शिक्षित लोगों को भी परम्पराओं की कड़ियों में बधने को विवश होना पड़ता है।' पुरुष के अत्याचारी रूप का वर्णन इस उपन्यास में विस्तार से हुआ है।[7] नारी और पुरुष की मैत्री पर ही उंगली उठाई जाती है नारी और पुरुष में कोई सम्बन्ध नहीं होता सिर्फ यौन सम्बन्ध होता है।[8] निरुपमा देवी डालमिया का उपन्यास 'मुझे माफ करना' भी नारी की पीड़ा को अभिव्यक्ति देता है। कथा के नायक सेठजी स्वयं तो एकाधिक पत्नियों के पति हैं लेकिन अपनी पत्नियों को वे सीता के आदर्श का पालन करने का उपदेश देते हुए उन्हें पतिव्रत धर्म का पाठ पढ़ाते हैं।

शिवानी के उपन्यासों में वैभव सम्पन्न वातावरण के भीतर से नारी की पीड़ा मुखरित हुई है। मायापुरी की शोभा शिक्षिता भी है और सौन्दर्य की धनी भी है। मानस की सी तरल कान्ति रखते हुए भी विवश और निरुपाय है। परिस्थितियों के वात्याचक्र में उलझी हुई शोभा अनेक कष्ट पाती रहती है। 'श्मशान चम्पा' की नायिका चम्पा का जीवन भी इसी पीड़ा में से गुजरा है। पिता की मृत्यु, माँ की रुग्णता और छोटी बहिन का विधर्मी के साथ भाग जाने से यह अनपेक्षित विवशताओं में धकेल दी जाती है। योग्यता रखते हुए भी चम्पा के लिए नारी होना ही अभिशाप हो जाता है। 'भैरवी' में भी चन्दन की पीड़ा को उभारा गया है। शशिप्रभा शास्त्री का 'अमलतास' रजवाड़ों की मार से पीड़ित नारी की व्यथा कथा को प्रकट करता है। कामदा के लिए भीषण आतप में भी फलने फूलने वाला अमलतास अभिशाप बन जाता है। इस प्रकार रजवाड़ों के गुप्त-वैभव में घुटती जिंदगी की अभिव्यक्ति 'अमलतास' उपन्यास की नायिका कामदा का जीवन करता है। 'नावें' उपन्यास में नायिका मालती सोमजी जैसे स्वार्थ केन्द्रित व्यक्ति से छली जाती है और कुआरी माँ के रूप में पीड़ित होती है। सोमजी उसे रखैल से अधिक सुविधाजनक स्थिति में नहीं रखना चाहते। परिवार उसे अस्वीकार कर देता है और जब वह अपने पैरों पर खड़े होकर अपना तथा पुत्री का भरण पोषण करने लगती तब सोमजी ही उसे बदनाम करने की चेष्टा करते हैं।

उषा प्रियम्वदा का 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' भी शिक्षिता नारी की पीड़ा को प्रकट करता है। नौकरी करते हुए यह परिवार की समस्त जिम्मेदारियों को अपने कन्धे पर उठा लेती है किन्तु उसके लिए उसे अपनी हृदय स्थित भावनाओं को पूरी तरह कुचल देना पड़ता है। नील के साथ उसका प्रेम सम्बन्ध परिवार और समाज दोनों को मान्य नहीं होता और वह कालेज होस्टल की वार्डन के रूप में

पचपन खम्भे और लाल दीवारों के बीच बन्दिनी होकर अपनी आकांक्षाओं को कुचलने के लिए विवश हो जाती है।

शारदा मिश्र का 'नयना' उपन्यास तो पूरी तरह नारी की पीड़ा को ही प्रस्तुत करता है। अछूत होने का अभिशाप नायिका नयना को आजीवन झेलना पड़ता है। मरकर ही वह उस पीड़ा से मुक्त हो पाती है।

मालती जोशी के 'पाषाणयुग' तथा 'ज्वालामुखी के गर्भ में' दोनों लघु उपन्यास नारी पीड़ा को ही प्रकट करते हैं। पारिवारिक परिवेश में ये उपन्यास दहकते ज्वालामुखी में झोंकी गई स्थिति में नारी की व्यथा को प्रस्तुत करते हैं। 'सूखी नदी का पुल' की नायिका भी अधिक उम्र के पुरुष रायसाहब के साथ विवाह करके कष्ट ही पाती है और अन्ततोगत्वा सामाजिक स्थितियों में असम्पृक्त होकर आत्म केन्द्रित हो जाती है। दीप्ति खण्डेलवाल के 'प्रिया' उपन्यास में पुरुष के वासना के रूप के प्रहार से जूझती प्रिया एवं उसकी माँ की पीड़ा को प्रस्तुत किया गया है। यही स्थिति 'आज एक औरत की' उपन्यास की नायिका की भी है। पति के व्यभिचारी रूप से त्रस्त नारी की पीड़ा को इस उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है।

इस प्रकार पारिवारिक एवं सामाजिक विषमताओं में उलझी नारी की पीड़ा को लेखिकाओं ने उपन्यासों का प्रधान विषय बनाया है।

संघर्षशील नारी की कहानी कहने वाले उपन्यास

नारी की पीड़ा को मुखरित करने की चेष्टा से आगे बढ़कर संघर्षशील नारी को अभिव्यक्त करने के लिए भी महिलाओं के द्वारा अनेक उपन्यास लिखे गए हैं। नारी जागरण के साथ ही सामाजिक धरातल पर नारी के चिन्तन में भी पर्याप्त रूपान्तर प्रस्तुत हुआ है। घर के बाहर का क्षेत्र केवल पुरुषों के लिए ही आरक्षित है, इस भावना को नारियों ने तोड़ा है। अब नारी राजनैतिक, सामाजिक, व्यावसायिक सभी क्षेत्रों में पुरुष के समान ही भाग ले रही है। प्रशासनिक क्षेत्रों में भी नारियाँ अब सक्षमता पूर्वक काम कर रही हैं। किन्तु नारी को घर से बाहर निकलने के लिए एक संघर्षपूर्ण लम्बी यात्रा तय करनी पड़ी है। जीवन के हर क्षेत्र में उसने संघर्ष किया है। पुराने प्रतिमानों, विश्वासों, आस्थाओं, स्थितियों से मुकाबला किया है। कहीं वह पराजित होकर हतोत्साहित हो गयी है, कहीं यश और लोकप्रियता की चाह में फैशन की अन्ध तमिस्रा में भटक गई है तो कहीं संघर्षों से जूझते हुए सफल काम भी हुई है। इन लेखिकाओं के उपन्यासों में नारी संघर्ष का यह बहुमुखी रूप अनेक रूपों में प्रकट हुआ है।

उषादेवी मित्रा की लेखनी से इसका समारम्भ हुआ। उनके उपन्यास मुख्यतः नारी संघर्ष को ही मुखरित करते हैं। इनके 'वचन का मोल', 'नष्टनीड़' नारी के संघर्षमय

रूप को ही अभिव्यक्त करते हैं। 'वतन का माल' विषम परिस्थितियों में नायिका के वचनों के मोल को चुकाने के महत्त्व को प्रकट करता है। 'टप्टीड' की कहानी स्वातन्त्र्योत्तरकालीन स्थितियों में नारी के संघर्षमय रूप को सुन्दरता से प्रस्तुत करती है। रजनी पनिकर के अधिकांश उपन्यास नारी के संघर्ष को मुख्यतः आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर नारियों की बाधाओं एवं कठिनाईयों को चित्रित करते हैं। 'मोम के मोती' 'सोनाली दी', 'दूरियां' इत्यादि उपन्यास नारी की ही समस्याओं पर आधारित है। शशिप्रभा शास्त्री का 'नावें' नायिका मालती की संघर्षपूर्ण जीवन गाथा को प्रस्तुत करता है। उषा प्रियम्वदा के उपन्यास भी नारी के संघर्ष भाव को ही मुखरित करते हैं। किन्तु जहाँ 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' की नायिका सुषमा संघर्षों से जूझते हुए थक कर हार जाती है परिस्थितियों के समक्ष पूरी तरह हथियार डाल देती है वहीं 'रुकोगी नहीं राधिका' की राधिका नारी रूप में अपने अहं की रक्षार्थ निरन्तर जूझती रहती है।

नौकरीपेशा नारी की समस्याओं को प्रस्तुत करने वाले उपन्यास

पारिवारिक अथवा वैयक्तिक स्तर पर संघर्ष करने वाली नारियों से वर्किंग वोमेन की समस्याएँ सर्वथा भिन्न हैं। उनका संघर्ष दोहरे आयामों को समेटे हुए है। घरेलू स्तर पर पारिवारिक विषमताओं के साथ ही उसे बाह्य परिवेश से, व्यवस्थाओं से भी टकराना पड़ता है। पुरुष यह कभी बर्दाश्त नहीं कर पाता कि नारी उससे आगे बढ़ जाय। दफ्तरों में इसलिए उनका रुख प्रतिद्वन्द्विता पूर्ण होता है। अधिकांशतः यह भावना महिलाओं के मार्ग में रोड़े अटकाने के रूप में सामने आती है। इसलिए घर और बाहर सर्वत्र उसे पुरुषों के अहं की तुष्टी करनी पड़ती है। चन्द्रकिरन सौनरेक्सा के शब्दों में नौकरी पेशा स्त्री के सन्दर्भ में भी यह बात लागू होती है। उसे पति के पुरुषोचित अहम् को संतुष्ट करने के लिए घर में जहां तक सम्भव हो झुककर पूर्ण समर्पिता गृहलक्ष्मी के सभी कर्त्तव्य पूरे करने होते हैं और कार्यालय में भी जहाँ नारी होने के नाते वह एक लाभनीय वस्तु भी है, अपना संतुलन बनाना पड़ता है।'[9]

रजनी पनिकर ने वर्किंगवूमेन के साथ न्याय किए जाने के लिए विपुल प्रयास किए हैं। अनेक भाषणों, निबन्धों के द्वारा उन्होंने उनकी वेदना को मुखरित करने का प्रयास किया है। उनके प्रति होने वाले अत्याचारों के प्रति अत्यन्त तल्खी के साथ उन्होंने कहा है 'अपनी आजीविका कमाने वाली नारी का संघर्ष ज्यों का त्यों बना हुआ है। पुरुषों की प्रवृत्ति वैसी ही है। नारी को कार्य क्षेत्र में आज भी उतनी ही दिक्कत उठानी पड़ती है जितनी पहले उठानी पड़ती थी। कार्यकुशलता के अलावा भी नारी को चतुर होना पड़ता है नहीं तो उसे विफलता हाथ लगती है। प्रति

पुरुषो म वसी ही है । उनके उपयास 'मोम के मोती',
द्विद्वता की भावना पशा नारियो की समस्याओ को ही उद्घाटित करते है । 'मोम
सोनाली दी नौकरी । माया स्वावलम्बिता के लिए नौकरी करनी है किन्तु उसका
क मोती की नायिक अय समुदाय के व्यक्ति उसे सतीत्व का सौदा करने वाली
सेठ और समाज क हत है । इसके विपरीत सोनाली की पीडा भिन्न प्रकार की है ।
साधारण नारी समस्य कारण इसे एक परिवार म नौकरी करनी पडती है व परिवार
आर्थिक विपन्नता क । बिगडी हुई आदतो को नियन्त्रित करने के अलावा उसे
की एकमात्र क या क का विरोध भाव भी झेलना पडता है ।
पारिवारिक सदस्या रेल की मछली' निरुपमा सेवती का 'पतझड की आवाजें',
कान्ता भारती का सो क्या जाने पीर पराई', चन्द्रकिरन सौनरेक्सा का 'चन्दन
मीरा महादेवन का प-यासा म भी वर्किंगवूमेन की विभिन्न समस्याओ को मु-रता
चादनी त्यागि उ पय बनाया गया है । रेल की मछली' की नायिका को नौकरी
म उपयास का वि आती है उसका चित्रण उपयास के अन्त म विस्तारपूर्वक हुआ
दूकन म कठिनाईया वाज मे दफ्तरो की जि दगी की हकीकत का नायिका की
है । पतझड की अ म स प्रस्तुत किया गया है । नायिका को प्रमोशन के लिए अफ
समस्याओ क साथ्य नियन्त्रण उसका अफसर देता है और ऐसा न करने पर
शालिनी वमन का मी उसे प्रमोशन नही दिया जाता है । 'सो क्या जाने पीर
योग्यता रखते हुए माधवी नौकरी करने बम्बई म निकलती है किन्तु उस उसके
पराई की नायिका ल परिचित पुरुषो, सहयोगियो से सिर्फ धोखा मिलता है ।
जीवन म आने वा किंग वूमेन की दोहरी बाधाओ को उद्घाटित किया गया है ।
चन्दन चादनी म व र वाले उसे नौकरी करने की इजाजत नही देते किन्तु जब वह
नायिका गरिमा के उसके विवाह को टालने रहते है । जब वह प्रेम विवाह कर
एसा कर लेती है ना नी ससुराल म भी दोहराई जाती है । मानसिक तनावो से मुक्ति
लती है तो यही कहा वह नौकरी छोडने का निश्चय करती तो उसके इस निर्णय
पाने क लिए जब के सास ससुर ही होते है । इसी प्रकार 'पचपन खम्भे लाल
के पहल विरोधी उन नारी' इत्यादि उपयासो म प्रसगवश नौकरीपेशा स्त्रियो की
दीवारें नायें, 'अ रा गया है ।
कठिनाइयो को उभा

नारी के भटके कदम । की त्रासदी को प्रस्तुत करने वाले उपयास

जब किसी कारण स नारी के कदम भटक जाते है तो उसके लिए समाज मे विपत्तियो
की सृष्टि हो जाती है । पारिवारिक पीडाओ के अतिरेक के कारण या यौवन की
भावनाओ म बहक उठने पर जो पीडा नारी को भोगनी पडती है वह अनजानी नही
है । इन लेखिकाओ ने नारी क भटके कदम की पीडा को भी उपयासो का विषय
बनाया है । वतमान समाज व्यवस्था मे पुरुष अवैध सम्बन्ध स्थापित करके भी

निर्दोष ही समझा जाता है जबकि नारी के लिए ऐसा करना अभिशाप बन जाता है। कृष्णा सोबती के 'डार से बिछुडी' उपन्यास में डाली से बिछुडी हुई नायिका के पीडित जीवन को ग्रामीण परिवेश के मध्य प्रस्तुत किया गया है। घर में जब अत्याचार उसकी सहन-शक्ति से परे हो जाता है तो नायिका एक रात को घर से भाग जाती है। यही से उसकी व्यथा कथा शुरू होती है। उसके जीवन में न जाने कितनी स्थितियाँ और पुरुष आते हैं और उसके लिए अपने अपने ढंग से अनजानी पीडाएँ खीच लाते हैं। अन्त में डार से बिछुडी नायिका अपने भाई के द्वारा ही उबारी जाती है। प्रकाशवती के उपन्यास 'अनामा' की नायिका सुषमा भी ऐसी ही पीडा को भोगती है। शशिप्रभा शास्त्री के उपन्यास 'नावें' की नायिका मालती की पीडा का कारण भी उसका बहक जाना है। यही व्यथा-कथा कतिपय भिन्न परिवेश में मंजुल भगत के 'टूटा हुआ इन्द्रधनुष' में चित्रित हुई है। इन सभी नायिकाओं के चित्रण में लेखिकाओं ने सहानुभूतिपूर्ण रुख अपनाया है एवं अपने विषय को तदनुरूप मान्यताओं के परिपार्श्व में विकसित किया है।

प्रभावित रोमांस चेतना वाले उपन्यास

रजनी पनिकर का विचार है कि नारी में भोग की अपेक्षा रोमांस की भूख अधिक प्रबल होती है।[11] लेखन के माध्यम से नारी का यह रोमांस भाव उसके उपन्यासों में भी प्रकट हुआ है। इन उपन्यासों में प्रमुखतः नारी की प्रेमजनित विफलता, उसकी दमित भावनाएँ, प्रेम के क्षेत्र में पुरुषों द्वारा दिए गए धोखे आदि को ही अभिव्यक्ति दी गई है। इनमें उषादेवी मित्रा का 'जीवन की मुस्कान', रजनी पनिकर के 'पानी की दीवार', 'महानगर की मीता', 'सोनाली दी', निर्मला वर्मा का 'निर्झरिणी और पत्थर', विद्या मिश्र का 'संशय', मालती परूलकर का 'इन्तो', शिवानी के 'मायापुरी', 'चौदह फेरे', 'श्मशान चम्पा', उषा प्रियम्वदा का 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' इत्यादि उपन्यास प्रमुख हैं।

'जीवन की मुस्कान' का युवा डाक्टर कमलेश प्रेम में विश्वास नहीं करता किन्तु सविता की प्रेम भावना के आगे उसे झुकना पड़ता है। किन्तु उसके हृदय परिवर्तन तक वह विरक्त हो जाती है और विफल प्रेम की यह कथा समाप्त हो जाती है। 'पानी की दीवार' प्रेम के मनोवैज्ञानिक विकास की कहानी कहने वाला श्रेष्ठ उपन्यास है। बालसखा से प्रेम करने वाली नायिका नीना उसके विदेश चले जाने पर शिमला के कालेज में लेक्चरर बन जाती है। यहाँ शान्त अन्तर्मुखी दिलीप का व्यक्तित्व उसे भा जाता है। इस प्रकार उसके प्रेम में द्वैतभाव का बीजारोपण होता है। नीना के अन्तर्द्वन्द्व को इस प्रकार उपन्यास में सुन्दर ढंग से उभारा गया है। 'सोनाली दी' में सोनाली की विषम

परिस्थितियों में दबकर सामने आई भावना को प्रस्तुत किया गया है। प्रेम भावना को सजोए रखने पर भी यह घर की नौकरानी के दर्जे के कारण मुख से कुछ कह नहीं पाती। जबकि परिस्थितियाँ व नाटकीय प्रसंग उसे ऐसा करने को विवश करते हैं। निमला दर का उपन्यास प्रेम की विचित्र कथा है। कथा का अन्त पुरानी शैली में सभी प्रमुख पात्रों की समाप्ति के साथ हो जाता है। विद्यामित्र का संघर्ष' प्रेम को लेकर आदर्शमय त्याग भावना को प्रकट करने वाला साधारण उपन्यास है। नायक प्रमोद और नायिका मीना की प्रेम भावना प्रतिकूल परिस्थितियों में फलित नहीं हो पाती और वे प्रौढ़ावस्था में अपने बच्चों का विवाह कर सन्तोष करते हैं। 'इन्दो' में भी प्रेम का आदर्श रूप वर्णित हुआ है। इन्दो और राज का बाल्य परिचय यौवनागम के साथ प्रेम के रूप में परिणत हो जाता है किन्तु प्रतिकूल परिस्थितियों के घात प्रतिघात में वे परिणय सूत्र में बंध नहीं पाते। 9678

शिवानी के उपन्यासों में रोमांटिक परिवेश अधिक उजागर हुआ है। इनके प्रायः सभी उपन्यास असफल प्रेम कहानियाँ को ही प्रस्तुत करते हैं तथा उनमें प्रेम का भाव अदृप्त ही रहता है। इसी भाँति पूर्वराग के विविध सुन्दर प्रसंगों को भी इनके उपन्यासों में प्रस्तुत देखा जा सकता है। 'कृष्णकली' में आरम्भ का भाव प्रेम का रूप धारण ही नहीं कर पाता। एक दूसरे की योग्यता, गुण एवं सौंदर्य से आकर्षित होकर प्रीति की पगडंडियाँ निर्मित की गई हैं। 'कजा', 'रथ्या' जैसे उपन्यासों में प्रेम का इकतरफा निरूपण ही हुआ है। दूसरे पक्ष से प्रेम का प्रतिदान मिला भी है तो इतने विलम्ब से कि बाजी हाथ से निकल चुकी होती है। 'मायापुरी' की शोभा की प्रेम भावना भी दबी दबी है। सतीश की कायरता से उसका प्रेम भाव सफल काम नहीं हो पाता। इसका परिणाम अनेक कष्टों के रूप में शोभा को भोगना पड़ता है। पुरुष होकर भी मनीष परिस्थितियों के समक्ष घुटने टेक देता है इसलिए यह उपन्यास विफल प्रेम कहानी बनकर रह जाता है। 'चौदह फेरे' में प्रेम भावना अन्ततोगत्वा सफल होती है। नाटकीय ढंग से हुआ नायिका अहिल्या और राजू का परिचय प्रेम भाव में परिणत होकर पुष्ट होता है युद्ध में मृत घोषित राजू कुछ माह बाद लौट आता है और अहिल्या नियुक्त पति के साथ विवाह को छोड़कर उसके पास पहुँच जाती है।

पचपन खम्भे लाल दीवारें' भी प्रेम प्रधान उपन्यास है। उषा प्रियम्वदा का यह उपन्यास नारी जीवन की विवशता के माध्यम से प्रेमजनित पीड़ा को अभिव्यक्त करता है। एक लघु घटना से नील और सुषमा का परिचय प्रेम के रूप में परिणत हो जाता है। सुषमा के लिए यह प्रसंग जहाँ उसके जीवन के बहुत बड़े शून्य को भरता है वहीं पारिवारिक उत्तरदायित्वों के वहन करने में बाधक सिद्ध होता है।

भावनात्मक स्तर पर वह नील से जुड़कर समस्त बाधाओं को भूल जाती है किन्तु वैचारिक धरातल पर वह स्व कर्त्तव्यों से मुक्त नहीं हो पाती। अन्ततोगत्वा सुषमा परिस्थितियों के समक्ष हार जाती है और उपन्यास एक विफल प्रेम कहानी में समाप्त होता है। इस प्रकार यह उपन्यास प्रेम भावना की रूमानियत का आधुनिक परिवेश में सुन्दरता से चित्रित करता है। दीप्ति खण्डेलवाल का 'प्रिया भी प्रेम जनित विपन्नताओं को प्रकट करता है। प्रिया की माँ तक वह स्वयं प्रेम के नाम पर छली जाती है।

इस प्रकार नारी लेखिकाओं ने नारी की कोमल अनुभूतियों से युक्त प्रेम भावना का इन उपन्यासों में सुन्दरता से वर्णित किया है। नारी की पीड़ित जिन्दगी की तरह अधिकांश नायिकाएं विफलकाम होकर पीड़ित ही होती हैं। प्रेम भावना सामान्यत अदृप्त ही रही है। उसके विकसित होने में सामाजिक विधि निषेधों के साथ ही नारी की विवशताएं ही बाधक रही हैं।

यौन भावना को मुखरित करने वाले उपन्यास

हिन्दी उपन्यासों में यौन भावनाओं का निरूपण अधिक पुराना नहीं है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के लेखन के साथ ही यौन भावना को भी उपन्यास का विषय बनाया जाने लगा। किन्तु इनमें यौन समस्याओं का ही उद्घाटित करने का प्रयास अधिक हुआ। डा गणेशन के शब्दों में 'जहाँ तक हिन्दी के यौन मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का सम्बन्ध है उनमें काम अमुक्ति या कुण्ठा ही एक विषय है जिसके अध्ययन में हमारे लेखकों ने अपनी सारी प्रतिभा का उपयोग किया है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि अगर हम हिन्दी मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की यौन सम्बन्धी कुण्ठा मात्र का अध्ययन करें तो हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास साहित्य का अध्ययन करीब करीब पूर्ण हो जायगा।'[10]

साठोत्तरी काल तक आते आते महिला लेखिकाओं ने भी इस विषय पर उपन्यास लिखने शुरू किए। नारी के स्वभावज यौन शील भाव को चुनौती देते हुए यौन सम्बन्धों का खुला चित्रण ही नहीं किया जाने लगा वरन् नारी की काम अमुक्ति को एवं एतद्विषयक प्रतिक्रियाओं को भी खुले शब्दों में चित्रित किया गया। कृष्णा सोबती के 'मित्रो मरजानी' और 'सूरजमुखी अंधेरे के' दोनों उपन्यास यौन समस्या पर ही आधारित हैं। मित्रो की पीड़ा कामजनित कुण्ठा से सम्बन्धित है। जिस परिवेश में पैदा होकर वह बड़ी हुई है उसमें लज्जा का भाव अपरिचित वस्तु है। कामज्वर से दग्ध मित्रो संस्कारी पति के साथ तथा ससुराल में और सब तरह से तो एडजस्ट कर लेती है किन्तु यौन अमुक्ति के कारण उसका व्यवहार असामान्य हो जाता है। जेठ जेठानी को भी बेबाक शब्दों में अपनी पीड़ा कह

सुनाती है। इस प्रकार यौनात्मक नारी की पीड़ा का इतनी साफगोई के साथ प्रकट करने वाला समूचे हिन्दी साहित्य का यह अकेला उपन्यास है। किन्तु 'सूरजमुखी अँधेरे के' की नायिका रत्ती की समस्या भिन्न प्रकार की है। बचपन में ही बलात्कार की शिकार होने से इसका नारीत्व बुझ जाता है। अतिशय सम्वेदनशील व्यक्तित्व की धनी रत्तिका का प्रारम्भिक जीवन उस दुघटना के निरतर बोध के कारण प्रतिक्रियाशील हो जाता है। उम्र बढने के साथ उसका आक्रोश कम हो जाता है और वह आत्मलीन होकर बुझ सी जाती है। अनेक पुरुष उसके जीवन में आते हैं किन्तु वह ठण्डी बेजान ही रहती है। अन्त में दिवाकर के साथ ऊष्मा को प्राप्त करके भी वह उसे अपना नहीं पाती। इसी प्रकार मृदुला गर्ग का 'उसके हिस्से की धूप', ममता भारती का 'रेत की मछली', कृष्णा अग्निहोत्री का 'बात एक औरत की' उपन्यास भी यौनाश्रित कथानकों पर आधारित हैं।

पारिवारिक जीवन के कथानकों पर आधारित उपन्यास

अब तक उल्लिखित सारे उपन्यास विषय वैविध्य रखते हुए भी एकमेव नारी को ही केन्द्रस्थ बनाए हुए थे। नारी के सीमित घेरे से बाहर निकल कर लेखिकाओं ने अन्य विषयों के रूप में प्रमुखत परिवार को अभिव्यक्ति दी है। परिवार के बीच नारी का सारा जीवन व्यतीत होता है। उसकी चेष्टाओं, सघर्षों का आधार परिवार ही है। सयुक्त परिवार की ह्रासमान स्थितियाँ तथा खोखले सम्बन्धों की उथली आत्मीयता का सुन्दर निरूपण इन उपन्यासों में हुआ है जिनमें एक ही परिवार में निकट रहते हुए भी परिवार के लोग एक दूसरे से कोसों दूर चले जाते हैं। एक ही छत के नीचे रहते हुए भी परिवार के सदस्य एक दूसरे से अपरिचित होकर अनजानी दूरियों को पा लेते हैं। इन सभी स्थितियों पर लेखिकाओं ने कुछ सुन्दर उपन्यास लिखे हैं। मीरा महादेवन का 'अपना घर', रजनी पनिकर का 'सोनाली दी' मालती जोशी के 'ज्वालामुखी के गर्भ में' तथा 'पाषाणयुग' उपन्यास पारिवारिक कथानकों पर ही आधारित हैं।

'अपना घर' की मुख्य कथा यहूदियों के एक परिवार से सम्बन्धित है। इस्राइल बनने पर सारी दुनिया के यहूदी वहाँ चले जाते हैं। भारत के यहूदियों को भी अपने देश में जाने की ललक उठती है। किन्तु यहाँ दो सौ वर्षों तक उन्हें जैसी आत्मीयता मिली थी वैसी अन्य देशों के यहूदियों को नहीं मिली थी अत यहाँ के यहूदी अपने देश में जाना चाहकर भी भारत नहीं छोड़ना चाहते थे। ऐसे ही एक यहूदी परिवार की द्वन्द्व भावना का चित्रण इस उपन्यास में हुआ है। परिवार का मुखिया मेखाएल इस्राइल चला जाता है लेकिन उसके परिवार के लोग भारत का मोह नहीं छोड़ पाते और अनेक कष्टों में शुलमिथ परिवार की एक सूत्रता बनाए रखती है। अन्त

म मेराण्ल भी लौट आता है। इस प्रकार परिवार की कथा के माध्यम स लेखिका ने यहूदी परिवार की जीवन पद्धति उनके आचार विचार, रीति रिवाज, धार्मिक विश्वास एवं संस्कारो को विस्तार के साथ वर्णित किया है। राष्ट्रीयता क स्तर को दृढता प्रदान करता यह उपन्यास पारिवारिक परिवेश को अच्छे ढग से प्रस्तुत करता है। कृष्णा सोबती का मित्रो मरजानी भी परिवार की आधार भूमि पर स्थित है। किन्तु मित्रो की काम अभुक्ति की प्रखर अभिव्यक्ति के कारण यह सारा पारिवारिक उपन्यास ही नही रह पाता। फिर भी तीन भाईयो क सयुक्त परिवार की दृढता दुलारचन्द की यन्त्रणा की त्याग एव स्वार्थ सकुल मनोवृत्ति को सम्यक विस्तार मिला है। रानी पनिघर के सातारानी दी की कथा भी पारिवारिक परिवेश म ही अग्रसर होती है।

मालती जोशी के उपन्यास परिवार को ही विषय बनाकर लिखे गए हैं। लेखिका परिवार के प्रति इतनी प्रतिबद्ध है कि अपनी लेखनी स उसके बाहर की दुनिया पर कुछ भी लिखने म अपने आपको असमर्थ महसूस करती है। स्वय उन्ही के शब्दो म मेरा लेखन क्षेत्र सीमित है दाम्पत्य। मेरी कहानियो की दुनिया घर आँगन म ही सिमिट कर रह गई है। भीडभाड से बचकर मैं अपनी इस छोटी सी दुनिया म व्यस्त हूँ।'[13] धर्मयुग म प्रकाशित इनके दोनो लघु उपन्यास 'ज्वालामुखी के गर्भ मे' और 'पाषाणयुग' दोनो ही परिवार की बात को हमारे सामने रखते है। 'ज्वालामुखी के गर्भ म' का कथानक दो बहिनो के इर्द गिर्द घूमता है। दोनो अपने अपने कारणो से क्षुब्ध हैं फिर भी अपने परिवारो को साथ रखने को विवश हैं। यह सयुक्त परिवार इसी से कुण्ठाओ का घर बन जाता है और प्रत्येक सदस्य अपने को जलते हुए ज्वालामुखी म झोंका हुआ पाता है। छोटी बहिन की ईर्ष्या मौसाजी का तटस्थ भाव एव बच्चो का पारस्परिक सम्बन्ध अत्यत सुन्दर ढग स पारिवारिक परिवेश मे चित्रित किए गए हैं। पाषाणयुग भी परिवार की ही कथा है। अनमेल विवाह की पीडा को परिवार मे उपेक्षित पत्नी की दुखद कथा के माध्यम म वर्णित किया गया है।

इस प्रकार पारिवारिक परिवेश पर आधारित इन उपन्यासो म भारतीय परिवार की आधुनिक झाँकी को नारी के दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया गया है। छोटी छोटी साधारण प्रतीत होने वाली बातें परिवार के सगठन के लिए कितनी महत्वपूर्ण होती हैं उसे इन उपन्यासो के कथ्य से देखा जा सकता है। पुरुषो से ऐसे समग्र पारिवारिक कथानको वाले उपन्यासो की अपेक्षा करना गलत है। नारी ही परिवार की इन सूक्ष्म सम्वेदनाओ की धडकन को पकड सकती है और उन्हे साधिकार अभिव्यक्त कर सकती है।

दाम्पत्य सम्बन्धों को प्रस्तुत करने वाले उपन्यास

आधुनिक जीवन की जटिलताओं ने पति पत्नी सम्बन्धों पर तीव्र प्रहार किया है। तत्कालीन सामाजिक स्थितियां, ह्रासमान जीवन मूल्यों तथा अर्थाभावों ने वैवाहिक जीवन की एकतानता को खण्डित किया है। इन सब कारणों ने पति पत्नी सम्बन्धों में आपसी तनाव की सृष्टि की है। गृह कलह व पारिवारिक कारणों की अनुपस्थिति में अब एक दूसरे की रुचियां, संस्कारों, मान्यताओं एवं विश्वासों का अभाव उन्हें पीड़ित करता रहता है। यही कारण है कि आज के उपन्यास का एक मुख्य विषय पति पत्नी सम्बन्धों का निरूपण हो गया है।

पुरुषों की ही तरह नारियों ने भी इस महत्त्वपूर्ण जीवन पहलू को उपन्यासों में उभारा है। चूंकि पत्नी रूप में लेखिकाएँ भी इन तनावों को भोग रही हैं इसलिए पत्नी की बात को इनके द्वारा अधिक सफलता से प्रस्तुत किया गया है। इस उपन्यासों में रजनी पनिकर के 'जाड़े की धूप' 'महानगर की मीता', इन्दिरा मित्तल का 'स्मृतियां रह गई', कान्ता भारती का 'रेत की मछली', शशिप्रभा शास्त्री का 'नावें', मृदुला गर्ग का 'उसके हिस्से की धूप' दीप्ति खण्डेलवाल का 'वह तीसरा' मालती जोशी का 'पाषाणयुग' कान्ता सिन्हा का 'सूखी नदी का पुल' इत्यादि प्रमुख हैं। 'जाड़े की धूप' में यह समस्या केवल सतही धरातल पर चित्रित हुई है। पांच वर्षीय बच्चे की मां भारती अपने पति पवन से असन्तुष्ट होकर अजय की ओर आकर्षित होती है। किन्तु उसके द्वारा छले जाने पर इसे आत्मबोध होता है। इस प्रकार आदर्शात्मक ढंग से उपन्यास की कथा का अन्त होता है। 'महानगर की मीता' की नायिका मीता भी पति अजय की भ्रमर वृत्ति से प्रताड़ित होती है। 'नावें' उपन्यास का उत्तरार्द्ध पति-पत्नी सम्बन्धों पर आश्रित है। मालती की वर्जनाओं से [illegible] का जीवन यौन कुण्ठाओं से भर जाता है और वह नीरस रसिकताभरी जिन्दगी जीने के लिए विवश हो जाता है। पति पत्नी के सम्बन्धों का कामजनित कुण्ठाओं के साथ गुम्फित रूप से चित्रित किया गया है। ठीक ऐसी ही स्थिति 'मितो मरजानी' उपन्यास में भी है जहां मित्रो की काम अतृप्ति पति पत्नी के मध्य तनाव का कारण बनती है। 'रेत की मछली' उपन्यास भी अप्रत्यक्षतः पति पत्नी सम्बन्धों पर प्रकाश डालता है। समूचा उपन्यास नायिका कुन्तल की करुण गाथा है और [illegible] शोभन की [illegible] वृत्ति को प्रकट करता है। यही दोनों के मध्य तनाव की सृष्टि करती है। [illegible] के दर [illegible] में नायिका प्रतिमा की व्यथा कथा को पति पत्नी सम्बन्धों के [illegible] पर अभिव्यक्ति मिली है। उपन्यास की [illegible] है कि यह दो [illegible] का एक ही कलेवर में प्रस्तुत करता है। [illegible] समाधान। इस प्रकार उपन्यास में [illegible]

[illegible]

मार्मिक प्रसगो के साथ रूपायित किया गया है। 'उसके हिस्से की धूप' भी नायिका मनीषा के जीवन चरित के साथ साथ पति पत्नी सम्बन्धो पर प्रकाश डालता है। पहला पति जितेन औद्योगिक व्यस्तताओ मे इतना लिप्त रहता है कि मनीषा की ओर विशेष ध्यान नही दे पाता। अत मनीषा क्रमश मधुकर की ओर आकर्षित होती है। जितेन को छोड़कर वह मधुकर से विवाह करती है किन्तु कुछ समय के बाद मधुकर की भावनाएँ भी सूख जाती हैं। जीवन के जिस अभाव की पूर्ति के लिए वह दो पतियो को अपनाती है वह पूर्ण नही होता और वह तनावग्रस्त शापित जीवन जीने को विवश होती है।

पति पत्नी सम्बन्धो को सर्वाधिक गरिमा के साथ प्रस्तुत करने वाला उपन्यास 'वह तीसरा' है। दीप्ति खण्डेलवाल के इस उपन्यास मे पति पत्नी सम्बन्धो का ही प्रमुख प्रतिपाद्य बनाया गया है। सदीप और रजिता के बीच तीसरा कोई नही है। दोना प्रेम विवाह करते हैं कि तु कुछ समय बाद ही प्रेम का मायावी तिलिस्म टूट जाता है। तब यथार्थ अपने कटुतम रूप मे सामने आता है जो दोना की चेतना को झकझोर जाता है। वे सारे प्रसग जो कभी दोना को प्रेम के सूत्र म बाधते थे अब कटुता और वमनस्य का कारण बन जाते हैं। प्रेम जो दोना को जोडता था क्रमश अधिकार की माग बन जाता है। वे दोनो एक दूसरे से अपना अधिकार मागने लगते है और प्रतिदान मे कुछ भी देने को तयार नही होते। इसी से दोना का अह उन्ह अलगाव के घेरे मे धकेलने लगता है। समपण एव प्रेम का रूप समाप्त होकर तनाव के दायरे म जा पहुँचता है। इस प्रकार पति पत्नी के बीच कोई तीसरा न होने पर भी 'वह तीसरा' प्रविष्ट हो जाता है जो उन्ह निरन्तर टकराने को मजबूर करता रहता है।

पति पत्नी सम्बन्धो की व्याख्या करने वाले ये उपन्यास निस्सन्देह प्रेम के तिलिस्म के टूटने की कहानी कहते है। रोमानी भावुकता का पर्दा जब हटता है तो यथाथ के क्रूर थपेडो के कारण पति पत्नी सहज नही रह पाते और आपसी तनाव की भावना से क्रमश टूटते रहते है। यह विषय आज के जीवन का यथाथ है। इस पर लेखिकाओ की कलम इतने सशक्त ढग से चली है कि उस स्तर को पुरुषो की लेखनी छू नही पाई है।

सामाजिक समस्याओ पर आधारित उपन्यास

प्रेमचन्द काल से ही उपन्यासो म सामाजिक समस्याओ का निरूपण किया जाने लगा था। सामाजिक यथाथ की अभिव्यक्ति के लिए तदनुरूप कथानक निर्मित किए जाने लगे और समाज की अनेक समस्याओ का उल्लेख हुआ। प्रारम्भ मे आदशवादी दृष्टिकोण के कारण समस्याओ का यथासम्भव समाधान देने की चेष्टा भी की गई। किन्तु शीघ्र ही लेखको को लेखक और समाज सुधारक के भेद का बोध हो

गया तब से उपन्यासों में समस्याओं का समाधान करने की परिपाटी समाप्त हो गई। प्रेमचन्दोत्तर काल में यथार्थवादी आग्रह के कारण मनोवैज्ञानिक और प्रगतिशील चिन्तन के आधार पर कथानक निर्मित होने लगे फिर भी सामाजिक उपन्यासों का पूरी तरह अकाल नहीं पड गया।

महिला लेखिकाओं का लेखन भी ऐसे ही दौर में से होकर गुजरा है। इनके द्वारा भी प्रारम्भिक काल में समस्याओं का समाधान करने की प्रवृत्ति से मुक्त होकर आज के यथार्थवादी चित्रण तक सीमित रहने वाले उपन्यास लिखे गए। उषादेवी मित्रा के उपन्यास सामाजिक ही हैं। 'पथचारी', 'सम्मोहिता', 'नष्टनीड', 'पिया' सभी का सामाजिक कथानक है। कंचनलता सब्बरवाल के 'मूकप्रश्न', 'भोनीभूत', '[illegible]', 'भटकती आत्मा', 'त्रिवेणी', 'अनचाहा', 'स्नेह के दावेदार' सभी सामाजिक उपन्यास हैं। 'मूकप्रश्न' में शारीरिक सौन्दर्य की तुलना में मानसिक सौन्दर्य को श्रेष्ठ बतलाया गया है। 'भोनीभूत' भी ऐसा ही सुधारवादी उपन्यास है जो पापी से नहीं पाप से घृणा करने की बात कहता है। '[illegible]' में सामाजिक घटना प्रसंगों को [illegible] परिवेश में चित्रित किया गया है। इनके अन्य उपन्यासों का स्वर भी प्रायः सामाजिक सुधारवादी दृष्टिकोण लिए हुए है।

स्वातन्त्र्योत्तर काल में भी सामाजिक उपन्यास लेखन की यह परम्परा अनवरत चलती रही। रजनी पनिकर के 'ठोकर', 'प्यासे बादल' सामाजिक समस्याओं का उद्घाटन करने वाले उपन्यास हैं। 'ठोकर' में मध्यवर्गीय समाज की [illegible] को नारी की ईर्ष्या के माध्यम से चित्रित किया गया है। 'प्यासे बादल' में [illegible] को उभारा गया है। [illegible] के 'वेदना' [illegible] भी सामाजिक समस्याओं पर आधारित हैं। 'वेदना' [illegible] सामाजिक चेतना से सम्प्रेषित [illegible] किया गया है। [illegible] [illegible]

[illegible]

माहौल में [illegible]

[illegible]

मीना सरकार का समस्या का समाधान पद्मासुधि का 'उल्टे काँटे सीधे फूल' सामाजिक समस्याओ पर आधारित हैं। चन्द्रकिरन सोनरक्सा का 'वचिता' नारी पर होने वाले सामाजिक अत्याचारो को प्रस्तुत करता है। शारदा मिश्र के 'नयना' उपन्यास मे हरिजन बाला की करुण कथा के द्वारा हिन्दुओ म अस्पृश्यता की समस्या को उठाया गया है।

मन्नू भण्डारी का 'आपका बटी' तलाक की समस्या को सशक्त ढग स प्रस्तुत करता है। तलाक के कारण पति पत्नी के जीवन की कटुता भले ही समाप्त हो जाय बच्चे के जीवन मे वह विष घोल जाता है। बच्चे की सहज प्रेमानुभूति माता पिता दोना के प्रति होती है किन्तु तनावो के कारण उनके अलग हो जाने से बच्चे की स्थिति त्रिशकु की सी हो जाती है। विवाह के साथ ही तलाक की यह समस्या युग की प्रमुख समस्याओ मे से है। इस समस्या को या तो पत्नी की दृष्टि से देखा गया है या फिर पति की दृष्टि से किन्तु मन्नू भण्डारी का 'आपका बटी' बच्चे की दृष्टि से इस समस्या का उद्घाटन करता है। इस प्रकार हिन्दी उपन्यासो मे यह पहला उपन्यास है जिसमे एक विशेष परिस्थिति मे पडे हुए बच्चे की मन स्थिति का इतने विस्तृत फलक पर चित्रांकन किया गया है। बटी हमारे सामने आधुनिक युग के लिए एक चुनौती बनकर खडा है। वह हममे अपनी स्थिति के लिए जवाब माग रहा है और हम शायद जवाब देने मे बिलकुल असमथ है।[15]

ममता कालिया के दोनो उपन्यास 'बेघर' और 'नरक दर नरक' युगीन समस्याओ को सुन्दर ढग से चित्रित करते हैं। 'बेघर महिला द्वारा पुरुष के अन्तमन की बात को प्रकट करने का पहला समथ प्रयास है। नारियो न नारी की बात तो कही है पर पुरुषो के मन मे झाँककर देखने का प्रयास सिफ 'बेघर म हुआ है। परमजीत के व्यक्तित्व एव उसकी मान्यताओ के चित्रण के द्वारा नारी की ओर से मानो लेखिका यह प्रकट करना चाहती है कि आज का पुरुष भले ही अपने को कितना ही आधुनिक और प्रगतिशील घोषित करदे वह सस्कारो से इतना अधिक जकडा हुआ है कि नारी के साथ न्याय नही कर पाता। कुल मिलाकर 'बेघर' औसत व्यक्तियो का एक असम्बद्ध जगत है जिसम नजदीकी के साथ परायापन सम्बन्धो के बीच अजनबीपन तथा तुर्शी को भरे चुटकीलेपन के साथ द्रवित करने वाली करुणा है।[16] 'नरक दर नरक मे स्वातन्त्र्योत्तरकालीन भारतीय सामाजिक असगतिया को उभारा गया है। जातिवाद धार्मिक असहिष्णुता बेकारी शिक्षितो की कुण्ठाएँ शक्षणिक जगत् मे व्याप्त भ्रष्टाचार, वगभेद राजनताओ के झूठे आश्वासन, महानगर की समस्याएँ साहित्यकारो का दोमुहापन इत्यादि अनक सामयिक विसगतियो का विस्तारपूर्वक उभारा गया है। जोगेन्दर साहनी की मधपगाथा आज के प्रत्येक युवा

0 महिलाआ की दृष्टि म पुरुष

के सघप को प्रकट करती है। अत कहा जा सकता है कि ममता कालिया ने सर्वाधिक यथाथवादी ढग से सामयिक समस्याओ का सस्पश किया है। 'बेघर' की ही तरह पुरुष के भीतर को उद्घाटित करने का प्रयास आशासिह के 'दो वष' उपन्यास म हुआ है 'दो वष' की अवधि को समेटे हुए यह उपन्यास आधुनिक युवा मनोहर के स्वतन्त्र चितनपक्ष एव तदनुरूप जीवनयापन पद्धति को वर्णित करता है। विवाह जसे नाजुक मामले पर विचार करते हुए उपन्यास उसमे मैच्योरिटी आदि का महत्त्व दर्शाता है।[17]

अस्तु, लेखिकाआ द्वारा स्वीकृत सामाजिक कथानको का फलक भी अत्यन्त विस्तृत है जिसमे वतमानकालीन विविध समस्याओ को औपन्यासिक विषय बनाया गया है। नारी की कसौटी पर इन समस्याओ को देखा परखा गया है। यथाथवादी आग्रह के प्रबल होने के साथ इन सामाजिक विसगतियो को अधिक तुर्शी के साथ प्रस्तुत किया जाने लगा। इन विषयो का सस्पश करते हुए लेखिकाआ ने अपनी सामाजिक चेतना का प्रदशन किया है और विकासमान युगधारा की अनेक विडम्बनाओं को उद्घाटित करने का प्रयास किया है।

निष्कष

नारी लेखन के विषय क्षेत्र के उपर्युक्त विश्लेषण के बाद हम सहज ही इनके लेखन के सम्बन्ध मे यह कह सकते है कि इनके उपन्यासो मे नारी को ही प्रमुख प्रतिपाद्य के रूप मे चुना गया है। लेखिकाओ ने अपने उपन्यासो को नारी की पीडा की अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप म स्वीकार किया है। इसलिए इनके लेखन के पीछे विशिष्ट साहेश्यता परिलक्षित होती है। किन्तु इससे रचनाकार की स्वायत्तता का ह्रास हुआ है। कथ्य का स्थूल और पूव निर्धारित रूप ही उपन्यास मे प्रकट हुआ है। वस्तु निरूपण में सामान्यत फलाव का अभाव है और घटना बहुलता मे तथा वणन बाहुल्य ने इनके चिन्तन पक्ष का तिरोहित कर दिया है। जीवन के नाना क्षेत्रो को वस्तु का विषय नही बनाया गया है। नारी की दु खद स्थितियो घर-परिवार के सकुचित दायरे स बाहर निकलकर विषय निर्वाचन के अन्य प्रयास अनुपस्थित है। बाह्य दृष्टि से सीमित दृष्टिगत होते हुए भी उपन्यासो के विषयो में वविध्य विस्तार अधिक है। नारी की पीडा वजिवृमेन की समस्याएँ, सघपशील नारी की कहानी भटके कम्म की पीडा प्रेमाश्रित रोमांटिक भावना योनाश्रित भावना सामाजिक एव पारिवारिक अनेक प्रसगो पर उपन्यास लिखे हैं। एक ही विषय पर अलग अलग दृष्टियो मे लेखनी चलाई गई है इसलिए बाह्य दृष्टि से सीमित प्रतीत होन वाला इनका विषय क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। नारी न लेखनी धारण कर अपनी प्रतिभा का अधिकाधिक प्रबल ढग मे प्रतिपादन किया है।

लेखिकाओ क उपन्यासो म चयनित कथा विषय

उपन्यासों में घटनाओं प्रसंगों का चित्रण, वस्तु विराम, विषय निरूपण सभी में अपनी बात को कहने की प्रवृत्ति प्रधान है। लेखिकाओं पर पूर्व धारणाओं, मान्यताओं, विषयगत निष्कर्षों को सबल निजल ढंग से स्थापित करने का प्रयास हुआ है। नारी को मुख्य प्रतिपाद्य बनाने के कारण पुरुष को परोक्ष ढंग से चित्रित किया गया है। किन्तु उसके पीछे लेखिका की चिंताधारा और मान्यताओं की प्रत्यक्ष उपस्थिति है। परवर्ती काल में 'बेघर' जैसे उपन्यासों में पुरुष के भीतर झाँककर देखने की चेष्टा भी हुई है। जहाँ पुरुष चित्रण प्रत्यक्ष नहीं है वहाँ घटनाओं की तथा अन्यान्य प्रसंगों की उद्भावना कर उसे अभिव्यक्ति दी गई है। सामान्यत नारी की समस्त बाधाओं के लिए पुरुष को दोषी ठहराने का प्रयास हुआ है। इस प्रकार पुरुष पात्रों का चित्रण भी पर्याप्त मात्रा में हुआ है और उसमें महिलाओं की पुरुष सम्बन्धी मान्यताओं को समझा जा सकता है।

संदर्भ

1 हिन्दी उपन्यास शिल्प और प्रयोग से उद्धृत–पृ 44
2 डॉ त्रिभुवनसिंह–हिन्दी उपन्यास वस्तु और शिल्प–पृ 44
3 डॉ गणेशन–हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन–पृ 173
4 क्या लेखिकाओं का लेखन दायरा सीमित है ? साप्ताहिक हिन्दुस्तान 11 मई 1975–पृ 39
5 स्त्री प्रतिभा और उसका निर्माण कमला पत्रिका अक्टूबर 1939–पृ 3
6 काली लड़की –पृ 1
7 जुड़ हुए पृष्ठ पृ –41
8 वही–पृ 48
9 दिनमान 6 जुलाई 1975–पृ 39
10 मेरी रचना प्रक्रिया ज्ञानोदय अक्टूबर 1968–पृ 101
11 पति के अतिरिक्त पुरुष मित्र (परिचर्चा) रजनी पनिकर धर्मयुग 16 मार्च 1975–पृ 34
12 हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन–पृ 316
13 प्रश्नो के सात घरे और आठ लेखिकायें (परिचर्चा) प्रभु जोशी द्वारा प्रस्तुत साप्ताहिक हिन्दुस्तान 1 अप्रैल1973
14 गंगाप्रसाद विमल ज्ञानोदय अगस्त 1967
15 गोपालराय समीक्षा जुलाई 1971–पृ 3
16 रामदेव आचार्य समीक्षा जुलाई 1971–पृ 7
17 डॉ शशि शर्मा कादम्बिनी अप्रैल 1976

उपन्यास लेखिकाओ का व्यक्तित्व और जीवन दृष्टि

उपन्यास लेखिकाओ का व्यक्तित्व

उपन्यास का निर्माण प्रत्येक उपन्यासकार अपने व्यक्तित्व के आधार पर करता है। रचना से अनुपस्थित रहते हुए भी वह अपनी रचना मे पूरी तरह उपस्थित रहता है। लेखक का अपना व्यक्तित्व होता है जिसके निर्माण के लिए उसकी शिक्षा, पारिवारिक परिवेश, सस्कार, मान्यताएँ, आस्थाएँ, रुचियाँ अरुचियाँ इत्यादि उत्तरदायी होते हैं। सामाजिक स्थितियो से वह भी आम व्यक्ति की तरह जुडा रहता है किन्तु उसकी अनुभूतियाँ सजग रहती है। अपनी मान्यताओ और आदर्शों के अनुरूप जीवन यापन करते समय उसे जो पात्र और स्थितियाँ प्रभावित कर जाती है उन्ही को वह अपने ढग से उपन्यास मे अभिव्यक्ति दे दिया करता है। अत उपन्यास रचना के मूल मे लेखक का अपना व्यक्तित्व अत्यत महत्त्वपूर्ण होता है।

महिलाओ के उपन्यास लेखन के सदर्भ म उनके व्यक्तित्व का अभिज्ञान कर लेना इसलिए भी आवश्यक है कि सामाजिक दृष्टि से नारियो की भारत म सदा से विशिष्ट दशा रही है। समाज म उनकी स्थिति मुख्यत बाधित रही है। आधुनिक युग नार्युत्थान और उनकी स्वतत्रता का युग रहा है। इसके द्वारा नारी शिक्षा के साथ उनको समानाधिकार भी प्रदान किए गए है, जिनके कारण आज की नारियो के व्यक्तित्व म पर्याप्त परिवर्तन हुए हैं। एक ओर वे प्राचीन मूल्यो से अभी तक जुडी हुई है तो दूसरी ओर नव शिक्षा तथा बौद्धिक जाग्रति के कारण उनम आधुनिकता का समावेश भी हुआ है। लेखिकाओ के व्यक्तित्व निर्माण के इन घटको को अलग-अलग बिन्दुओ म यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

प्रारम्भिक परिवेश

अधिकांश लेखिकाओ का बाल्यकाल एव प्रारम्भिक जीवन सम्पन्न अथवा मध्यवर्गीय परिवेश मे व्यतीत हुआ है। राजस्थान मे जन्मी मन्नू भण्डारी अपने पिता की सबसे छोटी और लाडली बेटी हैं। यही कारण है कि इनमे विद्रोह की भावना सबसे अधिक प्रस्फुटित हुई है।[1] कृष्णा सोबती पजाब के गाव की सोंधी मिट्टी म पलकर बडी हुई हैं इसी कारण इनम जीवन के प्रति सहजता की भावना प्रबल है। उन्ही के शब्दो मे— खर्च करने का ढग मेरा न बहुत छोटा है न बहुत बडा। माँ

सीला कि जो भी सच करा यह न लग कि लुटाया जा रहा है। पिताजी म यह कि ऐसे सच करो कि अपने को भी गालिस जरूरत न लग। शक लगे।'[2] राजस्थान के बूदी जिल के ननवा गाँव म जन्मी कृष्णा अग्निहोत्री उसी माटी स अपने सस्कार प्राप्त कर सकी।

शिवानी का जन्म राजकाट (सौराष्ट्र) म हुआ है और कुमाऊँ स आपका सम्बन्ध सदव भाग्यहीन सन्तान का सा रहा है जा जन्मत ही माँ स विछुड जाती है।[3] आपके पिताजी विदेश की शिक्षा, रोबीले व्यक्तित्व और कठोर अनुशासन के कारण प्रिंस वग म बहुत जनप्रिय थ।[4] पिता क साथ अनेक रियासता म रही तथा इनकी शिक्षा शान्तिनिकेतन म हुई। चन्द्रकिरन सोनरेक्सा का जन्म नौनहरा छावनी (पशावर) म हुआ। पिताजी अग्रेजा की सेना म स्टारकीपर थ। परिवार म आयसमाजी वातावरण था फिर भी इनकी शिक्षा अधिक न हो सकी।

उपादेवी मिश्रा की शिक्षा दीक्षा मट्रिक तक ही हो सकी किन्तु 'साहित्यिक परिवार के साहित्यिक वातावरण मे जन्म लेने के कारण साहित्यिक सस्कार विरासत् क रूप म प्राप्त किए।[5] चार पुत्रियो एव तीन पुत्रो की मा दिनशर्ना दनी डालमिया को भी पिता के यहा स लिखन पढने का शौक लगा था। उ ही के शब्दा म याद नही कब से लिख रही हूँ। बचपन से ही लिखने की काफी प्रेरणा मिली। छपी विवाह के बाद ही। पारिवारिक जीवन की कुछ घटनाए लिखन के लिए प्रेरित करती रही।[6]

शैक्षणिक योग्यताएँ

शक्षणिक योग्यता की दृष्टि स प्राय सभी लेखिकाएँ पूण समृद्ध हैं। आजादी स पहल की लेखिकाआ म उच्च शिक्षा का उतना प्रचार दृष्टिगत नही हाता जितना उसके बाद। वतमान युग की प्राय सभी लेखिकाएँ स्नातक है। इनम स अधिकाश न स्नातकोत्तर तक की शिक्षा प्राप्त की है। ज्यादातर लेखिकाए अग्रेजी साहित्य म एम ए हैं। कुछ हि दी म एम ए हैं। उदू सस्कृत, का भी कुछ को पर्याप्त ज्ञान है। कचनलता सब्बरवाल, कृष्णा अग्निहोत्री, उपा प्रियवदा सूयबाला शशिप्रभा शास्त्री बिन्दु अगरवाल, सुनीता इत्यादि लेखिकाए शोधकाय कर पी एच डी की उपाधि भी प्राप्त कर चुकी है। शक्षणिक दृष्टि स सम्पन्न हान के कारण ही ये लेखिकाएँ विविध जीवनानुभवो का यथाथ के धरातल पर सहज अभिव्यक्ति देन म सक्षम रही हैं। प्रारम्भिक दौर की लेखिकाआ की रचनाआ मे जसी उपदेशात्मकता और भावुक आदशवादिता उपस्थित थी वह अनुपस्थित होकर इन लेखिकाआ के शक्षणिक याग्यताआ के सम्बल स परवर्ती उपन्यासो मे यथाथ के रूप म परिणत हुई।

व्यवसाय
आर्थिक परावलम्बिता भारतीय नारी की सबसे बड़ी विवशता रही है। इसी कारण पति के समक्ष अथवा अन्य दशाओं में परिवार के पुरुषों के समक्ष उसे सदैव झुककर चलना पड़ता है। किन्तु अब नारियां भी आर्थिक स्वावलम्बिता अर्जित कर अपने पैरों पर खड़ी होने लगी हैं। लेखिकाएँ भी इसका अपवाद नहीं है। अधिकांश उपन्यास लेखिकाएँ स्वतन्त्र जीविकोपार्जन कर रही हैं। इस कारण इन्हें जीवन में एक साथ तीन प्रकार की भूमिकाएँ निभानी पड़ती हैं। पहली आजीविका सम्बन्धी कार्यों को करना और उनसे जुड़ी हुई समस्याओं से जूझना। दूसरी---घर में पत्नी और मां की भूमिकाओं का निवाह करते हुए गृहस्थी के झंझटों से जूझना। तीसरी---इन दोनों भूमिकाओं से बचे हुए समय में अपने भीतर के लेखक को जगाकर लेखन कार्य सम्पन्न करना। इन समस्त बाधाओं के रहते हुए भी अपने पैरों पर खड़े होने के सुख के लिए व परिवार की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए ये लेखिकाएँ जीविकोपार्जन करती है।

अधिकांश लेखिकाएँ अध्यापन का कार्य करती हैं, कुछ रेडियो से जुड़ी हुई है तो कुछ लेखिकाएँ प्रशासनिक दायित्वों का भी सकुशल निवाह कर रही हैं। तुलनात्मक दृष्टि से व्यवसाय कम और लेखन कम में लेखिकाएँ प्राथमिकता प्रायः जीविकोपार्जन को ही देती हैं। लेखक के रूप में पर्याप्त प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेने वाली मन्नू भण्डारी का कथन है कि 'यों शौक में आकर लिख लिखा भले ही लूं, लेकिन मेरी असली लाइन तो पढ़ाना ही है।[7] लेखक से अपने अध्यापक व्यक्तित्व को अधिक सम्मानित करते हुए वे अन्यत्र कहती हैं--- यदि भैरव प्रसाद गुप्त मेरी कहानी 'मैं हार गई' को कहानी पत्रिका में न छापते तो शायद मेरा परिचय एक अध्यापिका के रूप में ही दिया जाता। यह दूसरी बात है कि आज भी मैं अपने को अध्यापिका पहले मानती हूँ, लेखिका बाद में।[8]

आकाशवाणी में प्रोग्राम डायरेक्टर की पदेन व्यस्तताओं और घर में पारिवारिक दायित्वों का निवाह करके भी रजनी पनिकर के लिए लिखना आवश्यक था। उसे अपने लिए एक अनिवार्यता बतलाते हुए वे कहती हैं---'दिन भर आफिस में काम करके गृहस्थी का भी थोड़ा बहुत काम देखना पड़ता है। जीवन में बोरियत की कमी है। मेरा हर क्षण व्यस्त है। इन व्यस्तताओं के बावजूद मैं लिखती हूँ। केवल इसलिए कि लिखना मेरे जीवन के लिए उतना ही आवश्यक है जितना सांस लेना दिन बिना लिखे बीत जायें तो मन उखड़ा उखड़ा लगता है। अकारण क्रोध झुंझलाहट होता है।'[9]

केन्द्रीय सरकार के शिक्षा निदेशालय में उच्च पद पर कार्य करने वाली कृष्णा सोबती लेखक और लेखन के मध्य की समस्त बाधाओं को अस्वीकारती हैं। क्योंकि श्रेष्ठ लेखन के लिए उनकी धारणा है कि 'अपने और अपने लेखन के बीच भी तीसरी शर्त का अंकुश अस्वीकार कर देना होगा।'[10]

इस प्रकार ये लेखिकाएँ आजीविका उपार्जन करने की आवश्यकताओं को स्वीकारते हुए उनसे जुड़ी हुई समस्त उलझनों के उपरान्त भी लेखन के प्रति ईमानदारी से समर्पित है।

रचना संसार

इन लेखिकाओं की रचनाधर्मिता का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि इनका लेखन व्यक्तित्व बहुमुखी है। उपन्यास लेखन से इतर इन्होंने कविताएँ, नाटक आदि क्षेत्र भी पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त की है। मृदुला गर्ग, मन्नू भण्डारी के नाटक अत्यंत लोकप्रिय हुए हैं। शिवानी के संस्मरण हिन्दी साहित्य की धरोहर हैं। सूर्यबाला ख्यातनाम व्यंग्य लेखिका है तो कृष्णा सोबती ने 'हम हशमत' शीर्षक से सुन्दर संस्मरणात्मक रेखाचित्र प्रस्तुत किए हैं। दिनेशनन्दिनी डालमिया ने गद्य गीत लेखिका के रूप में पर्याप्त यश अर्जित किया है। इसी भाँति साहित्यिक समीक्षाओं का कार्य भी इन्होंने सम्पन्न किया है।

यद्यपि इनमें से अधिकांश ने कथा साहित्य लेखन में प्रवीणता का प्रदर्शन किया है तथापि इतर साहित्य विधाओं में इन्होंने साहित्य सृजन कर पर्याप्त यशोपार्जन किया है।

जीवन दृष्टि

जीवन के विविध सत्यों जीवन दशाओं के प्रति लेखक की दृष्टि ही उसके विशिष्ट व्यक्तित्व को आकार प्रदान करती है। इन लेखिकाओं के लेखक व्यक्तित्व की जानकारी के लिए यहाँ विवाह तलाक परिवार जाति धर्म आदि से सम्बन्धित विचारों की जानकारी आवश्यक है।

लेखिकाओं में नारी के प्रति ऐसी सर्वमान्य निरकुंशी दृष्टि के प्रति प्रबल विरोध का भाव उपस्थित है। जाति धर्म आदि में ही विवाह की अनिवार्यताएँ दहेज कन्या का अक्षत योनीत्व आदि की रूढ़िग्रस्त चिन्ताधाराएँ नारी की स्वतन्त्रता का हरण करने उस पर पारिवारिक बन्धनों को थोपने का पर्याप्त कारण रही हैं। ये लेखिकाएँ ऐसे सामाजिक आचारों का खुलकर विरोध करना जरूरी समझती हैं। बन्धनों के प्रति विद्रोह और इन्हीं कारणों से पुरुषों के प्रति घृणा का भाव आज अनेक नारियों में परिलक्षित है।

रजनी पनिक्कर वर्तमान नारी के एतद् विषयक चिन्तन को परिभाषित करते हुए कहती हैं—'बहुत सी नारियाँ ऐसी मिलती है जिन्हे पुरुषो से नफरत है। व स्कूल और कालजा मे लिस्बियन सम्ब ध स्थापित करती है। उनके मन मे पुरुषा के प्रति गहरी घृणा होती है। इसका कारण बचपन से सम्बद्ध होता है। बचपन मे वे देखती हैं कि भाई की देखरेख बडी दिलचस्पी से होती है, उसकी परवाह कोई नही करता। कई माता पिता तो भोजन मे भी अन्तर रखते है। लडकियो पर उतना खच करना पसन्द नही करते। लडकिया बडी होकर पूरी पुरुष जाति से नफरत करने लगती हैं क्योकि बचपन से पुरुष उनका मित्र नही प्रतिद्वन्द्वी होता है।[11]

विद्रोह का यह स्वर लेखिकाआ मे व्यक्तित्व और कृतित्व दोना मे परिलक्षित है। किन्तु भिन्न परिवेश, रुचि, सस्कार आदि के कारण लेखिकाओ मे इनके सम्बन्ध मे पर्याप्त मतभेद भी हैं। इस कारण एक ही बिन्दु पर दाना प्रकार की दृष्टिया की जानकारी दी गई है क्याकि इन विचारा ने इनके लेखन को भी दूर तक प्रभावित किया है।

विवाह

विवाह वह सस्था है जिसन भारत की स्त्रिया को सदा से ब धनग्रस्त रखा है। विवाह स सम्बन्धित सभी असमानताआ को भाग्य के नाम पर झुठलाया जाता रहा है। सतीत्व का आदश, पतिव्रत धम, जन्म जन्मान्तर के सम्बन्ध आदि के स्वीकृत सामाजिक आदर्शों के नाम पर स्त्री की अपनी इच्छा आकाक्षा को, उसकी अभिलाषाआ को नकारा जाता रहा है। पति की सारी कमजारियो, क्रूरताआ, अह भावनाआ को उसे मूक बनकर झेलते रहना पडा है। प्रेम विवाह, स्वयवर आदि स सम्बन्धित पर्याप्त कथाएँ प्रचारित करके भी वास्तविक जीवन मे नारिया का स्वतन्त्रता का अधिकार नही दिया गया। इन अन्तर्विरोधी दशाओ क बारे म लेखिकाआ के विचार स्पष्ट रूप म उभर कर आए हैं।

शिवानी परम्परित आदर्शों के अनुसार विवाह का आवश्यक मानती हैं और इसकी मर्यादा रेखा को पार करने की प्रवृत्ति पसन्द नही करती हैं।[12] ऐसे ही विचार दीप्ति खण्डेलवाल शशिप्रभा शास्त्री के भी हैं। यहा तक कि विदेश प्रवास करने वाली उषा प्रियम्वदा भी इनका समथन करती हैं।

मृदुला गग किन्तु विवाह के सम्बन्ध म बोल्ड विचार' रखती हैं। ये विवाह का अनावश्यक मानती हैं। विवाह के बाद के सम्बन्धा के निवाह की थोथी औपचारिकताओ पर गहरा कटाक्ष करत हुए इन्होन अपने 'उसके हिस्स की धूप' उपन्यास म पति-पत्नी के विवश बन्धना की खिल्ली उडाई है।[13] शायद यही कारण है कि य

विवाहेतर सेक्स सम्बन्धो को निषिद्ध नही मानती बल्कि उन्हे सर्वथा उचित स्वीकारती हैं।[14]

कृष्णा सोबती ने भी विवाह सम्बन्धी दृष्टिकोण को नवीन चिन्तन आयाम अपने उपन्यासो मे दिया है। विवाह को सामाजिक दृष्टि से आवश्यक किन्तु व्यक्ति की दृष्टि से अनाश्यक मानते हुए कहती हैं—'विवाह का चलन व्यक्ति की दृष्टि मे अनावश्यक बन्धन है। इससे व्यक्तित्व का विकास अवरुद्ध हो जाता है। किन्तु सामाजिक दृष्टि से इसकी आवश्यकता को नकारा भी नही जा सकता है।'[15] जबकि मन्नू भण्डारी की दृष्टि मे विवाह आवश्यक तो है पर इसका स्वरूप ऐसा होना चाहिए कि व्यक्ति को तलाक की सुविधा बनी रहे तथा विवाह के असफल होने पर उससे मुक्ति भी हो सके।'[16]

विवाह के मार्ग की कठिनाईयो को सम्वेदना के धरातल नारी मन सदव अनुभव करता रहा है। इसे अपने उपन्यासो मे (प्रमुख प्रतिपाद्य के रूप मे) इन लेखिकाओ के द्वारा चित्रित भी किया गया है। विवाह की शृखला की जकडन महसूस करते हुए इनकी धारणा है कि ये बन्धन सिर्फ स्त्रियो के लिए ही है न तो उसे स्वेच्छया विवाह की स्वतन्त्रता है और न ऐसा करने के लिए उसे प्रोत्साहन ही मिलता है।

चन्द्रकिरन सौनरेक्सा के अनुसार नारी इस दृष्टि से अभागी है 'विवाह की आजादी तो आज भी भारतीय युवती को नही है। हमारे यहाँ विवाह माता पिता तय करते हैं। भारतीय नारी तो यदि विवाह न करना चाहे तब भी उसे सामाजिक समर्थन नही मिलता क्योकि आज भी परम्परा का वही पुराना रूप मौजूद है—स्त्री बिना *किसी एक रक्षक के अकेली कसे रहेगी?* [17]

समाज के उपर्युक्त चिन्तन के सदर्भ से विवाह की संस्था कितनी खोखली है यह सिद्ध हो जाता है। ऐसी अवस्था मे परम्परागत विवाह की गरिमा की दुहाई देना और उसकी प्रतिष्ठापना की डीगें हाकना सुनहरी भ्रान्ति के अलावा और कुछ नही है। इस शून्य को देखकर मीरा महादेवन ने उसे इन शब्दो मे अभिव्यक्त किया है—मैं समझती हूँ कि वैवाहिक जीवन स्वय मे एक असफल प्रतिष्ठापना है। पति पत्नी अलग-अलग व्यक्तित्व होते है।'[18]

अतर्जातीय विवाह

विवाह से सम्बन्धित अधिकाश कठिनाईयो से अतर्जातीय अन्त प्रान्तीय या अन्तर्धर्मीय विवाह व्यवस्थाओ से उबरा जा सकता है। मन्नू भण्डारी मालती परूलकर, ममता कालिया आदि ने निजि निर्णय को प्रतिष्ठापित करते हुए प्रेम विवाह किया है। मीरा महादेवन महाराष्ट्र के यहूदी परिवार की है और इनके

पति शीलका कतमिल हैं अतजातीय विवाह की अपनी दृढ सकल्पना को व्यक्त करते हुए कहती है 'मैं सदव यह चाहती थी कि अत प्रातीय या अतर्जातीय विवाह करूँ।'[19] इसका कारण प्रकट करते हुए वे स्पष्ट करती हैं कि 'क्योंकि मैं अल्पसख्यक जाति की हूँ और मुझे अवसर लगता था कि अपनी जाति म मुझे वह आजादी नही मिल सकेगी जिसकी मुझे आकाक्षा थी। फिर हमारी अल्प सख्यक जाति म बधन बहुत अधिक थे। हमारी मुलाकात हुई और एक विवाह के बधन मे बँध गए।[20]

तलाक

तलाक का प्रश्न भी विवाह के साथ ही जुडा हुआ है। विवाह की स्वतन्त्रता के अभाव म स्त्री पुरुष उनके अपन निणय के बिना विवाह-ब धन मे बाध दिए जाते हैं। रुचि, सस्कार, विश्वास, जीवन दृष्टि आदि अनेक स्थितियाँ हैं जो पति पत्नी के सम्बन्धो मे कटुता उत्प न कर देती है। इस बारे म लेखिकाएँ तनाव की स्थिति मे तलाक को पसन्द करती हैं। मीरा महादेवन पति-पत्नी के बीच सामञ्जस्य की दशा मे ऐसी तनावग्रस्तता के समाप्त हो जाने क बारे म स्पष्ट करती है कि 'विवाह चाहे सजातीय हो या अतर्जातीय इससे विवाह की इस प्रतिष्ठापना मे कोई अ तर नही पडता है क्योंकि ववाहिक जीवन मे ऐस क्षण सदा आते है जब पति-पत्नी के बीच तनाव पदा हो जात है। लेकिन अगर पति पत्नी म सामञ्जस्य, प्रेम स्नेह है तो ऐस प्रसगो का विस्तार क्षणिक हाता है। सास्कृतिक भिन्नता भी एक प्रकार से दूर हो जाती है।'[21]

किन्तु जब दम्पत्ति म सामञ्जस्य नही हा पाता है तभी मुख्य समस्या खडी होती है। मन्नू भण्डारी कहती ह कि इस दशा म विवाह बधन से मुक्त होने की स्वतन्त्रता रहनी चाहिए। कानून न भी ऐसा अधिकार दे रखा है पर वह अधिकार कितना व्यावहारिक और उपयोगी है इसकी सचाई किसी से छुपी नही है। यो मन्नू भण्डारी तलाक की अनिवार्यता की पक्षधर है। अपने विचारो को उ होने इन शब्दो मे व्यक्त किया है—'विवाह आवश्यक तो है पर इसका स्वरूप ऐसा होना चाहिए कि व्यक्ति को तलाक की सुविधा बनी रह तथा विवाह के असफल होने पर वह उससे मुक्त भी हो सके।[22]

तलाक का समथन करत हुए भी लेखिकाएँ उसके दुष्परिणामो स भी अवगत हैं। तलाक के कारण भी नारी का जीवन कष्टो मे पडकर अनेक प्रकार की पीडाएँ प्राप्त कर सकता है। चन्द्रकिरन सौनरेक्सा कहती है—कानूनन वह तलाक की अधिकारिणी हो गई है। परन्तु सामा यतया तलाक शुदा नारी को समाज मे मूक रूप मे असम्मान ही मिलता है। सहज रूप मे उसका दूसरा विवाह नही होता और यदि एक सन्तान भी नारी के उस विवाह से हो गयी तो फिर उसके सामाजिक भविष्य की दृष्टि से नारी अपन अस्तित्व को मिटा देने की हद तक समझौता करना चाहती है।'[23]

लेकर उतने बेबाक ढग से नही कह पाती जितनी स्पष्टता स पुरुष। 'अपराधिनी मे अनेक स्थल उसके इस सकोच को झुठलाते हुए लगत हैं। स्त्री के समक्ष पुरुष का और पुरुष के समक्ष स्त्री को 'चटपटे व्यजन', 'सामने परसी थाल', मुह के ग्रास आदि रूप म सकेतित करने वाले स्थल आवश्यकता से अधिक मुखर हैं।[31]

मृदुला गग ने सेक्स के खुले चित्रण से परहेज नही किया है। यही इनकी त्वरित लोकप्रियता का आधार है इसे बतलाते हुए मधुरेश कहते हैं हिन्दी की नवोदित लेखिकाओ म मृदुला गग एक महत्वपूर्ण नाम है। अपेक्षाकृत बहुत कम समय म ही वह अपनी एक इमेज गढ सकने म सफल हुई है और कुल मिलाकर वह एक ऐसी लेखिका की इमेज है जो बहुत बेबाक ढग से स्त्री पुरुष सम्बन्धो का अकन करती है।'[32]

इस प्रकार सेक्स के बार म लेखिकाएँ खुले विचार रखती है और निद्वन्द्व भाव स उन्हें अपनी रचनाओ म भी चित्रित करती है। कुछ लेखिकाओ न बोल्ड लेखन के नाम पर कही कही नग्न और घिनौने चित्र भी अकित किए हैं। इस कारण उन्मुक्त सेक्स को लकर ये बहुत कुछ आशकित भी हैं। इसी चिताधारा को प्रकट करत हुए दीप्ति खण्डेलवाल कहती हैं— 'सेक्स मनुष्य की आदिम प्रवृति हान पर भी उसकी विकसित मानवीय सम्वेदनाओ से जुडा होता है। अत नग्न सेक्स मनुष्य के नगेपन को उजागर तो करेगा लेकिन उसे पशु बनाकर। यदि देवत्व एक भ्रम है तो पशुत्व भी सच नही। आदमी तो इन दोनो के बीच कही होता है।'[33]

नैतिक मूल्य

नवजागरण के साथ ही देश म नतिकता व मूल्यो पर सकट उपस्थित हुआ। पुराने मूल्य तजी से टूटने लगे और नतिक आदश अब यक्ति के आचरण के नियामक नही रह पाए। लेखिकाओ मे भी नतिकता के ब धनो के प्रति मोह की कमी दिखाई देती है।

कृष्णा सोबती मानती हैं कि साहित्य और कानून की निगाह एक नही हो सकती। साहित्य जीवन का दपण है जिन्दगी की बदिश नही। अत नतिकता का जो पमाना न्यायाधिकरण मे पेश किया जाता है वह साहित्य पर लागू करना या उसके साँचे म साहित्य को मर्यादित कर देना अनुचित है। साहित्य इस दृष्टि से सिफ आन्तरिक सयम और वदिश रखता है जो उसके बहाव को, चढाव को खुद ही सहेजता समेटता है। सत्य को अपने म सजोता है और खुलेपन म पनपने देता है।[34] इसी आधार पर कृष्णा सोबती की स्थापना है 'तथाकथित नतिकता और धम की चौखटा के बाहर इन्सान की जि दगी का एक बहुत बडा हिस्सा फला पडा है। उसकी उम्मीदें आस्थाएँ उसकी कमजोरियाँ प्यार और आर्थिक सघष। इन सबको किसी एक

के नाम पर छाँट देना उन्हें किसी दायरे से बाहर कर उस पर फैसले देना मुनासिब नहीं।'[35]

मन्नू भण्डारी आज के वैज्ञानिक युग में प्राचीन नैतिक मूल्यों की रूढ़ि को स्वीकारते जाने की प्रवृत्ति का विरोध करती हैं। उन्हीं के शब्दों में ईश्वर और धर्म के रूढ़िबद्ध रूप का पालन करें तो हम तिलक लगाकर जिन्दगी भर माला ही जपते रह जाएँगे। जीवन के वृहत्तर मूल्यों के लिए अपनी सार्थकता के लिए विवेक, मानवीय संवेदना और सह अनुभूति की आवश्यकता होती है ईश्वर की नहीं।[36]

प्रकाश के प्रति अपनी अमित आस्था के बल पर ही दीप्ति खण्डेलवाल 'पाप पुण्य, नैतिक-अनैतिक की कोई रूढ़िगत मान्यता को वह नहीं मानती, किन्तु प्रकाश में उसकी आस्था है और प्रकाश और अंधकार के भेद को वह दृढ़ता से स्वीकारती है—जिद की हद तक।[37] इस सत्य को आज की कहानी में उपस्थित देखते हुए मन्नू भण्डारी कहती हैं 'आज की कहानी में नारी के बहुमुखी प्रेम सम्बन्धों की चर्चा है, नैतिकता और अश्लीलता के परिवर्तित बोध अंकित हैं और अपनी समग्रता और विविधता में चित्रित हैं।[38]

नैतिकता का यह परिवर्तित बोध कैसा है? इसकी व्याख्या शशिप्रभा शास्त्री इस प्रकार करती हैं—'नैतिक मान्यताओं का मूल्यांकन मैं अब दूसरे ही कोण से करने लगी हूँ। अब मेरी निगाह में वह व्यक्ति बुरा नहीं है जो पर पुरुष या पर स्त्री गामी है सिगार या शराब पीता है अभक्ष्य नामधारी पदार्थों का सेवन करता है। घृणा या अवमानना मेरे मन में अब उस व्यक्ति के प्रति उभरती है जो वचन देकर भी उसके निर्वाह में कोताही करता है धार्मिकता का स्वांग रचकर भीतरी प्रकोष्ठों में रंगरलियां रचाता है। जो अपने दायित्व और कार्य के प्रति ईमानदारी नहीं कर पाता, केवल बात करता है सिर्फ बात।'[39]

बातों मात्र में ही नैतिकता की दुहाई देने वाले किन्तु व्यवहार में घृणित कार्य करने वाले दोहरे व्यक्तित्व के धनी लोगों से मानो मन्नू भण्डारी इन शब्दों में पूछना चाहती है—'हिन्दू आदर्श और आज के भारतीय जीवन को दोहरी भाषा में बोलने समझने का ढोंग आप कितने दिनों तक और चलाये रखना चाहते हैं।'[40]

वाचिक नैतिकता के स्थान पर नूतन परिस्थितियों में उत्पन्न नए मूल्यों को सहजता से स्वीकार करना ये लेखिकाएँ अधिक पसन्द करती हैं। परम्परागत मूल्यों और नवोदित मूल्यों के द्वन्द्व में अपने वरणीय को अभिव्यक्त करते हुए कृष्णा सोबती कहती हैं— हम क्या न स्वीकार करें कि पुरानी परम्पराओं के बहुत से ऐतिहासिक मोड़ पर हम देह की आत्मा की अमलदारी में आजाद कर उसकी स्वतन्त्र सत्ता को

स्वीकारें ।'[41] इस स्वतन्त्र सत्ता का स्पष्टीकरण करते हुए य विचार व्यक्त करती हैं कि 'हमने दर्शन और चिन्तन की सूक्तियों और विवशताओं दोनों से देहातीत अमर प्रेम और जन्म जन्मान्तर के सम्बन्धों के भुलावे बाँध हैं। अब हम व्यक्ति की हैसियत से अपने होने की वैज्ञानिक सार्थकता का मोजन टटोलने के लिए नितान्त कुछ दूसरा करना है जो पहले से भिन्न होगा। नया होगा।'[42]

यह नवीन सत्य कोरा आत्मवाद ही न रह जाय, इसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है उसकी चर्चा करते हुए कृष्णा सोबती अपने विचार रखती हैं कि 'इसी कर पाने के लिए हम मानसिक रति की घटिया कहानियाँ, स्वप्न की प्रेतात्माओं पर प्रतीकों के लबादे नहीं पहनाने हैं। हम हाड माँस के इन्सान के पास जमी सड़ांध को साफ कर उस अनोखे चमत्कार को उजागर करना है जो इन्सान के बार बार मर जाने के बाद भी जिन्दा रहता है। साहित्य क्योंकि धर्म नहीं और जीवन क्योंकि आचार नहीं इन दोनों की सभ्यताओं में हमें अतीत से आक्रान्त जीवन और साहित्य में *आधुनिकता के उस संस्कार को रोपना है जो सिर्फ शैली और कलेवर का फैशन ही नहीं* एक खुली उन्मुक्त और गहनतम कृतियों का प्रस्तुतीकरण भी है।'[43]

किन्तु यहाँ यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि क्या नारी लेखिकाएँ इस गुरुतर कार्य को पूरा कर सकेंगी? क्या वे अपने संस्कारों से सचमुच मुक्त हो गई हैं? क्या सचमुच इनमें आधुनिकता के नव संस्कारों को रोपने की क्षमता है? कहीं इनकी ये सारी बातें कोरी भावुकता तो नहीं है? मन्नू भण्डारी के इन शब्दों को ऐसी शंकाओं का आधार भी बनाया जा सकता है। वे कहती हैं 'हमारी आज की *समस्त अव्यवस्था और दयनीयता का कारण हवाई समाधान और झूठे आदर्शवाद में* रहना है।'[44] इस सम्बन्ध में लेखिकाओं की सीमाओं को सचेत करते हुए वे कहती हैं– 'आज का लेखक तो केवल स्थिति की विषमता और समस्या को ही रेखांकित कर सकता है।'[45]

मृदुला गर्ग लेकिन सारी शंकाओं का समाधान करते हुए एवं लेखिकाओं के सामर्थ्य के बारे में पूर्ण आश्वस्त करते हुए कहती हैं 'सही मानें में औसत पुरुष भी आधुनिक नहीं है। फिर भी एक बात कहती हूँ कि खुद को बदलने की शक्ति जितनी औरत में है उतनी पुरुषों में कम ही है। *यह भी क्या कम है कि अब स्त्री पुराने नैतिक* मानदण्डों से बुरी तरह असन्तुष्ट दिखाई दे रही है। स्वच्छन्दता की शुरुआत ऐसे ही होती है।'[46]

परिवार

गृहस्थी के झंझट नारी लेखन की सबसे बड़ी बाधा है। इनसे छुटकारा पाना पुरुष के लिए भले ही सम्भव हो स्त्री के लिए नहीं है। सारी प्रगतियों के बावजूद भारत

म आज भी घर परिवार की सारी जिम्मेदारियाँ नारी के ही कन्धो का बोझ बनी हुई है। इनसे उसकी मुक्ति असम्भव है। लेखिकाओ ने न केवल परिवार व उनमे जुडी हुई समस्याओ को उपन्यास की कथा का अनिवार्य अग बनाया है बल्कि उनसे सम्बन्धित चिंतन को भी प्रदर्शित किया है।

अधिकाश लेखिकाओ ने पारिवारिक झझटो म दम घोटती लेखनी की विवशता को प्रसगानुसार बडे विस्तार से अपने उपन्यासो मे चित्रित किया है। इस विवशता को लेकर लेखिकाओ म पूरा आक्रोश भी है। मृदुला गर्ग के उपन्यास 'उसके हिस्से की धूप' की नायिका भी एक लेखिका है। उसने लेखिका के लिए पारिवारिक समस्याओ के कारण आने वाली कठिनाइयो का विस्तार से वर्णन किया है। उसके अनुसार 'घर के रोजमर्रा के यह कामकाज – खाना बनाना, झाड पोछ करना, फैला सामान बटोरना नौकर स झिकझिक करना, सौदा मगाना, हिसाब रखना कपडे धोना, इतने छोटे होते है कि इनका हवाला देकर न तो किसी व्यस्तता की फरियाद की जा सकती है और न उन्हे निबटाकर किसी बौद्धिक सन्तोष का अनुभव।'[47] लेखन कार्य के समय इन छोटी-मोटी घटनाओ का घटित होना लेखिकाओ की सबसे बडी खीज का कारण बनता है। इस असन्तोष को वह इन शब्दो मे व्यक्त करती है—'इसके अलावा अनेक ऐसी छिटपुट घटनाए हैं, जो उसे लगता है तभी घटती हैं जब वह कहानी लिखने बैठती है। वह कहानी लिखने बैठी नहीं कि फोन बजने लगता है, गैस खतम हो जाती है, नल से पानी चला जाता है सब्जी वाला पुकारने लगता है, धोबी कपडे मिलवाने आ टपकता है पडोसन चीनी मागने आ जाती है, बिना बुलाए मेहमान हाजिर हो जाते है या हाजिर कर दिए जाते हैं।'[48] अन्त म खीज के साथ वह कहती है 'कहानी लिखते लिखते फिल्म का फेरा पड जाना दुर्भाग्य माना जा सकता है धोबी का पुकारना नहीं मटन कबाब बनाने की फरमाइश कभी नहीं।'[49]

गृहस्थी के ऐसे झझटो के रहते हुए लेखन कार्य करने की कठिनाई को मन्नू भण्डारी भी स्वीकारती हैं घर गृहस्थी का बोझ सभालकर लिखना कितना कष्टसाध्य होता है इसकी वास्तविक अनुभूति मुझे इस बार ही हुई।'[50]

ये पारिवारिक क्रियाकलाप अनिवार्य ही नहीं होते, अवकाश का लाभ तक नहीं लेने देते हैं। इसके बारे म शिवानी कहती हैं— फिर गृहस्थी के सचिवालय म कभी कभी आकस्मिक अवकाश भी नहीं मिलता। [51] इस कारण लेखिकाओ को शान्तिपूर्वक लेखन कार्य करने का अवसर ही प्राप्त नहीं होता। और जब अवसर आता है तब अनभ्यास के कारण लेखनी अडियल घोडी सी अड जाती है। शिवानी कहती है 'मशीनी तक लेखनी या तो धोबी का हिसाब लिखती है या दूध वाले का। नब शिवानी म।

उपन्यास लेखिकाओ का व्यक्तित्व और औपन्यासिक

अमूल्य अवसर आता है तब लगती बहुत दिनों से अम्बर में बँधी पांखें भी ही अडियल होकर बिदकने लगती है।'[52]

इन सारी कठिनाईयों-विवशता के बावजूद लेखन कार्य एक अनिवार्यता है इस प्राय सभी लेखिकाएँ प्रस्तुत करती हैं। रजनी पनिकर नौकरी भी करती थी, पारिवारिक उत्तरदायित्वों को भी निभाती थी फिर भी अपने लिए लिखना एक आवश्यक मजबूरी मानती थी। उन्ही के शब्दों में 'दिनभर आफिस में काम करके गृहस्थी का भी थोड़ा बहुत काम देखना पड़ता है। जीवन में बोरियत की कमी है। मेरा हर क्षण व्यस्त है। इन व्यस्तताओं के बावजूद मैं लिखती हूँ। केवल इसलिए कि लिखना मेरे जीवन के लिए उतना ही आवश्यक है जितना सांस लेना। कुछ दिन बिना लिखे बीत जायें तो मन उखड़ा उखड़ा लगता है। अकारण क्रोध आता है, झुंझलाहट होती है।'[53]

चार बेटियों और तीन बेटा की माँ होकर भी दिनेशनंदिनी डालमिया के लिए गृहस्थी के झंझट कोई बाधा खड़ी नहीं करते। वे कहती हैं आम गृहिणियाँ जैसी दिनचर्या—बच्चों की देखभाल बागवानी मेहमानों का स्वागत इत्यादि के साथ ही बचपन से पाला हुआ शौक, लेखन का शौक भी नहीं छूटा है। क्योंकि जब लिखने की इच्छा होती है तब लिखने के लिए समय निकल ही आता है। समय नहीं मिलता—यह भी बचने का एक बहाना है।[54]

मालती जोशी अपने को पहले गृहिणी और फिर लेखिका मानती हैं और कहती हैं— लेखक मैं बाद में हूँ पहले पत्नी और माँ हूँ। मेरा संसार छोटा सा है। मेरा आकाश सीमित है।'[55]

दूसरी ओर ऐसी लेखिकाएँ भी हैं जो लेखन कर्म के प्रति अधिक समर्पित होने के भाव को प्रदर्शित करती हैं। ये गृहस्थी के झंझटों, समस्याओं से आतंकित हैं। इस कारण तदविषयक असंताप को प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष ढंग से प्रस्तुत करती रहती है।

शिवानी अपने विचारों को इन शब्दों में व्यक्त करती हैं कहानी का कथानक और गृहस्थी का कथानक दो पतंगों के डोर से सजे हैं जिन्हें दो हाथों में पकड़कर उड़ान पर भी ऐसा हो ही नहीं सकता कि आपस में न उलझें।[56] दीप्ति खण्डेलवाल के लिए पति का घर 'भुतहाघर' बनकर उपस्थित हुआ जिसके भूत उस निरंतर रूढ़ियों की बंदिशों के रूप में प्रताड़ित करते रहते थे। स्पष्ट कर दूँ वह भुतहा महल रूढ़ियों का था अंधविश्वासों का था सत्य वहाँ बंदी था। उस कोमल देह वाली युवती को जिसके मन में प्रतिपल किसी सत्य और सुंदर की चेतना फड़फड़ाया करती थी उस भुतहे महल के भूत डांट करने लगे।[5]

कंचनलता सब्बरवाल पारिवारिक झंझटों के बारे में मौलिक विचार प्रस्तुत करते हुए कहती हैं— बहुत ही अधिक सुव्यवस्था और परिवार के सदस्यों का सहयोग

यदि प्राप्त न हो तो गृहिणी के काम भी इतने अधिक विस्तृत एव बिखरे हुए हो जाते है कि उसे समय भी नही मिल पाता विशेषतया जबकि कार्यों के सामने लेखन कार्य को अनिवार्य की सज्ञा नही दी जा सकती।'[58]

लेखिका की लोकप्रियता भी कई बार उसके पति की ईर्ष्या का कारण बनकर गृह कलह की सभावनाएँ जगा देती है। इस सबध म मृदुला गर्ग का कथन है कि 'सौभाग्यवश मेरे पति के साथ इस प्रकार का कोई अभिव्यक्ति द्वन्द्व नही है, मेरे पति लेखक नही है। फिर स्त्रियो को लेकर जितने पूर्वाग्रही लेखक लोग होते है उतने कोई और नही। वे मेरे आसपास किसी भी प्रकार की ऐसी पूर्वाग्रही या शकालु स्थिति का निर्माण न करके एव प्रकार स मुझे मेरी रचना प्रक्रिया म एक आवश्यक व गहरा सहयोग देते हैं।'[59]

लेखक पति के प्रति मृदुला गर्ग के य आक्षेप कि वे पूर्वाग्रही और शकालु होते है कहाँ तक सगत हैं यह नही कहा जा सकता। किन्तु लेखक पति पत्नियो म एक अप्रत्यक्ष प्रतिस्पर्द्धा की भावना अवश्य आ जाती है। इसकी जानकारी राजेन्द्र यादव और मन्नू भण्डारी के सहयोगी प्रयास स लिखे गए उपन्यास 'एक इञ्च मुस्कान' से प्राप्त होती है।

राजेन्द्र यादव स्वीकार करते ह कि 'आखो और कानो से एक एक शब्द मुद्रा को पी जाने वाले श्रोताओ और दर्शको की विपुल उपस्थिति जिस प्रकार वक्ता और अभिनेता को अनजाने ही अपने साथ बहा ले जाती है—वही कुछ स्थिति हमारी थी। यहा भी बहकने और भटकने के अवसर मन्नू को ही ज्यादा थे क्योकि वह निश्चय ही मुझसे अधिक सरस रोचक लिख रही थी। अन्त के दो तीन अध्यायो मे तो सचमुच मुझे ऐसा महसूस हुआ कि मन्नू के हर अध्याय के बाद की तालियो की गडगडाहट मेरा दिल धसका देती है। उपन्यास की भावात्मक और वचारिक अन्विति की दृष्टि स देखता हूँ तो मुझे लगता है कि इन तालियो की गडगडाहट न मन्नू को भटका भी दिया।'[60] इसके कारण उभर आई प्रतिद्वन्द्विता को सकेतित करते हुए वे कहते है 'हस्बमामूल मन्नू मेरी खिलाफ पार्टी मे थी सहयोगी लेखिका प्रतियोगी लेखिका हो गई थी।'[61] दूसरी ओर मन्नू भण्डारी भी राजेन्द्र यादव के द्वारा प्रदर्शित की जाने वाली अवरोधी बातो का इन शब्दो मे व्यक्त करती हैं— 'खाक बन जाओगी तुम अच्छी! तुम किसी चीज को गम्भीरता स लेना जानती ही नही हो। बडी सरलता से ख्याति मिल गई है, इसलिए दिमाग आसमान पर चढे हुए हैं। पर इस मुगालते मे रही तो साल भर म ही चुक जाओगी।'[62]

पतियो के ऐसे असहयोगपूर्ण व्यवहार के कारण लेखिकाएँ मानो दोहरे ढग म प्रताडित होती है—उनके पति यह तो चाहते है कि उनकी पत्नी लेखिका के रूप म

उनकी गौरव वृद्धि करती रहे लेकिन यह मन एग गुपचुप करले कि उन्हे किसी प्रकार का कष्ट न हो।

अपने पति के ऐसे ही चिन्तन को स्पष्ट करते हुए कृष्णा अग्निहोत्री कहती है 'मेरे पति किसी समय कहानी लेखक थे, आज जज मात्र है। यो तो वह चाहते हैं कि लिखूं, बडा गर्व भी अनुभव करते है कि उनकी पत्नी लिखती है। मगर जब लिखने की प्रक्रिया चलती है तो मैं उनके लिए परेशानी का कारण बन जाती हूँ। तब वह हँसकर कह भी देते है कि पत्नी के लिए कहानी लेखिका होना अनिवार्य नही। यो य बडे सहृदय सवेदनशील है।[63]

दूसरी ओर मालती जोशी की अनुभूतिया पूरी तरह समर्पिता की अनुभूतियाँ प्रतीत होती हैं। चूकि य अपने को पहले पत्नी या माँ मानती है और बाद म लेखिका इसलिए ऐसी कठिनाई का अनुभव नही करती। पति का वे अपने लेखन का पूर्ण सम्बल के रूप म ही पाती हैं। उन्ही के शब्दो में 'मेरे पति लेखक नही हैं फिर भी मानसिक रूप मे वे मेरे सम्बल होते हैं। लौटी हुई कहानी पर मातम मनाती म उन्ही से सम्वेदना पाती हूँ। प्रकाशित कहानी पर उनकी प्रशसा मेरा सबसे बडा पारिश्रमिक होता है।[64] लगभग ऐसे ही विचार व्यक्त करते हुए दीप्ति खण्डेलवाल कहती है 'मेरा पारिवारिक परिवेश उदार है। जो मेरे अभिन्न हैं वे मुझे किसी व्यक्तिगत सम्बन्ध के सदर्भ म नही एक सप्राण चेतना के स्तर पर स्वीकारते हैं। उनके इस स्वीकार ने मुझे बल दिया है।[65]

इन सब अभिशसाओ के बावजूद इसे सब स्वीकृत सत्य के रूप म स्वीकार नही किया जा सकता है। लेखन मे भले ही पति सहयोग प्रदान करने हो पारिवारिक कार्यों म उनके सहयोग की बात असदिग्ध नही है। मन्नू भण्डारी एक लेखिका के लिए गृहस्थी के ढेर सारे झझटो के बीच पति के असहयोगपूर्ण आचरण को प्रदर्शित करते हुए कहती हैं कि मन और ध्यान को बटाने वाले अनेक प्रसग नारी लेखिका के सामने रहते हैं। ऊपर से 'राजेन्द्र जैसा पति जो पारिवारिक जिम्मेदारियो के सामने बाबा मौज करेगा' का नारा लगाकर हाथ झटकता हुआ चल दे।'[66]

इस प्रकार पारिवारिकता का उलझनग्रस्त स्वरूप नारी के लेखन की सबसे बड़ी कठिनाई है। इस कोण के अलावा भी नारी का परिवार के प्रति चिंतन और उसमे पति की सामान्यत अवरोधक भूमिका को इन विचारो म स्पष्ट देखा जा सकता है।

धर्म

भारतीय चिंतन मे ईश्वर विषयक आस्था और धर्म का विशेष महत्व है। आधुनिकता के पश्चगर्न प्रक्रिया म भी धार्मिक आचारो के अनुसर्ता होने की प्रवृत्ति यथावत उपस्थित देखी जा सकती है। इन लेखिकाओ ने भी धार्मिक आस्थाओ के निर्वाह का

समर्थन किया है यद्यपि कुछ ने बडे शब्दों में इसका विरोध भी किया है। अत इस सम्बन्ध में इनके चिन्तन की दो दिशाएं हैं जो इन्हे दो अलग अलग चिन्तन वर्गों में विभाजित कर देती है।

शशिप्रभा शास्त्री आस्था के निर्वाह की समर्थक है क्योंकि 'इनकी आस्था का बिन्दु एक दूसरे स्तम्भ पर भी टिककर खडा हो जाता है। जहा व्यक्ति नैतिकता के समान मानदण्डो को स्वीकारता हुआ भी उनको क्रियात्मक रूप देने में इसलिए असमर्थ रहता है क्योंकि उसे परिवार के नादान सम्स्या को अनुशासित रखना है।'[67] आस्था का यह भाव मुख्यत अदृष्ट की शक्ति के प्रति विश्वास के कारण स्थिर हुआ है। इस स्पष्ट करते हुए वे कहती है 'मैं उस एक अदृश्य शक्ति की बात कर रही हूँ, जो मुझे ठेलकर जहाँ चाहे ले जा सकती है, ले जाती है। सयोग, नियति कुछ भी कह आप उसे।'[68] उस ईश्वर की इच्छा को अपरिहार्य, अन्तिम और अन्यतम स्थापित करने हेतु कहती हैं कि वह अदृष्ट आज भी प्रमुख है जिसकी इच्छा के बिना मैं एक कदम भी आगे नही बढ सकती।[69]

मन्नू भण्डारी लेकिन ईश्वर की अपेक्षा जीवन के वृहत्तर मूल्यों के लिए, अपनी सार्थकता के लिए विवेक, मानवीय संवेदना और सह अनुभूति को अधिक आवश्यक मानती हैं। इनके अनुसार भारतवासी ईश्वर से नही ईश्वर की रूढि से प्यार करता है। 'नीत्शे ने अपनी सहज दार्शनिक भाषा में तो यह कहा था कि ईश्वर मर गया है और (आपका प्रश्न सुनकर) मुझे लगा कि उसे जिन्दा रहने का कोई हक नहीं है। आप ईश्वर को नही, सच्चे भारतीय की तरह ईश्वर की रूढि से प्यार करते हैं। ईश्वर तो एक आस्था का नाम है बन्धु, और वह आस्था अपने आसपास भी हो सकती है अपने भीतर भी। ईश्वर और धर्म के रूढिबद्ध रूप का पालन करके तो हम तिलक लगाकर जिन्दगी भर माला ही जपते रह जाएँगे।'[70]

धर्म की रूढिबद्ध आस्था का प्रतिकार करने की समर्थक लेखिकाएँ धर्म और समाज की परिभाषाएँ बदलने को तत्पर है। मालती परुलकर कहती हैं 'जहा तक धर्म का सवाल है मैं समझती हूँ धर्म कोई बहुत आवश्यक वस्तु नही है।'[71]

इसी चिन्तन दिशा के कारण ये लेखिकाएँ उस व्यवस्था को नारी के लिए एक बड़ी चुनौती मानती हैं जो रूढिबद्ध धर्म के नाम पर सदैव नारी के लिए बन्धनों की सृष्टि करती रही है। चन्द्रकिरन सौनरेक्सा उसकी व्याख्या इन शब्दों में करती हैं— 'भारतीय नारी को मानव समाज में एक मानव के नाते जीने का अधिकार प्राप्त करने के लिए अभी और भी संघर्ष करना पडेगा। उस धर्म और समाज की प्राचीन परिभाषा को बदल कर अपने को उस मानवी रूप में प्रतिष्ठित करना है जो मानव की सहयोगी साथी पूरक हो न कि गृहलक्ष्मी, देवी या पाँव की जूती हो।'[72]

फशन

नेखन के स्तर पर आधुनिकता के प्रति समर्पित हावर भी अधिकाश लेखिकाएँ स्वय आधुनिका बनना पसन्द नही करती हैं। कम स कम फशन के प्रति तो इनका रुझान ही नही है। जीवन म परम्परागत सादगी को ही अपनाए रखने के लिए सचेष्ट है। शशिप्रभा शास्त्री को कृत्रिम प्रसाधना स शरीर को सजाना पसन्द नही। 'खुद की देह को बेतुके ढग से सच्चे झूठ मोतिया से सजाने जसी अपनी रात दिन की जिन्दगी म भी मैं इतनी ही सादी हो गयी हूँ।[73] दीप्ति खण्डेलवाल भी बाहरी सजावट की अपेक्षा आन्तरिक सज्जा को सम्मानित करत हुए कहती हैं उनकी बाहरी सज्जा साधारण होती है किन्तु भीतर की सज्जा को वह पल पल सवारती सहेजती रहती है।'[74]

मन्नू भण्डारी लखन की ही भाँति जीवन म भी सादगी को अपनाए रखन की हिमायती हैं। उनके दनिक जीवन म कही कोई दुराव पोज और बनावट नही। जो कुछ वे नही है उस दिखान की सतई कोई चेष्टा नही करती हैं। वे नारी हैं - मात्र नारी और यह नारीत्व एक ओर भारतीय परम्पराओ तथा दूसरी ओर आधुनिक परिवेश दाना को बडे सहज ढग स आत्मसात किए हुए है।[75] उषा प्रियम्वदा विदेश मे रहकर भी भारतीय सादगी और सस्कारो स यथावत जुडी हुई है। घनश्याम मधुप के शब्दा म— इस सबके बाद भी उषा के सस्कार पूरी तरह भारतीय हैं।[76] कृष्णा सोबती मितव्ययिता के आदश का अनुपालन करते हुए कहती है अपने लिए कम चीजें खरीदती हूँ। यहाँ वहा का छोटा मोटा रग बिरगा सामान इकट्ठा करत जाना मुझे नापस द है। बसकर इस्तेमाल होने वाला ठोस समान ही मेरी आँखो पर चढता है।'[77]

जातीयता

धम की ही भाँति जातीय सकीणताआ का भी विरोधी भाव इनके चिन्तन का आधार है। विचार के धरातल पर ये लेखिकाएँ इनस ऊपर उठ चुकी हैं और इसकी चर्चा तक करना आवश्यक नही मानती। इस जाति की बीमार बना देने वाली भावुकता को य पसन्द नही करती और अपने वचारिक बदलावा की समता म इस तरह की सकीणताओ को किसी तरह का महत्त्व नही देती। शशिप्रभा शास्त्री कहती हैं — बीमार बना दने वाली भावुकता से मुझे चिढ है। अपने इस बदलाव के सामन जाति पाति की प्रथा तोडन बाडने जसी बात अब बहुत बेकार लगती है। प्रेम और श्रद्धा के सामन सब छोटा लगता है।[78]

नारी चिंतन

एक नारी के रूप म लखिकाआ न स्वय न स्त्री की कठिनाइयो को प्रत्यक्ष अनुभव

किया है। नारी पर होने वाले अत्याचारों, स्वावलम्बिता के लिए संघर्षरत नारी के प्रति इनकी विशेष धारणाएँ हैं। इसके मूल में पुरुष के आचरण को ही इन्होंने मुख्यतः अनुभव किया है। इस चिन्ताधारा ने इनके उपन्यासों को व उनमें पुरुष के आचरण को रूपायित करने का कार्य किया है। अतः नारी के प्रति दृष्टिकोण को भी यहाँ जान लेना आवश्यक है।

भारत में आज भी पुरुषों से कम समझकर देखा जाता है। शिक्षित हो अथवा अनपढ़ सामान्यतः नारी या तो सजावटी गुड़िया समझी जाती है या बच्चे पैदा करने की मशीन। पुरुष की भाँति उसे न तो विचाराभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता है न राय देने व आत्म निर्णय का अधिकार ही प्राप्त है। चन्द्रकिरण सौनरेक्सा की धारणा है कि 'सब मिलाकर आज इस बीसवीं सदी में भी हमारे भारतीय समाज में नारी पुरुष के समान नहीं। उससे कुछ नीचे स्तर की मानी जाती है।'[79]

नारी की ऐसी अवमानना ने इन लेखिकाओं को इस बात के लिए सम्प्रेरित किया है कि वे और कुछ लिखें या न लिखें नारी के प्रति अवश्य लिखें। रजनी पनिकर कहती हैं — 'नारियों पर होते अत्याचार देखकर मुझे दुःख होता। उसी समय (बचपन) मेरे मन में एक गाँठ पड़ गयी कि मैं भी नारियों की परिस्थितियों के बारे में कुछ लिखूँ। और जब मैंने लिखना शुरू किया तो वे सारी परिस्थितियाँ, वे सारे परिदृश्य और करुण मूर्तियाँ बार बार मेरे मन को झकझोर जाती।[80]

नारी को उपन्यासों का अनिवार्य विषय बनाए जाने के विषय में अपने विचारों को व्यक्त करते हुए मन्नू भण्डारी कहती हैं 'अब तक कहानियों और उपन्यासों की नायिका नारियाँ अधिकतर किसी न किसी पुरुष के व्यक्तित्व पर केन्द्रित होकर उसकी स्वीकृति या अस्वीकृति से प्रतिक्रियान्वित होकर या कहा जाये कि पुरुष की 'विशफुल थिंकिंग' के अनुरूप श्रद्धामयी, करुणामयी, आज्ञापालिनी त्याग और तपस्या की मूर्ति गढ़ी जाती रही। यह अस्तित्व पुरुष के आधार पर ही खड़ा किया जाता था। नारी का वह चित्रण उसकी वास्तविक समग्रता को व्यक्त करने में असमर्थ था। किन्तु आज के कथाकार ने इस मनगढ़न्त मूर्ति को खण्डित कर उसके वास्तविक यथार्थ में चित्रित किया है। आज की कहानी में नारी के बहुमुखी प्रेम सम्बन्धों की चर्चा है, नैतिकता और अश्लीलता के परिवर्तित बोध अंकित हैं और नारी अपनी समग्रता और विविधता में चित्रित है।'[81] यह चित्रण स्त्री पुरुष सम्बन्धों में लेकर नारी स्वातन्त्र्य की दुहाई देने तक की स्थितियों को उजागर करने के रूप में फैला दिखाई देता है।

नौकरी पेशा नारी

सामयिक जीवन में परिलक्षित मुख्य परिवर्तन नारी की स्वावलम्बिता के लिए

नौकरी आदि करना है। "न वर्किंग वूमन' या अन्य रूपों में पुरुषों के असहयोग पूर्ण व्यवहारों से निरंतर जूझना पड़ता है। लेखिकाओं ने ऐसी नारियों की समस्याओं को भी अपने नारी चिंतन का आधार बनाया है। रजनी पनिकर ने तो मानो मिशनरी भाव से नौकरी पेशा नारी की कठिनाइयों को प्रस्तावित करने का प्रयास किया है। उनका विश्वास है कि हमारे समाज में पुरुष अभी तक इतना प्रगतिशील नहीं हुए हैं कि अपनी युजुआ आदतों को छोड़ दें और नौकरी करने वाली पत्नी का हाथ बटायें। [80] इनको इस बात की भी शिकायत है कि 'वर्किंग वूमेन' का स्वरूप साहित्य में उपयुक्त ढंग से चित्रित नहीं हुआ है। समान योग्यता के आधार पर नौकरी पाते हुए भी नारी को पुरुष सहकर्मियों की अपेक्षा अधिक परिश्रम और सावधानी बरतनी पड़ती है। 'क्योंकि अयोग्य या काम में ज़रा सी भी ढीली नारी को उसके पुरुष साथी खूब उल्लू बनाते हैं। वह घर के भीतर भी और बाहर भी पुरुष की दया की पात्र है। प्राय देखा गया है कि नारियां अपने काम के प्रति अधिक दायित्व महसूस करती है। उन्हें भी उसी तरह संघर्ष और ईर्ष्या का शिकार होना पड़ता है जैसे पुरुषों को। फिर भी हमारे साहित्यकार उनका चित्रण सही रूप में क्यों नहीं कर पाते ? [80]

वर्किंग वूमेन को उसका वास्तविक श्रेय प्राप्त हो इसके लिए लेखिकाएँ विशेष प्रयत्नशील दिखाई देती हैं। ऐसा न होते देखकर रजनी पनिकर अत्यंत खेदपूर्वक कहती हैं 'इतने वर्षों बाद भी देखती हू कि अपनी आजीविका कमाने वाली नारी का संघर्ष ज्यों का त्यों बना हुआ है। पुरुषों की प्रवृत्तियां वैसी ही है। नारी को कार्य क्षेत्र में आज भी उतनी ही दिक्कत उठानी पड़ती है जितनी पहले उठानी पड़ती थी। [81] उसे पुरुषों का सहयोग न घर में प्राप्त होता है न व्यवसाय में।

चन्द्रकिरन सोनरेक्सा कहती है—'नौकरीपेशा स्त्री के संदर्भ में भी यह बात लागू होती है। उसे पति के पुरुषोचित अहम को संतुष्ट करने के लिए घर में जहां तक संभव हो झुककर पूर्ण समर्पिता गृहलक्ष्मी के सभी व्रत य पूरे करने होते हैं और कार्यालय में भी जहाँ नारी होने के नाते वह एक लोभनीय वस्तु भी है, अपना संतुलन बनाना पड़ता है।'[85] इस प्रकार ये लेखिकाएं समस्याग्रस्त नारी की पीड़ा को अनुभव करती है और उसकी पीड़ाओं को दूर करने के लिए मानो अपने लेखन को माध्यम बनाकर प्रयुक्त करती दिखाई देती है।

पुरुषों के प्रति धारणाएँ

पुरुषों के प्रति लेखिकाओं की दृष्टि का भी इस शोध प्रबन्ध के लिए अत्यंत महत्त्व है। इनके आधार पर ही इनके उपन्यासों के पुरुष पात्र निर्मित हुए हैं। चन्द्रकिरन सोनरेक्सा कहती हैं— नर और नारी जीवन में एक दूसरे के पूरक होते है। दोनों

की सुख सुविधा परस्पर सन्तुलन पर आश्रित है। परिवार और समाज की उन्नति तभी सभव है जब समाज के दोनो अग यानी पुरुष व स्त्री परस्पर प्रतिद्वन्द्वी न हो अथवा अपने को स्वामी या सेवक समझने के स्थान पर एक दूसरे के साथ सहायक और साथी समझते हो। यह बात दूसरी है कि कोई काम दैनदिन जीवन के लिए देश या समाज के लिए अधिक लाभदायक हो तो उसका महत्त्व कुछ अधिक हो और उसके कर्ता का महत्त्व भी समय की परिधि म बढा चढा हो पर तु यह महत्त्व पुरुष अथवा नारी होने के नाते नही है। बुद्धि की दृष्टि से नर नारी म कोई अतर नही है। दोनो म ही बुद्धिमान एव बुद्धिहीन जन्मते हैं और शारीरिक दृष्टि से नारी यदि थोडी दुबल भी हो तो आज के यन्त्र युग म मात्र दहिक बल या पहलवानी अपने आप म कोई महानता नही उसे आप एक कला मान सकते हैं।'86

नर व नारी दोनो को समान मानने के कारण चन्द्रकिरन सोनरेक्सा पुरुषो के द्वारा स्त्रियो के शोषण का व स्त्रियो द्वारा पुरुषो के विरोध का प्रतिकार करती है। उन्ही के शब्दो म–' नारी स्वातन्त्र्य के नाम पर पुरुषो का विरोध अथवा समाज की सुरक्षा के नाम पर नारी का शोषण दोनो ही बातें मानव समाज की उन्नति म बाधक है।'87 इस कोटि का आदशवाद समाज म यथाथ नही बनाया जा सकता है। सचाई यह है कि नारी को सदव सदेह की दृष्टि से देखा जाकर उसको पुरुषो के द्वारा अपने से कम करके ही आका जाता है। दूसरी ओर नारियो यह महसूस करने लगी है कि चूकि व पुरुषो स किसी भी दशा म कम नही हैं अत सुविधाओ के भोग का अधिकार सिफ पुरुषो के पास ही आरक्षित क्यो रहे? ये लेखिकाएँ इस प्रकार के चिन्तन को दूषित चितन मानती हैं। इसके लिए चन्द्रकिरन सोनरेक्सा ही कहती हैं नारी देह पर बलात उसकी इच्छा के विरुद्ध अधिकार प्राप्त करके भी उसी नारी को अपवित्र मानने की प्रवत्ति इसी बात की द्योतक है कि अभी तक नारी का दरजा पुरुष से काफी नीचा है और भारतीय नारी को मानव समाज म एक मानव के नाते जीने का अधिकार प्राप्त करने के लिए अभी और भी सघष करना पडेगा। उसे धम व समाज की प्राचीन परिभाषा को बदलकर अपने को उस मानवी रूप म प्रतिष्ठित करना है जो मानव की सहयोगी साथी, पूरक हो न कि गृहलक्ष्मी, देवी या पाँव की जूती।'88

ये लेखिकाएँ यह महसूस करती है कि पुरुषो की दृष्टि मे नारी और पुरुष की मैत्री एक ही ढग की होती है। नारी और पुरुष म कोई सम्बन्ध नही होता, केवल यौन सम्बन्ध होता है। 89 पुरुषो के एतद् विषयक चिन्तन के विरुद्ध आवाज उठाना ये अपना कतव्य मानती हैं।

अत्यत तल्खी भरे शब्दो म इन्दु जन कहती है – 'पुरुष शायद यह कभी वर्दाश्त नही

कर सकता कि स्त्री आत्मनिर्भर हो जाय। वह छतनार के वृक्ष की भांति औरत का पड़ती बेल की तरह लिपटाए रखना चाहता है। उस कब सहन है कि वह बेल तन छोटा पौध बन जाए और खुद जमीन म रस पीकर मोनिया की तरह महकने लग या टमाटर की तरह फलने लग।[90]

अस्तु पुरुष के प्रति प्रतिद्वंद्विता की भावना इनके चिंतन का आधार है। पुरुष का पति के रूप म तो असहयोगी है ही सामाजिक दृष्टि स भी उसकी आत्मपूर्ण वृत्तियाँ नारी की कोमल अनुभूतियों के विपरीत ही है। यही इन लेखिकाओं के पुरुष चिंतन की पृष्ठभूमि है।

रचना प्रक्रिया का स्वरूप

रचना प्रक्रिया की विशिष्टता भी लेखिकाओं म समान व्यक्तित्व का उद्घाटन करती हैं। इनकी मान्यता है कि बाहर की विस्तृत दुनिया के साथ ही साथ लेखक का भीतर अपना आकाश होता है, एक अलग संसार होता है। कई बार बाहर जो कुछ घटित हो रहा है वह इतना पीडाकर होता है कि वह भीतर पकर लेखन के माध्यम से फूट पड़ता है। यह दर्दीली स्थिति कोई प्रसंग हो सकती है कोई क्षण हो सकता है या कोई समूची घटना हो। किन्तु इतना निश्चित है कि एक सच्चा लेखक भीतर और बाहर की इन दो सर्वथा भिन्न दुनियाओं म जीता मरता है। और दोनों म जो भी हलचल होती है वही उसका भोगा हुआ यथार्थ बनकर प्रकट होती है।

कृष्णा सोबती का विचार है कि जो कुछ जीया जा रहा हो, लेखक के आसपास घट रहा हो, वह अपने आप म लेखक के लेखन स कहीं महत्वपूर्ण होता है। जो अपने बाहर के 'साधारण' को नजर अंदाज कर अपने अन्दर के असाधारण को आत्म चिंतन के द्वारा अपने ही मन के बन्द कपाटों म 'वेजीटेट' होने देते हैं वह जिन्दगी की केवल एकतरफा तस्वीर ही प्रस्तुत कर सकता है। अधिक नहीं।[91]

खण्डित और जीवन के अधूरे साक्षात्कार स अपनी लेखनी को यथा सम्भव बचाए रखने और उसमें समग्रता और सम्पूर्णता को परिभाषित करने के सम्बन्ध मे कृष्णा सोबती का कहना है कि कई बार लेखक के लिए 'घट रहे के बाहर रहना उसके अंदर रहने से अधिक 'इनवाल्विंग' होता है। असल बात दो सीमाओं के मध्य स 'अपने अंदर' फिर 'अपने बाहर' भावना की है जो अपने से बाहर है और जो अपने अन्दर है इन दोनों के बीच मे ही वह सीमान्त है जहाँ जीवन और साहित्य की मर्यादाएँ एक दूसरे को छूती हैं, एक दूसरे को चुनौती देती है टकराती हैं कुछ तोड़ती हैं फिर कुछ नया पैदा करती हैं जो एक साथ जीवन और साहित्य का मान्य होता है।'[92]

रचना की अ तप्रक्रियाओ को लेखिकाओ ने लेखन क स्तर पर भी गहराई से लिया है। दीप्ति खण्डेलवाल अपने लेखन के बारे मे इस सत्य को स्वीकार करती है कि खडित स्तरो पर चलती, बाहर स भीतर की ओर की यात्रा दीप्ति का अति त्रासद भोगा हुआ यथार्थ रहा है। स्थूल स्तर पर वह निर तर हार रही थी सूक्ष्म स्तर पर निर तर मर रही थी उसका यथार्थ इतना विद्रूप था कि चेतना के स्तर पर सु दर एक विद्रूप बनकर रह गया। फिर इसी हार, इसी मृत्यु, इसी विद्रूप के बीच उसके लेखन ने ज म लिया। जस उस लडखडाते परो पर खडे होने के लिए एक अपनी जमीन मिल गयी जस उस सार अस्वीकारो के बीच एक स्वीकार मिल गया।'[93]

म नू भण्डारी तो बचपन स ही हर छोटी बडी बात की तीव्र प्रतिक्रिया प्रकट करती रही है। यह प्रवृत्ति ही उनकी लेखनी को एक सुनिश्चित आधार प्रदान कर सकी है। वे कहती है 'प्रेरणा कोई ऐसी ठोस वस्तु तो नही जिसके पान की तिथि, स्थान आदि का ब्योरा प्रस्तुत किया जा सक। जहा तक मैं समझती हू वह क्रमश स ही हर छोटी बडी बात की तीखी प्रतिक्रिया मरे भीतर होती रही है जिसके लिए उस समय कहा जाता था कि म नू बहुत गुस्सल है, बात बात पर भनभना उठती है। घर के साहित्यिक राजनतिक वातावरण न इ ही प्रतिक्रियाओ को एक सही और सजनात्मक दिशा द दी।'[94]

शशिप्रभा शास्त्री इसे स्वीकार करती हैं कि उ होने जो कुछ जीया है लगभग वही उनक लेखन म प्रकट हुआ है। इसका कारण स्पष्ट करत हुए वे कहती है हर सामा य व्यक्ति की तरह मै भी कई स्तरो पर जीती मरती हूँ। दुनिया मे जितने भी रिश्ते होते है, जितने भी सबध हर रिश्त की गरिमा और गहराई को मैंने बहुत करीब से पहचाना है, उसम सास ली है उसम डूबी तिरी हूँ और प्रयत्न करती रही हूँ कि अपन लखन मे सब कुछ उसी रूप म रखकर बहुत कुछ उसी रूप म रख सकू।'[95]

हर सृजनधर्मी कलाकार क लिए इस कोटि की अनुभूति को एक अनिवार्यता बतलात हुए 'मोम के मोती उप यास की पृष्ठभूमि म रजनी पनिकर कहती है— मह उप यास लिखते समय मुझे महसूस हुआ कि जिन अनुभवो स कोई लेखक या लेखिका वास्तविक रूप से प्रभावित होती है वे अनुभव और इन अनुभवो के सदम म आए पात्र मन की कच्ची मिट्टी म सृजन प्रक्रिया का पूवरूप बनकर बीज की तरह रम जात है।'[96]

यही बीज अनुकूल परिस्थितियो म जीवन के अ य अनुभवो के खाद से पोष्टिकता को प्राप्त करके विकसित होता रहता है। लेखन की बहुविधता मे अपनी सत्ता को

उप यास लखिकाओ का व्यक्तित्व और जीवन दृष्टि

पूरी तरह विलुप्त कर देने पर भी लेखक की आत्मा का सन्ताप नहीं हो पाता और वह उसमें अपूर्णता ही देखता रहता है। शिवानी ऐसे ही विचारों को प्रकट करते हुए कहती हैं "जीवन की समग्रता में कहानी की एकात्मकता मेरे लिए सदैव एक अनोखे आनन्द की अनुभूति बन उठती है, किन्तु अपने पात्रों की सृष्टि कर उनमें भय विस्मय हर्ष विषाद सबको अपने अनुभूत जगत् में रसाप्लावित करने पर भी मुझे कभी सन्ताप नहीं होता बराबर यही लगता रहता है कि कहीं चूक गई हूँ।"[97]

इस प्रकार नैसर्गिक सम्वेदनाओं से अपने को प्रतिबद्ध मानने वाली ये लेखिकाएँ लेखन की रचना प्रेरणा के रूप में बाहर और भीतर की दो समानान्तर जिन्दगियों की प्रतिक्रियाओं को प्रदर्शित करती हैं।

यथार्थ का निरूपण

उपन्यास जीवन के यथार्थ का चित्रण है। कल्पना के सहारे खड़ा किया गया कथानक भी पाठकों को तब तक ग्राह्य नहीं होता जब तक कि वह यथार्थ की तरह प्रतीत न हो। यह यथार्थ उपन्यास को मानव जीवन के इतना निकट ला देता है कि फिर वह कोरी कल्पना प्रसूत कहानी प्रतीत न होकर जीवन की वास्तविक अभिव्यक्ति लगने लगता है। ये लेखिकाएं भी यथार्थ चित्रण के प्रति अपने मौलिक विचार रखती हैं।

कृष्णा सोबती कहती हैं "जिस यथार्थ में मानवीय संवेदना की गूंज नहीं जिस कल्पना में ठोस यथार्थ का रंग नहीं ऐसा पीलिया साहित्य अपनी व्यापारिक सफलता के बावजूद साहित्य के गम्भीर विवेचन का हकदार कभी नहीं होगा। जिस बासती साहित्य से मात्र पाठकों का मनोरंजन होता है या केवल आरोपित निराशा हाथ लगती है अथवा प्यार की असफल (फर्जी) रात के कसैलेपन का बदजायका ही मिलता है। ऐसे साहित्य से गम्भीर अपेक्षाएं किसी को नहीं।"[98]

ममता कालिया यथार्थ के आत्मसात् किए जाने के कारण साहित्य में उभर आए परिवर्तनों को सांकेतित करती है। वे यह स्थापित करती है कि "अब कहानी का वह रूप मर गया है जिसमें एक अच्छी भूमिका होती थी, चरित्र होते थे घात प्रतिघात गढ़े जाते थे, एक सल्यूशन होता था, एक अच्छा अन्त होता था।"[99]

यथार्थ चित्रण में इन लेखिकाओं के साथ एक विडम्बनापूर्ण स्थिति यह है कि ऐसा करते समय ये पात्रों के साथ इतना एकीकृत हो जाती हैं कि इनका कथानक इनकी अनुभूतियों का छायाचित्र मात्र हो जाता है वह फिर ठोस सच्चा यथार्थ नहीं रह पाता। इसे स्वीकारते हुए दीप्ति खण्डेलवाल कहती हैं— संवेदनाओं के धरातल पर

जडी वह अपने पात्रो के साथ जीती मरती होती है। यथार्थ को हर कोण से चित्रित करती होती है किन्तु उन क्षणो मे वह लेखिका नही स्वयं पात्र होती है चित्रकार नहीं स्वयं चित्र होती है।'[100]

मन्नू भण्डारी भी इस कमजोरी को स्वीकार करती हैं। उन्ही के शब्दों में 'मैं आज भी नही जानती कि पात्रो के साथ अपने को यो एकाकार कर देने की वृत्ति लेखन मे साधक है या बाधक—वह बनाती है या बिगाडती है, पर इस एकात्मकता को इस बार मैंने अनुभव किया और बडी गहराई मे किया।'[101] मन्नू भण्डारी के लेखन की इस कमी का सकेत राजेन्द्र यादव ने भी दिया है 'मेरे और मन्नू के लेखन मे यही मौलिक अन्तर है। वह कथा के पात्रो के साथ इतनी अधिक एकाकार हो जाती है कि उनका दुर्भाग्य उसे अपना दुर्भाग्य लगता है।'[102]

शिवानी लेखन के स्तर पर यथार्थ की नही आदर्श की पोषक रही है। ये अपने पाठको को देवद्रुमो की बयार, कोशी का क्षीण कलेवर, कुमाऊँ का अलभ्य सूर्योदय, पहाडी वधुओ का सलज्ज हास्य दिखलाना चाहती हैं। और इस प्रकार कहानी लेखन को सहज आनन्दानुभूति का हृदय की भडास, को निकालने का एक सुन्दर तरीका मात्र मानती हैं। उन्ही के शब्दो मे 'कहानी लिखने का एक आनन्द यह भी है कि हृदय की भडास, क्रोध या विवशता कहानी के निर्मल जल प्रवाह के साथ वह चित्त को बना जाते हैं निष्कलुष, शान्त एव क्षमाशील।[103] इसलिए इनके सामने लेखन की यह समस्या नही है कि किसी समस्या से कैसे निपटा जाय वरन अपने अनुभवो को लिख देना मात्र ही इनकी समस्या है। इसी से पनपती है किस्सागोई की प्रवृत्ति जो इनके लेखन को लोकप्रियता तो दिला देती है पर उन्हे सामयिक यथार्थ से परे खीच ले जाती है। शिवानी के लेखन मे यथार्थ को आत्मसात् करने की इस कमजोरी के बारे मे दुष्यन्त कुमार कहते हैं—'शिवानी लोकप्रियता की लीक पर है उनकी ट्रेजेडी यह है कि उनके पास सम्पन्न अनुभव है चीजो को बाहर से देखने की साफ दृष्टि है किन्तु यथार्थ की भूमि पर प्रयोग करने और रिस्क उठाने की सामर्थ्य उनमे नही है।[104]

उषा प्रियम्वदा ने शिवानी के लेखन के विपरीत नारी की बदली हुई मान्यताओ, परिस्थितियो को कथा विषय बनाया है। 'रुकोगी नही राधिका' की नायिका मानो लेखिका की ही दृष्टि को प्रस्तावित करते हुए कहती है 'जो आप चाहते हैं वही हमेशा क्यो हो? क्या मेरी इच्छा कुछ भी नही है? मैं आपकी बेटी हूँ यह ठीक है पर अब मैं बडी हो चुकी हूँ और मैं जो चाहूँगी वही करूँगी।[105] इसी कारण उषा ने यथार्थ के प्रति जो आस्था प्रदर्शित की है उसके बारे मे घनश्याम मधुप का कहना है— जीवन के यथार्थ और अनुभूत सत्यो को अभिव्यक्त करने में इन्होंने जिस साहस का परिचय दिया है वह सहज नही है।[106]

चन्द्रकिरण सौनरेक्सा भी यथार्थ चित्रण की समर्थिका है। इनको इस बात का सन्तोष है कि मेरा कोई पात्र काल्पनिक नहीं है, वे सभी वास्तविक हैं।'[107] कृष्णा अग्निहोत्री नारी की संस्कारबद्धता को महसूस करते हुए भी यथार्थ चित्रण की हिमायती है। स्तरीय लेखिकाओं के द्वारा जीवन के विविध क्षेत्रों के अंकन के प्रति अपने सन्तोष को व्यक्त करते हुए वे कहती हैं— मेरी समझ में तो रोमांटिक यूटोपिया ऐसा कुछ आजकल का चलन तो हो गया है। और सभी इसमें ग्रस्त हैं फिर केवल लेखिकाओं को ही इससे ग्रस्त क्या कहा जाय?'[108] किन्तु मालती जोशी अपने लेखन की सीमाओं को स्वीकारते हुए कहती हैं मेरा लेखन क्षेत्र सीमित है अवश्य, पता नहीं आप इसे प्रेम कहानियों के दायरे में मानते हैं या नहीं। मेरी कहानियाँ 'बाय मीट्स गर्ल' से शुरू होकर विवाह पर समाप्त नहीं होती। मेरी कहानियों की दुनिया घर आँगन में ही सिमट कर रह गई है। भीड़भाड़ से बचकर अपनी इस छोटी सी दुनिया में व्यस्त हूँ।[109]

यथार्थ और कल्पना

यथार्थ के प्रति आग्रह रखकर भी क्या लेखिकाएं सचमुच उसे अभिव्यक्त कर भी पाती हैं? इस प्रश्न पर भी विचार किया जाना आवश्यक है। नारी होने की प्राकृतिक सीमाओं के कारण अथवा पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था में जिस एकांगी ढंग से यह स्वीकारा जाता है कि मात्र पुरुष चिंतन ही सही और अनुकरणीय है क्या इनकी लेखनी अप्रभावित रहती है? बेबाक ढंग से यथार्थ (या नग्न यथार्थ) चित्रित करने में क्या इन्हें किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती? इन प्रश्नों के संदर्भ में लेखिकाओं के चिंतन को समक्ष प्रस्तुत करना आवश्यक है।

शिवानी स्पष्ट शब्दों में इसे स्वीकारती है कि 'मानव स्वभाव ही कुछ ऐसा है कि वही ईमानदारी से प्रस्तुत किए जा रहे अपने निष्कपट आत्म निवेदन में भी वह किसी ग्वाले के जन्मजात चातुर्य से, दूध में पानी मिलाने की गुंजाइश पहले ही रख लेता है।'[110] कल्पना के सम्मिश्रण की स्वीकारोक्ति की ओट में मानो ये लेखिकाएं यों यथार्थ की वास्तविकताओं में अपनी स्वतन्त्रता को प्रस्तावित करती है।

चन्द्रकिरण सौनरेक्सा कहती है— रही बात वास्तविकता से यथार्थ पैदा करने की तो जीवन में पृथक पृथक स्थानों पर, पृथक पृथक परिस्थितियों में जीते जागते पात्रों को एक उपन्यास में गूंथने के लिए घटनाओं का हेर फेर कुछ नहीं कल्पना की चाशनी भी देनी पड़ती है।[111] कल्पना का उपयोग इनको इसीलिए ग्राह्य और स्वीकार्य है जब तक वह यथार्थ को बाधित न करे।

भोगा हुआ यथार्थ

आज के रचनाकार ईमानदार लेखन के लिए भोगा हुआ यथार्थ के चित्रण को

अनिवार्यता मानते है। लेखिकाओ के लिए किन्तु यह सर्वाधिक उलझनमयी स्थिति है। नारी होने के नाते वे भोगा हुआ यथार्थ को अभिव्यक्त करने से घर-बाहर सर्वत्र विरोध का हेतु बन जाती है। लेखन मे यथार्थ की अनिवार्यता को स्पष्ट करते हुए निरुपमा सेवती कहती है — 'समर्पित लेखन की एक शर्त यह भी है कि अपने या पराये किसी अनुभव को छिपाया न जाये। सच केवल कलात्मकता से ही रचना मे आए, लेकिन उसे सामने लाने को विवश होना पड़े।'[112]

लेकिन ऐसा प्रयास एक लेखिका के लिए कितनी मुश्किलें खड़ी कर देता है इसे स्पष्ट करते हुए मृदुला गर्ग कहती है — 'किन्तु जब भी कोई लेखिका बहुत सचाई से किसी अतर्द्वन्द्व को लिखती है तो प्रतिक्रिया (अधिकतर पुरुषो की) यह होती है कि यह सचाई नही केवल तल्खी है।'[113]

ऊपरी तौर पर सारी उन्नति के बावजूद भारतीय समाज मे भीतर ही भीतर पुरातन जड़ता और संस्कारबद्धता यथावत् उपस्थित है। इस कारण लेखिकाओ के लिए उपस्थित कठिनाइयो के बारे मे कृष्णा अग्निहोत्री कहती है — समाज, पाठक और लेखक अच्छी खासी दूरी है उनमे। ऐसी स्थिति मे हमारा समाज हमारी भावनाओ को क्या समझेगा? ऊपर से सिरदर्द यह कि पारिवारिक सही यथार्थ लिखा तो घर वाले रुष्ट। पति पत्नी की कहानी लिखी तो घर वाले रुष्ट।'[114]

इसी कारण भोगा हुआ यथार्थ की अभिव्यक्ति के संकट को शिवानी अपने शब्दो मे इस प्रकार प्रकट करती है मैं तो मानती हूँ किसी भी लेखक के अपने पारिवारिक परिवेश के विषय मे लिखना कठिन ही नही, एक प्रकार से असम्भव ही है। कोई भी व्यक्ति चाहे वह पक्का बाह्यमुखी ही क्यो न हो, अपने पारिवारिक परिवेश के पट, नेशनल म्यूजियम के द्वारा की भांति जनता जनार्दन के लिए नही खोल सकता।'[115]

उपर्युक्त बाधाओ के रहते हुए भी आज की लेखिकाएँ मन्नू भण्डारी के इन शब्दो मे यह दावा करती हैं वास्तविकता जिस रूप मे हमारे सामने आती है, हम अपनी पूरी संवेदना के साथ उसी रूप मे पाठक तक उसे पहुँचा देना चाहते है।'[116] ऐसी दशा मे लेखक के लिए वे सारे अनुभव, भले ही दूसरो के द्वारा ही भोगे गए हो, उसके स्वानुभव बन जाते हैं। इसके लिए मन्नू भण्डारी ही कहती हैं– 'इतना जरूर कहूँगी कि दूसरो का अनुभव भी रचना के स्तर तक आते आते कहीं लेखक का अपना अनुभव हो जाता है। बात असल मे यह है कि लेखकीय अनुभूति और सामाजिक अनुभूति का मिलन बिन्दु कहाँ होता है, यह रचना प्रक्रिया का ऐसा टेढा मसला है कि इसका विश्लेषण संभव नही। पर इतना निश्चित है कि दूसरो की अनुभूतियाँ सम्वेदना की आँच मे एक एक कर जब इतनी अपनी हो जाती है कि 'स्व' और 'पर' का भेद ही मिट जाता है सृजन तभी सम्भव हो पाता।'[117]

वयक्तिर और सामाजिक अनुभवो के इस आन्तरिक साम्य के कारण भोगा हुआ यथाथ जसी वात को केवल व्यक्ति से बाँध दिया जाना अधिक उपयुक्त नही कहा जा सकता है। इस स्थिति को स्पष्ट करते हुए दीप्ति खण्डेलवाल कहती हैं 'मानवीय सवेदनाओ के प्रति व्यापक धरातल पर खडी वह कहती है—'लेखक केवल इस अथ म एक असामान्य प्राणी होता है कि वह मानसिक धरातल पर विभिन्न कोणो से, अनेक रूपो म जी सकता है। ये रूप ये कोण, उसके अपने व्यक्तिगत जीवन के ही हो ऐसा कहा आवश्यक है ? हर भोगा हुआ यथाथ स्थूल स्तर पर उसका हो, न हो, सवेदना के स्तर पर उसका अपना होता है। मृत्यु को जानने के लिए मरना जरूरी नही होता।[118]

कृष्णा सोबती कहती हैं मैं किसी प्रेरणा या बाह्य दबाव से नही लिखती मैं अपने समूचे ध्यान म रखकर, बढकर जीने की तरह लिखती हू। उसी वक्त लिखती हूँ जब लिख डालने के लिए कोई चारा न रह जाय।'[119] नमिप्रभा शास्त्री भी जो कुछ उ होने जीया है वही नही तो लगभग वही लिखने का दावा करते हुए कहती हैं 'सहे भोगे देखे सुने को आब्जेक्टिव ढग से प्रस्तुत कर देना ही हर लेखक का धम होता है मैं इसका अपवाद नही हूँ। झूठमूठ बनाकर लिखना बडा कष्टकर होता है।[120]

इस प्रकार ये लेखिकाएँ भोगा हुआ यथाथ के बारे मे स्पष्ट विचार रखती हैं। इनके विचार इस धारणा को पुष्ट करते है कि लेखक चाहे वह नारी ही क्यो न हो, चेतना के स्तर पर पहले घटनाओ, स्थितियो का भोग करता है तभी उसके द्वारा कुछ श्रेष्ठ लिखा जा सकता है।

यथाथ चित्रण और 'बोल्ड लेखन'

'बोल्ड लेखन की बात भी यथाथ की अभिव्यक्ति के कारण नारियो के लेखन स जुडी हुई है। बोल्ड होकर लिखना उसकी प्रसिद्धि से प्रत्यक्ष जुडा हुआ है क्योकि इस कोटि के लेखन की अपेक्षाएँ शील से आबद्ध नारी से नही की जा सकती है। लेखिकाओ ने जहाँ भी नारी की सीमाओ का उल्लघन किया है वही उनको एक साथ सराहा या दुत्कारा गया है। नारी का अपनी लक्ष्मण रेखाओ को पार कर पाना आसान नही है। यही कारण है कि इस सम्ब ध मे लेखिकाओ के दो वग हैं।

पहले वग की लेखिकाएँ बोल्ड लेखन को पस द नही करती हैं। नारी की मर्यादाओ म रहने की हिमायत करते हुए शिवानी स्वय पाठको की एतद् विषयक दुबलता को प्रस्तुत करते हुए कहती है *आज का पाठक भी कुछ अश म, उसी सधे पियक्कड सा बन गया है जो* विदेशी आसव को तो चुटकियो म पहचान लेता है पर सादे पानी का स्वाद भूल चुका है। कामू सात्र का अपनी श्वास प्रश्वास के साथ जय जय

घोष करने वाल प्रेमचन्द, शरत यहाँ तक कि रवीन्द्रनाथ का स्वाद भी भूल चुके ह या भूलना चाहते है ।'[121]

दूसरी ओर लेखिकाओ का वह वग भी है जो 'बोल्डनेस' को सप्रयास अपनाती है। कृष्णा अग्निहोत्री कहती हैं 'मुझे तो निडरता से लिखन म मजा आता है। लाग कोसें, गाली दें या कुछ भी कह पर जो महसूस करती हूँ उस ईमानदारी से अभिव्यक्त कर देती हूँ।'[122] लक्ष्मण रेखाओ के उल्लघन के बारे म दीप्ति खण्डलवाल कहती हैं 'मुझे 'बोल्ड' लेखन के लिए सराहा भी गया है आलोचित भी किया गया है। स्त्री होने के कारण कदाचित मुझे उन लक्ष्मण रेखाओ का उल्लघन निषिद्ध था जो हमारी मान्यताएँ रहती आई हैं। लेकिन मैंने लक्ष्मण रेखाओं को लाँघा है इसलिए कि स्त्री होने के साथ मैं एक मानवी भी हूँ। मानवीय चेतना अपनी पूरी तीव्रता एव परिपूर्णता के साथ मेरे वक्ष म उसी तरह धडकती है जैसे किसी पुरुष के वक्ष मे।'[123]

बोल्डनस की अतिशयता किन्तु कई बार लखिकाओ को भ्रमित भी कर देती है। इस कारण उन्ह प्राय सामाजिक प्रताडनाएँ भी झेलनी पडती है। इसे अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर निरुपमा सेवती इन शब्दा म व्यक्त करती है 'सब पता चला कि लेखिका अगर काई बोल्ड चीज लिखेगी, ता फब्तियो और प्रश्नो की बौछार झेलने का जाखम जरूर सिर पर टगा रहेगा।'[124]

ऐस अवाछित प्रसगा से घबरा कर तथा मिथ्या यश के लिए अपनाई गई बोल्डनस की वास्तविकता जान लेने पर शशिप्रभा शास्त्री कहती हैं 'अब मुझे कुछ भी बोल्ड नही लगता सब कुछ साधारण हो लगता है।[125]

बोल्ड लेखन के सदभ मे यह भी विचारणीय है कि सभी क्षेत्रा म इन्होने निडरता का प्रदर्शन नही किया है। सिफ यौन सम्बन्धा के खुले चित्रण को ही इन्होने बोल्ड लेखन का नाम दे दिया है। जीवन के सभी क्षेत्रो म ऐसा नही किया जाने से बोल्डनस भी इनके लिए सकुचित हाकर रह गई है।

निष्कष

उपयुक्त विचार विश्लेषण के आधार पर लेखिकाओ के समन्वित व्यक्तित्व को रूपायित किया जा सकता है। यद्यपि लेखिकाओ के अपने स्वतन्त्र विचार, पूव धारणाएँ सस्कार मान्यताएँ पूरी तरह से एक नही हैं तथापि नारी होने के नात इनके चिंतन की दिशा एक ही है और वह है पीडित नारी की पीडा की मुखर अभिव्यक्ति। स्वाभाविक है कि इनका समन्वित व्यक्तित्व उसी आधारभूत चिन्ता धारा स परिचालित है। यहाँ इनके उस व्यक्तित्व का अभिज्ञान इन बिन्दुओ के आधार पर किया जा सकता है—

1 अधिकांश लेखिकाओं का बाल्यकाल एवं प्रारम्भिक जीवन सम्पन्न अथवा उच्च मध्यवर्गीय परिवेश में व्यतीत हुआ है। इस कारण इन्हें प्रत्यक्ष अर्थाभाव के विकट संस्कार प्राय प्राप्त नहीं हो सके हैं।

2 आज की सभी लेखिकाएँ उच्च शिक्षा प्राप्त हैं इस कारण स्थितियों व अंतर्विरोधों समस्याओं के मूल कारणों को देख, समझ और अपने ढंग से विश्लेषित करने में समर्थ हैं। इनका लेखन इनकी शैक्षणिक योग्यताओं का प्रत्यक्ष सम्बल प्राप्त किए हुए है।

3 अधिकांश लेखिकाएँ आर्थिक स्वावलम्बिता को प्राप्त हैं। इस कारण एक ओर आत्मपोषी स्वतन्त्र व्यक्तित्व का पालन कर रही हैं दूसरी ओर घर और बाहर दोनों क्षेत्रों की कठिनाइयों में नारी जीवन के सत्य का वास्तविक अनुभव रखती हैं। आर्थिक बातों के लिए किसी पर निर्भर न होने से परमुखापेक्षी नारी चिन्तन की संकीर्णता से मुक्त हैं।

4 लेखन के स्तर पर समृद्धता भी इनके व्यक्तित्व की अन्य विशेषता है। इतर विधाओं में प्रतिभा के प्रदर्शन करते हुए भी मुख्यत इनकी लेखनी कथा साहित्य लेखन में ही विशेष प्रवीणता अर्जित हुए है। यह इनकी इस योग्यता को प्रमाणित करता है कि लेखिकाएँ व्यक्ति और जीवन (जो कि उपन्यासों के आधारभूत कथ्य विषय हैं) के चित्रण में पूर्ण समर्थ हैं।

5 इनकी जीवन दृष्टि का मुख्य आधार विद्रोह भावना है। उस सामाजिक चिंतन के प्रति प्रबल विद्रोह का भाव इनमें अत्यंत मुखर है जो नारी के प्रति असहिष्णु और निर्मम है जबकि पुरुषों के प्रति सदय रहकर सुविधाओं का सृजन करती रहती है। यह विद्रोह इनके चिंतन और लेखन दोनों में स्पष्ट परिलक्षित है।

6 प्रत्यक्ष परिलक्षित विपुल प्रमाणों के कारण विवाह की सनातन प्रतिष्ठापना को ये अब अर्थहीन मानती हैं। ये विवाह को आवश्यक तो मानती हैं किन्तु असमायोजन की दशा में तलाक की सुविधा भी चाहती हैं। आज भी विवाह को लेकर नारी का स्वतन्त्रता न प्राप्त होने का इन्हें क्षोभ भी है। ये अन्तर्जातीय विवाह को न केवल अनिवार्य मानती हैं बल्कि इसके द्वारा ही विवाह सम्बन्धी सारी कठिनाइयों का समाधान भी पाती हैं। कुछ लेखिकाओं ने स्वयं ने भी प्रेम विवाह कर अपने आत्म निर्णय को प्रमाणित किया है।

7 ऊपरी तौर पर तलाक की समर्थिका होकर भी ये उसके दुष्परिणामों से आतंकित भी हैं। तलाक शुदा नारी की सामाजिक ताड़नाओं और समझौता करने की विवशताओं को भी ये अपने चिंतन का मुख्य आधार बनाए हुए हैं।

8 प्रेम के बने बनाये फ्रेम को तोड़ने के लिए उद्यत दिखाई देती है। फिर भी नारी को प्रेमजनित दुर्बलताओं से सम्पूर्णतः मुक्त नहीं हो पाई है।

9 सेक्स के चिंतन को लेकर इन्होंने सनातन भारतीय नारी के संस्कारों को तोड़ा है। यौन सम्बन्धों का उन्मुक्त चित्रण करने में इन्होंने संकोच नहीं किया है। पत्नी के विवाह पूर्व के और विवाहेतर यौन सम्बन्धों को ये अवैध नहीं मानती हैं। इस सम्बन्ध में इन्हें पुरुषों से यह शिकायत है कि वे स्वयं तो उन्मुक्त यौन सम्बन्धों के लिए लालायित रहते हैं किन्तु अपनी पत्नी को सनातन पतिव्रत धर्म का अनुपालित करते देखना चाहते हैं।

10 आज के वैज्ञानिक युग में भी प्राचीन, रूढ़िबद्ध नैतिक मूल्यों के पोषण का ये विरोध करती हैं। इसी कारण नवबोध के प्रकाश के प्रति अपने प्रबल विश्वास को प्रदर्शित करने में संकोच नहीं करती हैं। परिवर्तित नैतिकता की इनकी कसौटी यह है कि कोई भी व्यक्ति अपनी कथनी और करनी में कितना साम्य रखता है। बातों में नैतिकता की दुहाई देकर भी अनैतिक आचरण करने वाले व्यक्ति से इन्हें तीव्र घृणा है। यद्यपि इस सम्बन्ध में यह भी विचार रखती हैं कि ऐसा चिंतन देश की वर्तमान अराजक दशा में कोरा आदर्शवाद है तथापि यह विश्वास अपने में बनाए हुए हैं कि आधुनिक बनने के लिए नारी में जितनी सामर्थ्य है उतनी पुरुष में नहीं है। इस कारण पुरुषों की अपेक्षा नारियाँ युग को बदलने की अपेक्षाकृत अधिक क्षमताएँ रखती हैं।

11 लेखिका के रूप में परिवार के प्रति चिंतन ठीक वही है जो सामान्य जीवन में पुरुषों का दिखाई देता है। अर्थात् परिवार को ये उलझनों का केन्द्र मानती हैं। इन गार्हस्थ झंझटों में रहकर लेखन कार्य कर पाना दूभर महसूसती हैं। पारिवारिक जीवन में पति की असहयोग पूर्ण भूमिका को ही इन समस्याओं का मूल कारण मानती हैं। ये महसूस करती हैं कि दायित्वहीन आचरण के कारण ही पुरुष नारी के लिए गृहस्थी के झंझटों को बढ़ाकर उन्हें कठिनाइयों में डालते रहते हैं। अपवाद रूप से कुछ लेखिकाएँ पति की सहयोगिनी भूमिका को देखकर परिवार के प्रति ऐसे विचार नहीं रखती हैं। जबकि कुछ लेखिकाएँ इस सीमा तक पति की पारिवारिक भूमिका से असन्तुष्ट हैं कि उनके कारण अपने लेखक व्यक्तित्व की पर्याप्त हानि होते देखना इन्हें असह्य हो जाता है। कुछ लेखिकाएँ यह महसूस करती हैं कि उनको पारिवारिक दायित्वों का निर्वाह इतने निर्मम भाव से अपेक्षित है कि इस कारण उनका अपना लेखक व्यक्तित्व निरन्तर बाधित रहता है। इस कारण वे तनाव से इन्कार भी नहीं करती हैं।

12 धम व जातीय सकीणताओ के प्रति भी इनके चिंतन म बदली हुई मान्यताएँ दिखाई देती हैं। ईश्वर के प्रति प्रबल आस्था रखने वाली लेखिकाएँ भी हैं तो धम के रूढिबद्ध स्वरूप को नकारने वाले चिंतन की पक्षधर भी हैं। फिर भी नारी की सघषशीलता के उपायण का भाव इनको धम और समाज की सनातन परिभाषाओ को बदलने के लिए प्रेरित करता दिखाई देता है।

13 फैशन का व पसन्द नहीं करती हैं जीवन म मूलत सादगी पसद है। आधुनिकता के रूप म इन्होंने अपनी नायिकाओ की जो परिकल्पना की है वह बौद्धिक धरातल पर आधुनिक होना है केवल फैशन के नाम पर आधुनिक होना नहीं है। यह चिंतन उनके प्रत्यक्ष व्यक्तित्व का भी अनिवाय अग है।

14 इनका नारी चिंतन नारी पर होते अत्याचारो पर केन्द्रित है। इनकी यह मान्यता है कि अब वह समय आ गया है कि पुरुष केन्द्रित सोचा आचरणो को छोड कर नारी को उनका अनुवर्ती न बनाते हुए उसे उसकी समग्रता और विविधता म देखा जाना चाहिए। नौकरी पेशा नारी की कठिनाइयो के प्रति भी ऐसी ही चिन्ता धारा से लेकर व समर्पित है। अपनी लेखनी का फलक माध्यम बनाकर नारी की जुझारू चेतना का अमिट सम्बल बनाने के लिए सचेष्ट है।

15 पुरुषो के दायित्वहीन आचरण से इन्हे अनेक शिकायतें है। नारी की समता से उन्हे प्राप्त सुविधाओ का लेकर इनम तीव्र गुस्सा है। इसी कारण पुरुषो के प्रति एक प्रकार की प्रतिद्वन्द्विता की भावना इनके चिन्तन म परिलक्षित है। पुरुषो के आदम पूण आचरणो एव सकीण विचारो के विरुद्ध आवाज उठाना अपना कतव्य मानती हैं। इस भाँति इनका चिन्तन रूढ सामाजिकता और पुरुषो की विशिष्ट सुविधा भोगिता के विरुद्ध दोहरी लडाई लडने की ओर अग्रसर दिखाई देता है।

16 रचना कम को ये अत्यन्त गम्भीरता स लेती हैं और बाहर के साधारण की अपेक्षा भीतर के असाधारण के अकन की पक्षधर है। अपनी आदर्श मण्डित लेखनी के बावजूद यथाथ के चित्रण की इच्छाएँ पालती है। इनका लेखन एक प्रकार की आत्मतल्लीनता की बानगी देता है इस कारण ये अपने पात्रो मे निजता का विसजन तक कर देती है। भोगे हुए यथाथ के चित्रण म नारी की कठिनाइयो को महसूस करते हुए भी साहसपूवक उसकी अभिव्यक्ति म विशेष अभिरुचि रखती है। यौन चित्रण को छोडकर इतर जीवन प्रसगो मे बोल्ड न होकर भी बोल्डनेस की हिमायती हैं। यद्यपि इस बात को लेकर स्वय लेखिकाओ म ही पर्याप्त मतभेद है। नारी की लक्ष्मण रेखाओ को उल्लघना इनके सोच का चिर काम्य आदश है।

कुल मिलाकर इनके विचारो से जिस लेखिका के एक व्यक्तित्व की छवि उभर कर

सामने आती है वह उस पक्षी की स्थिति में मिलती जुलती है जो दीर्घकाल तक पिंजरे में बंद रहा हो और पहली बार आजाद किया गया हो। इस कारण इनमें खुले आकाश में मुक्त सांस लेने की खुशी भी है तो उस पिंजरे के प्रति मोह भी है जिसमें वह इतनी लम्बी अवधि तक बंदी रहा था।

•

संदर्भ

1 हिंदी के स्वच्छन्दतावादी उपन्यास–कमल कुमारी जौहरी–पृ 392
2 गर्दिश के दिन–कृष्णा सोबती सारिका अक्टूबर 1973–पृ 41
3 शिवानी चौदह फेरे (भूमिका)–पृ 5
4 वही–पृ 5
5 आधुनिक युग की लेखिकाएं–डा उमेश माथुर–पृ 225
6 वही–पृ 384
7 एक पुरुष एक नारी–पृ 80
8 हिंदी लेखिकाओं की प्रतिनिधि कहानियां सम्पादक योगेन्द्र कुमार लल्ला श्रीकृष्ण–पृ 111
9 मेरी रचना प्रक्रिया–आलोचना–अक्टूबर 1968–पृ 99
10 मेरी सृजन प्रक्रिया–आलोचना–नवम्बर 1968 पृ 55
11 एकाकी पथ कांटे में कट–साप्ताहिक हिन्दुस्तान 4 मई 1969 पृ 39
12 सेक्स और विवाह क्या ये अलग अलग चीजें हैं?–साप्ता हिंदु 24 सितम्बर 1971
13 पृ 22 पर द्रष्टव्य
14 सेक्स और विवाह क्या ये अलग अलग चीज हैं?–परिचर्चा साप्ता हिंदु, 24 सितम्बर 1971
15 वही
16 वही
17 दिनमान 6 जुलाई 1975
18 अन्तर्जातीय विवाह प्रथा की परिधि में–परिचर्चा–साप्ता हिंदु 3 सितम्बर 1972
19 वही
20 वही
21 वही
22 सेक्स और विवाह क्या ये अलग अलग चीजें हैं? परिचर्चा साप्ता हिंदु 24 सितम्बर 1971
23 दिनमान 6–जुलाई 1975
24 आत्म साक्षात्कार कादम्बिनी अगस्त 1975 पृ 134
25 गर्दिश के दिन (आत्म रचना)–सारिका फरवरी 1976
26 एक कोई दूसरा (उषा प्रियम्वदा का कहानी संग्रह) की समीक्षा आलोचना–अक्टूबर 1967
27 क्या लेखिकाओं के लेखन का दायरा सीमित है?–साप्ताहिक हिंदुस्तान 11 मई 1975 पृ 39
28 सेक्स और विवाह क्या ये अलग अलग चीज हैं?–साप्ताहिक हिंदुस्तान 24 सितम्बर 1971

29 लेखन और विचार [illegible] है ?—साप्ताहिक हिन्दुस्तान [illegible] दिसम्बर 19[illegible]

30 मेरी सृजन प्रक्रिया [illegible] दिसम्बर 1973 पृ 67

31 [illegible] 1971 पृ 20

32 [illegible] (35-36)—[illegible] दिसम्बर 1975 पृ 45

33 [illegible]—11 मई 1975 पृ [illegible]

34 [illegible] (आत्मकथा)—सारिका—[illegible] 1973 पृ [illegible]

35 वही

36 क्यों और क्यों नहीं—[illegible] 1974 पृ [illegible]

37 [illegible] (आत्मकथा) सारिका फरवरी 1976 पृ [illegible]

38 [illegible] फरवरी—197[illegible] पृ 185

39 [illegible] 1975 पृ 136

40 क्या और क्यों नहीं ?—[illegible] 1974 पृ [illegible]

41 मेरी सृजन प्रक्रिया [illegible] 1975 पृ 55

42 वही

43 वही

44 क्या और क्यों नहीं ?—[illegible]—नवम्बर 1974 पृ 72

45 वही

46 प्रश्नों के घेरे में और आठ लेखिकाएँ (परिचर्चा प्रभु जोशी) साप्ताहिक हिन्दुस्तान—[illegible] 1973

47 [illegible] पृ 188

48 वही पृ 189

49 वही

50 एक इंच मुस्कान—[illegible] पृ 343

51 मेरी रचना प्रक्रिया [illegible] 1968 पृ 87

52 वही

53 मेरी रचना प्रक्रिया [illegible] 1968 पृ 33

54 एक [illegible] (परिचर्चा) साप्ताहिक हिन्दुस्तान 17 [illegible] 1972

55 [illegible] (भारत का साहित्य [illegible] तरीके—राम प्रकाश त्रिपाठी)—साप्ताहिक हिन्दुस्तान—28 जून 1975 में [illegible] के विचार

56 [illegible] (मेरे पारिवारिक परिवेश) साप्ताहिक हिन्दुस्तान—3 [illegible] 1969 पृ 39

57 [illegible] (आत्मकथा) सारिका—फरवरी 1976 पृ 54

58 नारी लेखन और [illegible]—साप्ताहिक हिन्दुस्तान—15 जनवरी 1967 पृ 39

59 प्रश्नों के घेरे में और आठ लेखिकाएँ (परिचर्चा प्रभु जोशी)—साप्ताहिक हिन्दुस्तान 1 [illegible] 1973

60 अपना अपना वक्तव्य एक इंच मुस्कान पृ 339–40

61 वही पृ 333

62 वही पृ 347 (मन्नू भण्डारी का अपना वक्तव्य)

63 प्रश्नों के घेरे में और आठ लेखिकाएँ (परिचर्चा प्रभु जोशी) साप्ताहिक हिन्दुस्तान 1 [illegible] 1973

64 वही

65 क्या लेखिकाओं का लेखन दायरा सीमित है ? (परिचर्चा–नीलम कुलश्रेष्ठ)–साप्ता हि दु 1 मार्च 1975 प 39
66 अपना अपना वक्त प–एक इन्च मुस्कान–प 350
67 आत्म सा ात्कार–कादम्बिनी अगस्त, 1975 पृ 137
68 वही
69 वही पृ 139
70 क्या और क्या नही ?–कादम्बिनी नवम्बर 1974 प 72
71 अन्तर्जातीय विवाह प्रश्नो की परिधि म (परिचर्चा) साप्ता हि दु, 3 सितम्बर 1972
72 दिनमान 6 जुलाई 1975 पृ 39
73 आत्म साक्षात्कार–कादम्बिनी अगस्त 1975 पृ 137
74 गर्दिश के दिन–सारिका फरवरी 1976 प 57
75 एक पुरुष एक नारी–प 79
76 हिन्दी लघु उपन्यास–प 178
77 गर्दिश के दिन–सारिका–अक्टूबर 1973
78 आत्म साक्षात्कार कादम्बिनी अगस्त1975 प 139
79 दिनमान 6–जुलाई 1975
80 मेरी रचना प्रक्रिया–ज्ञानोदय अक्टूबर 1968 प 101
81 कथा समारोह (विवरण) ज्ञानोदय फरवरी 1966 पृ 185
82 साहित्य म स्वत त्र आजीविका अर्जक नारी–ज्ञानोदय–फरवरी 1968
83 वही
84 मेरी रचना प्रक्रिया ज्ञानोदय–अक्टूबर 1968 पृ 101
85 दिनमान 6 जुलाई 1975 पृ 38
86 वही प 38
87 वही प 39
88 वही
89 रजनी पनिकर (मेरी रचना प्रक्रिया)–ज्ञानोदय–अक्टूबर 1968 पृ 100
90 नारी मुक्ति आ दोलन एक लेखिका की दृष्टि म साप्ताहिक हिन्दुस्तान 11 मार्च 1973
91 मेरी रचना प्रक्रिया ज्ञानोदय नवम्बर 1968
92 वही
93 गर्दिश के दिन सारिका फरवरी 1976 प 55
94 क्या और क्यों नही ?–कादम्बिनी नवम्बर 1974 पृ 69
95 आत्म साक्षात्कार कादम्बिनी–अगस्त 1975
96 मेरी रचना प्रक्रिया ज्ञानोदय अक्टूबर 1968
97 अपराधिनी (कहानी सग्रह) की भूमिका से उद्धृत पृ 8
98 मेरी रचना प्रक्रिया ज्ञानोदय नवम्बर 1968 पृ 55
99 कथा समारोह का विवरण–ज्ञानोदय फरवरी 1966
100 गर्दिश के दिन–सारिका फरवरी 1976
101 एक इन्च मुस्कान अपना अपना वक्तव्य पृ 350

102 एक इञ्च मुस्कान—अपना अपना वक्तव्य पृ 340
103 मेरी सृजन प्रक्रिया—ज्ञानोदय सितम्बर 1968
104 पसठ के उपन्यास ज्ञानोदय अगस्त 1966
105 इन्होंने कहा राधिका—पृ 61
106 हिन्दी लघु उपन्यास—पृ 177
107 दिनमान 6 जुलाई 1975 पृ 36
108 प्रश्नो के सात फेरे और आठ लेखिकाएँ साप्ता हिन्दु 1 अप्रल 1973
109 वही
110 अजन्मी कहानियों की कहानी (मेरा पारिवारिक परिवेश)—साप्ता हिन्दु 3 अगस्त 1969
111 दिनमान 6 जुलाई 1975
112 कतोर नारी अपनी विधा मे कितनी स्वतन्त्र हू धमयुग 3 अगस्त 1975
113 प्रश्नों के सात फेरे और आठ लेखिकाएँ साप्ता हिन्दु 1 अप्रल 1973
114 क्या लेखिकाओं का लेखन दायरा सीमित है ?—साप्ता हिन्दु 11 मई 1975
115 अजन्मी कहानियो की कहानी साप्ता हिन्दु 3 अगस्त 1969 पृ 39
116 क्यो और क्यो नही ? कादम्बिनी नवम्बर 1974
117 वही
118 गर्दिश के दिन सारिका—फरवरी 1976
119 गर्दिश के दिन सारिका—अक्टूबर 1975 पृ 42
120 आत्म साक्षात्कार कादम्बिनी अगस्त 1975 पृ 140
121 मेरी सृजन प्रक्रिया ज्ञानोदय दिसम्बर 1968 पृ 67
122 क्या लेखिकाओं का लेखन दायरा सीमित है ?—साप्ता हिन्दु 11 मई 1975
123 वही
124 कतोर नारी मैं अपनी विधा म कितनी स्वतन्त्र हू धमयुग 3 अगस्त 1975
125 आत्म—साक्षात्कार—कादम्बिनी—अगस्त 1975

महिला उपन्यासकारो के पुरुष-पात्र

पुरुष पात्रो के विविध रूप

इन लेखिकाओ के उपन्यासो का मुख्य कथ्य नारी और उसकी पीडा है। वस्तु सगठन के मूल मे नारी चरित्रो की स्थापना का प्रयास ही अधिक हुआ है। फिर भी वस्तु विस्तार की आवश्यकताओ के अनुरूप इन उपन्यासो मे पुरुष पात्रो का चित्राकन भी गरिमा के साथ हुआ है। उनका चरित्र परिवार, व्यवसाय, सामाजिक वर्ग, शिक्षा, अवस्था इत्यादि के आधार पर अनेक रूपो म प्रकट हुआ है। उपन्यास के विविध प्रसगो म प्रकट होने वाले ये पात्र जीवन की समग्रता म एक व्यष्टि की हैसियत को उजागर करते हैं। पुरुष के व्यक्तित्व की सही जानकारी प्राप्त करने के लिए इस अध्याय म सवप्रथम महिलाओ के उपन्यासो म चित्रित पुरुष पात्रो के विविध रूपो का विश्लेषण किया जा रहा है।

पुरुष पात्रो का वर्गीकरण

उपन्यास का कथानक जगत् के प्रति लेखक के दृष्टिकोण के आधार पर निर्मित होता है। उसकी सरचना इस रूप म होती है कि उसम वर्णित वस्तु के समस्त क्रिया व्यापार यथार्थ जगत् के क्रिया व्यापार प्रतीत होते हैं। वस्तु व्यवस्थापन की जितनी अधिक शक्ति लेखक म होती है, उसके पात्र, उतने ही अधिक सजीव हो जाते हैं। वस्तु से पात्रो का यह अनिवार्य सम्बन्ध उन्हे बहु आयामी रूप प्रदान करता है। उनका व्यवहार परिवेश स्थिति एव अवस्था की भिन्नता के आधार पर अनेक रूपो म प्रकट होता है। पात्रो की शिक्षा, सस्कार, वर्ग, व्यवसाय, अवस्था तथा वृत्तियाँ आदि उसके जीवन के महत्त्वपूर्ण तत्त्व बन जाते हैं। पात्रो के आचरण की इन्ही परस्पर असम्बद्ध स्थितियो के आधार पर इस अध्याय म उनका वर्गीकरण किया जा रहा है। प्राप्त सामग्री के आधार पर समस्त पुरुष पात्रो का निम्नलिखित बिन्दुओ म रखकर, उनका अध्ययन किया गया है।

1 पारिवारिक सम्बन्धो की दृष्टि से चित्रित पुरुष पात्र
2 दाम्पत्य सम्बन्धो की दृष्टि से चित्रित पुरुष पात्र
3 प्रेम सम्बन्ध के आधार पर चित्रित पुरुष पात्र
4 शैक्षणिक योग्यता की दृष्टि से चित्रित पुरुष पात्र
5 सस्कारो के आधार पर चित्रित पुरुष पात्र

पारिवारिक सम्बन्धों की दृष्टि से चित्रित पुरुष पात्र

परिवार मनुष्य की अनिवार्य सामाजिक आवश्यकता है। परिवार में ही वह संस्कारों शिष्टाचारों का प्रारम्भिक पाठ पढ़ता है। वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में परिवार का फैलाव सिमिट कर पति पत्नी एवं संतति में ही परिसीमित हो गया है। यही कारण है कि आज के परिवार में पिता एवं पति की ही भूमिका महत्त्वपूर्ण हो गई है। महिलाओं के इन उपन्यासों में भी इन्हीं की भूमिका का विस्तारपूर्वक वर्णित किया गया है। भाई चाचा दादा मामा, नाना, बहनोई आदि की भूमिका पारिवारिक सम्बन्धों की दृष्टि से, अपवादों को छोड़कर, अब लोगों के जीवन में उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं रही है। इन उपन्यासों में भी अतएव पिता एवं पति को छोड़कर शेष पारिवारिक सम्बन्धों की दृष्टि से उपस्थित पुरुष पात्रों का चित्रण विस्तारपूर्वक नहीं हुआ है।

परिवार में पुरुषों के अनेक रूप

परिवार में ही मनुष्य संसार की सर्व प्रथम छवि पाता है उसके मध्य रहते हुए शिक्षा एवं संस्कारों का प्रारम्भिक पाठ पढ़ता है। वर्तमान जीवन पद्धति में संयुक्त परिवार का ह्रास हो गया है और परिवार की इकाई अब पति पत्नी और बच्चों तक ही सीमित हो गई है। यही कारण है कि इन उपन्यासों में भी पारिवारिक सम्बन्धों के आधार पर पति एवं पिता का ही वर्णन सर्वाधिक हुआ है। पारिवारिक दृष्टि से अन्य सम्बन्धियों का चित्रण अधिक विस्तार से नहीं हुआ है। प्रसंगानुसार फिर भी कुछ पुरुष पात्र इन उपन्यासों में उपस्थित हुए हैं। उन सबके आचरणगत अनेक रूप यहाँ विस्तारपूर्वक प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

पिता के रूप में पुरुष

उपन्यासों में पिता के अनेक रूप दृष्टिगत होते हैं। उसका पहला रूप संतानों की हित कामना करने वाले एवं पारिवारिक उत्तरदायित्व का सहर्ष वहन करने वाले पिता के रूप को हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है। ऐसे पिता का व्यक्तित्व परिवार के सदस्यों पर भयंकरता में छाया हुआ दृष्टिगत होता है। इस दृष्टि से 'एकोगी नहीं राधिका' में राधिका का पिता, 'नरक दर नरक' में उषा का पिता, 'सोनाली दी' के पापा आदि महत्त्वपूर्ण हैं।

राधिका पर उसके पिता के व्यक्तित्व की गहरी छाप है। पिता के औदार्ययुक्त व्यक्तित्व से वह इतनी गहराई से जुड़ी हुई है कि स्थितियों में तनिक परिवर्तन आते ही वह पिता के प्रति विद्रोह कर देती है। विधुर जीवन की यातना से मुक्ति के लिए जब पापा दूसरा विवाह कर लेते हैं तो वह उन्हें माफ नहीं कर पाती। अपने से अधिक उम्र के विदेशी पुरुष डैन के साथ विदेश चली जाती है। पिता के व्यक्तित्व के प्रभावक्षेत्र में निर्मित राधिका की मानसिकता के सम्बन्ध में डैन कहता है कि 'तुम प्रत्येक में

अपने पिता की मानसिकता ढूढती हो। मालूम है कि तुम मेरे साथ इतनी फी क्यो हो? क्योकि तुम मुझमे कही अपने पिता का प्रतिबिम्ब पाती हो।[1] उसका प्रेमी मनीश भी कहता है 'तुम पुरुष म प्रेमी या पति नहा ढूढती पिता ढूढती हा।[2] विमाता विद्या की मृत्यु के बाद पिता जब यह चाहते है कि तनाव को दूर कर राधिका अब उन्ही के पास रह कि तु वह ऐसा नही करती। क्योकि पिता की जो भव्यमूर्ति उसक मन मे पूज्य भाव स स्थित थी और जिसकी छाया म उसन अनेक स्वप्ना की सृष्टि की थी, पापा के द्वारा पुन विवाह कर लने स माना उसक मन म स्थित वह मूर्ति टूट जाती है और उसकी भावनाए विद्रोह कर देती ह।

नरक दर नरक की नायिका भी पिता के इसी गरिमामय रूप स प्रभावित है। उसके पिता उस पुत्र की तरह पालत हैं, शिक्षा दिलात है और यह अपेक्षा करत ह कि वह जीवन मे निरन्तर आग बढत हुए उनकी आकाक्षाओ की पूर्ति करे। पिता के इस प्रभाव क्षेत्र मे नायिका उषा का चिन्तन पूरी तरह पापामय हो जाता है। राधिका की ही भाति यह भी पिता के व्यक्तित्व से अत्यधिक प्रभावित है। जागे दर साहनी उसे सचेष्ट करते हुए कहता है 'दर असल मुझे आपका सोचन का ढग आपका अपना नही लगता। लगता है किसी ने आपको तोत की तरह सिखाया है।'[3] उषा जब पापा के प्रति विश्वासयुक्त पूज्य भाव प्रकट करती है तो वह उसकी स्थिति को व्याख्यायित करत हुए कहता है 'पर कब तक? किसी भी दिन, पापा का चश्मा उतार, खुद अपनी ऐनक और चप्पल पहन आप बाहर निकलेगी तो पायेंगी ससार बहुत बडा है और अलग। आपके पापा न आपको उसका सावा हिस्सा भी नही दिखाया है।[4] उषा लेकिन पापा के व्यक्तित्व स इतनी प्रभावित ह कि यह इतना उकसाए जान पर भी पापा के प्रभावक्षेत्र स बाहर जान की इच्छा का नकार देती है। उसक पिता भी यह कामना करत है की उसकी पुत्री 'रसाद म पड पडे पीली नही होगी, वह इ दिरा गाधी बनगी, विजयलक्ष्मी पडित बनगी।'[5] सानाली दी मे रानू के पापा विधुर जीवन जीकर पुत्री के जावन का अभाव रहित करन की चेष्टा करत हैं, कि तु जब वह बीटनिक लडका के साथ घुलती मिलती ह ता यह स्वीकार नही कर पात महिम कहता है – नकुल, इ द्रजीत और कजल आए थे। साथ म दो सूखी भूखी लडकिया थी। उसक बाद भी मुझ पूछना हागा कि कौन आया था? साफ जाहिर है भूखी पीढी के लोग थे।[6] उस सीमा म रखन के लिए एक अभिभावक के रूप म सानाली का नियुक्त करत ह।

पिता के दूसर रूप को चित्रित करन वाले अन्य पुरुष पात्र व है जा अपनी विवशता को स्वय उद्घाटित करते है। एस पिता अपनी असमर्थता क कारण पुत्री पर या घर के अन्य सदस्या पर अवलम्बित हा जान का विवश होते है। नावें म मालती का

'पिता अपनी पुत्री से कहता है बेटी तेरे बिना मैं तो बिल्कुल अपाहिज हो गया। अपाहिज तो पहले ही था अब तो बिल्कुल टूट गया।'[7] 'पचपन खम्भे लाल दीवारें', में सुषमा के पिता की दशा भी ऐसी ही है। मामूली पेंशन के कारण वे परिवार का भार वहन नहीं कर पाते पुत्री पर अवलम्बित होने को विवश होते हैं। पुत्री से कहते हैं मैं तो तुम्हारे लिए कुछ भी न कर सका।'[8] 'मायापुरी' में सतीश के पिता व 'कृष्णकली' उपन्यास के स्वतारण भी इसी कोटि के पिता कहे जा सकते हैं।

पिता का तीसरा रूप परम्परानुगतता, जातीयता, धार्मिकता आदि के समर्थक पिता का है। ऐसे मरजादी बाप गुजरात परम्पराओं का समर्थक है और पारिवारिक मर्यादा को सबसे अधिक महत्त्व देता है। 'यह कलजुग है, कलजुग! आँख का पानी उतर गया तो फिर क्या घर घराने की इज्जत और क्या लाज मरजाद।'[9] 'समान नम्पा' के रामचन्द्र शास्त्री, 'रेत की मछली' में नायिका कुन्तल के पिता, 'उत्सर्ग' में नायक के पिता आदि जातीयता को एवं भारतीय परम्पराओं को अत्यधिक महत्त्व देते हैं। अपनी मान्यताओं पर दृढ़ता से टिके रहने के अलावा इनमें अपने बच्चों पर अपनी मान्यताओं को बलात् आरोपित करने की प्रवृत्ति भी है। जहाँ कहीं इनकी इच्छाओं का उल्लंघन होता है ये हठ वादिता के आधार पर बच्चों को उन्हें स्वीकार करने के लिए विवश करते हैं।

'दूरियाँ' 'रेत की मछली', 'सागाती दी' 'सूखी नदी का पुल' उपन्यासों में पिता अपनी पुत्रियों को विवाह के सम्बन्ध में उनके आत्म निर्णय का विरोध करते हैं। पुत्रियों को दण्डित करने, घर में बन्द करने या निन्दित करने में संकोच नहीं करते। बच्चों के प्रति प्रेम का अतिरेक ही उन्हें ऐसा करने के लिए विवश करता है।

पिता का चौथा रूप उसका अत्यन्त घृणित रूप कहा जा सकता है। अपने और अपने परिवार के भरण पोषण की सुविधा के लिए मानो ऐसे पिता पुत्रियों का बेचते हैं। 'मुझे माफ करना' में नायिका का पिता पैसों के कारण, अधेड़ तथा एकाधिक पत्नियों के पति पुरुष के साथ, अपनी नवयौवना पुत्री का विवाह कर देता है। वे सोच रहे थे कि उसकी बेटी का शापग्रस्त मन शीघ्र ही धन कुबेर की उस स्वर्ण नगरी में पहुँच भाग्य की ठोकर से मुक्त होकर यक्षपुरी का राजा बन जाएगा, और ये निर्मूल भय निर्वासित हो जाएगे। खुशी के मारे उसकी नाड़ियाँ फटने लगेंगी, और सात पीढ़ियों की नियति आँख खुलने पर स्वप्न की तरह बदल जाएगी।[10] नायिका के पिता का लोभी मन कल्पना की आँखों से, परिन्दे की तरह उड़कर उस सोने की सलाखों वाले बन्द दरवाजे पर पहुँच कर वहीं मँडरा रहा था। वे मणि मुक्ताओं से भरे हुए, अगाध समुद्र के ऊपर, तारा खचित आकाश में विचरण करते और मुट्ठियाँ भर भर कर धन से खेलते।'[11] 'पतझड़ की आवाजें' में नायिका का पिता

पुत्री को नौकरी करने के लिए विवश करता है किन्तु उसकी असुविधाओ की ओर कुछ भी ध्यान नही देता। 'बेघर' मे भी सजीवनी का पिता पुत्री के विवाह की जिम्मेदारी को कमाऊ पुत्र पर थोप देता है। पुत्री की कमाई पर घर के सारे खच चलने की चिन्ता नही करता।

पिता के इन रूपो से परे अन्य उपन्यासो मे पिता का सामान्य रूप प्रकट हुआ है। ऐसे पिता परिवार की सुख-सुविधाओ म सचेष्ट रहन, पुत्री के लिए सुयोग्य वर ढूढने, समुचित दहेज की व्यवस्था करन, पुत्रियो की शिक्षा आदि की चिन्ता करन वाले पिता के स्वरूप को प्रकट करते हैं। 'कृष्णकली' के पाण्डेजी, 'मायापुरी' के तिवारी जी, 'कंजा' के शास्त्री जी, 'श्मशानचम्पा के रामदत्त जी इत्यादि इसी कोटि के आचरणकर्त्ता पिता कहे जा सकते हैं।

इस प्रकार इन उपन्यासो म पारिवारिक परिवेश मे प्रकट होने वाले पिता के अनक रूप दृष्टिगत होते है। कही उसका गरिमामय उदात्त रूप दृष्टिगत होता है तो कही उसका निकृष्ट रूप। कही वह पुत्रियो की हित कामना म सचेष्ट है तो कही उन पर अकुश लाता हुआ दृष्टिगत होता है।

पुत्र के रूप मे पुरुष

इन उपन्यासो म पुत्र के रूप म पुरुष पात्र अधिक विस्तार नही पा सके हैं। फिर भी पुत्र रूप म पुरुष की दो भूमिकाएँ दिखाई देती है। उसका पहला रूप आदर्शपुत्र की छवि को प्रस्तुत करता है जो आज्ञाकारी है और पारिवारिक जीवन म अपन दायित्वो का निवाह भली भाति करता है। पुत्र का दूसरा रूप निरा दायित्वहीन आचरण करने वाले पुरुष की छवि को प्रस्तुत करता है। ऐसा पुत्र कही कही अपन दम्भ का भी प्रदर्शित करता हुआ देखा जा सकता है। 'वह तीसरा' का सदीप अपन गरीब पिता की अवमानना करत हुए घमण्ड स कहता है 'माई फादर वा ए फेलियोर आई एम सक्सेज।

भाई के रूप मे पुरुष

पुत्र रूप म चित्रित पुरुष पात्र ही परिवार म भाई की भूमिका को उजागर करते हैं। 'रकाबी नही राधिका का भाई पसे वाला होने हुए भी राधिका को सिफ उसी सीमा तक साथ रखना चाहता है जिस सीमा तक वह उसके आदेशो का पालन करती रहती है। ज्यो ही राधिका अपन अह को सम्मान देती है वह उसम किनाराकशी कर लेता है। 'पचपन खम्भ लाल दीवारें' म सुषमा के भाई पूरी तरह बहिन पर अवलम्बित हैं। पानी की दीवार का केशव आधुनिक रुचियो का भाई है जो बहिन आदि के साथ क्लबो पार्टियो, पिकनिक आदि म जान की अभिलाषा रखता है। सफर के साथी म नायिका का भाई अपनी जिम्मेदारियो का पूरा पूरा निर्वाह

करता है। 'सूनी नदी का पुल' का मोहन बहिन के पराए पुरुष के साथ भाग जाने पर उसे कभी माफ नहीं करता। बहिन के इस आचरण से नारियों पर से उसका विश्वास टूट जाता है और वह आजीवन अविवाहित ही रहता है। 'मित्रो मरजानी' में जहाँ छोटा भाई गुलजारीलाल पत्नी के कहने से साझे के व्यापार में घोटाला करता है वहीं बड़े भाई बनवारीलाल और सरदारीलाल उसके इस आचरण से प्राप्त घाटे को चुपचाप झेल जाते हैं और अपना औदार्य ही प्रकट करते हैं। दूसरी ओर 'बेघर' में रमा के भाई पिता से इसलिए असन्तुष्ट हो जाते हैं कि उन्होंने जरूरत से ज्यादा दहेज देकर मुसीबत खड़ी कर ली है।

इस प्रकार भाई के वेश में परिवार में रक्त सम्बन्ध की दृष्टि से उपस्थित पुरुष के आचरण को प्रकट करते हैं। भाई की भूमिका में उपस्थित पुरुष को लेखिकाओं ने हितकारी, अहंकारी, कर्तव्यवान, उत्तरदायित्व का वहन करने वाला इत्यादि रूपों में चित्रित कर अपनी दृष्टि को प्रकट किया है।

श्वसुर के रूप में पुरुष

श्वसुर रूप में चित्रित पुरुष पात्रों में अनौचित्यता का नितान्त अभाव है। अधिकांश श्वसुर साधन सम्पन्न हैं और पुत्री की सुविधा के लिए दामाद का हितचिंतन अपना कर्त्तव्य समझते हैं। कृष्णकली के पाण्डेजी मायापुरी के तिवारी जी अपने दामाद की नियुक्तियों में अपने साधनों का समुचित उपयोग करते हैं। दामाद की पारिवारिक कठिनाइयों का हल करने में उनकी सहायता करते हैं।

पुत्रवधुओं के प्रति भी सामान्यतः श्वसुर लोगों में हित चिंतन का भाव है। 'रतिविलाप' में नायिका का श्वसुर पुत्र के पागल होकर मर जाने पर पुत्रवधू के प्रति अपने को दोषी मानता है। मत रो बहू तेरे आंसू मैं देख नहीं पाता। मुझे और अपराधी मत बना बेटी। मैं जितनी जल्दी हो सकेगा तुझे इस घुटन भरे दूषित वातावरण से बाहर ले जाऊँगा।[12] 'मित्रो मरजानी' का गुरुदास परम्परा प्रेमी है। घर की बहुओं को पर्दे में रहते हुए उनके शिष्ट आचरण को देखना चाहता है। मित्रो को उस मर्यादा का उल्लंघन करते देख क्षुब्ध हो जाता है। 'यह कलजुग है, कलजुग! आँख का पानी उतर गया तो फिर क्या घर घराने की इज्जत और क्या लाज मरजाद?'[13] और उसे ऐसा करने के लिए विवश करता है। तो सुहागवंती को क्षमा करते देख गद्गद् हो जाता है। 'सुहागवंती बेटी, तेरी सयानप का क्या मूल्य? तेरे सास ससुर ने तुझे पाने के लिए जरूर पिछले जन्म में कोई अच्छा कर्म किया होगा।[14]

इस प्रकार श्वसुर के रूप में चित्रित पुरुष सामान्यतः पिता के ही परिमार्जित रूप को प्रकट करते हैं अपनी पुत्रियों का हित साधन और बहुओं के प्रति औदार्य का भाव इनकी विशिष्ट दशा का उद्घाटन करता है।

दामाद के रूप मे पुरुष

दामाद के रूप मे भी चित्रित पुरुषो की सख्या सीमित है। 'कृष्णकली' का दामोदर नौकरी से निकाल दिए जाने पर ससुराल म ही टिक जाता है। सालियो और सालो मे अश्लील मजाक करता है। घर के सदस्यो के प्रति छीटाकशी करना, उद्दण्ड आचरण करना, किराएदार कृष्णकली के प्रति लोलुप दृष्टि प्रकट करना इसके स्वभाव के अग है। इसी प्रकार प्रवीर का अय बहनोई भी ससुराल म विशेष लिबर्टी लेना चाहता है। 'ससुराल आये हैं हम लोग, यहा एश आराम नही करेंगे तब भला कहा करेंगे ?[15]

दामाद के रूप म चित्रित पुरुषो न सामायत अपनी यौन एव अथ सम्ब धी कमजोरियो का ही प्रदशन किया है। 'ज्वालामुखी के गभ मे' 'अनामा' उपयास के दामाद अपनी सालियो को यौन तुष्टि का साधन बनाते है। 'वह तीसरा' का सदीप श्वसुर से बहुत कुछ पाकर भी यह सोचता है कि उस 'हनीमून' के लिए पर्याप्त पसे नही दिए गए।

इस प्रकार दामाद के रूप म चित्रित पुरुष पात्रा के जितने रूप प्रकट हुए है वे उनकी दुबलता को एव सकुचित मनोवृत्ति को प्रकट करत ह। लेखिकाओ ने उनके आचरण का समथन नही किया है। कि तु, प्रवीर जसे दामाद भी इन उपयासो म चित्रित हुए हैं जिनमे न यौन दुबलता है न धन की प्यास। ऐसे दामादा का चित्रण कम हुआ है।

बहनोई के रूप मे पुरुष

दामाद की ही भाति बहनोई के रूप म उन्ही पुरुष पात्रा का सामाय आचरण सदोष ही है। एसे पात्र पुरुष वग की सामाय दुबलताओ का ही उद्घाटन करते है। दूसरी ओर 'सागरपाखी' के स्वरूप आदश बहनोई ह। स्वरूप विदेश म रहने वाली साली के आन पर अत्य त प्रसन्न होता है। उसके बच्चा म रम जाता है। उनकी समुचित आवभगत करता है। उसकी साली सुचित्रा अपन बहनोई के ऐसे आचरण से बहुत प्रभावित होती है। उनके प्रति अपन बहिन क आचरण स स्पष्ट भी हो जाती है।[16] 'मुझे माफ करना' का सेठ यद्यपि अनक विसगतियो स युक्त है कि तु अपनी साली मीना को पुत्री की तरह स्नेह देता है। 'साला बेटी तुम्हे क्या चाहिए मुझ से सकोच मत करो।'[17]

इस प्रकार बहनोई के दो रूप लेखिकाओ न चित्रित किए हैं। इनका पहला रूप यौन दुबलताओ और अथलिप्सा की भावना का प्रकट करता है, यह लेखिकाओ की निन्दा का भाजन बना है। दूसर रूप म चित्रित बहनोई आदश आचरणकर्ता हैं और उपयासो म सम्मान जनक ढग स चित्रित किए गए है।

पारिवारिक सम्बन्धो की दृष्टि से चित्रित अन्य पुरुष

इन उपन्यासो मे पतिनायक के अतिरिक्त पारिवारिक सम्बन्धो की दृष्टि से अन्य पुरुष पात्र भी चित्रित हुए हैं। यद्यपि इनका चित्रण गौण रूप मे ही हुआ है ये नायक को दूर तक प्रभावित भी नही करते तथापि इनका चित्रण महत्वपूर्ण कहा जा सकता है। सम्बन्धो का निर्वाह एव परिवार मे पुरुष की भूमिका की सही जानकारी के लिए इनका भी अवलोकन करना अनिवार्य है।

मौसा के रूप मे चित्रित 'ज्वालामुखी के गर्भ मे' के मौसाजी प्रतिनिधि पुरुष पात्र कहे जा सकते हैं। एक साधारण क्लर्क होने से पत्नी और पुत्र की आकांक्षाओ की पूर्ति नही कर पाते। घर मे बतलाने जैसी कोई बड़ी बात नही थी *चिड़िया मऊर कितना ही फूल जाय, बल तो बना ही रहा। दफ्तर का बाबू हूँ प्रमोशन हो गया, तो बहुत से बहुत जो एम बनूगा, और क्या?'*[18] रात दिन भजन-पूजन मे व्यस्त रहते हैं और परिवार के बीच रहते हुए भी निर्लिप्त रहते हैं। नायिका के साथ इनकी पूरी सहानुभूति है और उसके साथ मित्रवत् व्यवहार करते हैं।

'बात एक औरत की' मे चित्रित नानाजी और चाचा अपने ही घर की बच्चियो को केवल स्त्री रूप मे देखते है और नीच आचरण की पराकाष्ठा का प्रदर्शन करते हैं। वृद्ध नानाजी की कामातुरता उनका चरित्रहनन करती है *दादा अच्छे नही, कहानी सुनाते समय मुझे जबरदस्ती गोदी मे बठा लेते है। यह ठीक नही।*[19] अन्तकाल मे उन्हे अपने किए के लिए क्षमा मागनी पड़ती है। उपन्यास का युवा चाचा शिल्प की भतीजी के सौंदर्य का लोभी है। चोरी छुपे उसे छोड़ने मे सकोच नही करता। *'क्या आप किसी से भी जबरदस्ती प्रेम करने लगते हैं और चाचा होकर भतीजी के लिए ऐसा कैसा सोचने दुनित नही होते।*[20] 'जुड़े हुए पृष्ठ' के चाचाजी भी अपनी विधवा भतीजी को अपनी वासना का शिकार बनाने मे सकोच नही करते। *मेरे नधन्य दु ख से दुखी होकर सहानुभूति और सहारा देने वाले ये चाचाजी मुझे भतीजी कम खूबसूरत उनका गला भर आया जाने दो पुरुष का सयम बड़ा कमजोर होता है।'*[21] 'कृष्णकली' के रजनीकान्त भी अनाथ नवयुवतियो को अपनी स्कूल मे *अध्यापिका नियुक्त करते हैं। उनके काका बनकर अभिभावक होने का नाटक करते हैं फिर उन्हे अपनी वासना का शिकार बनाते है। आहा रे काका बाबू मैं भी देखती हूँ कितने दिन भतीजी बनकर रहती हो, तुम जसी बीसियो भतीजिया इसी कमरे मे शिकार हुई हैं।*[22]

'डार से बिछुड़ी' मे भानजी के प्रति मामाओ के निरकुश आचरण का चित्रण हुआ है। इनकी बहिन जब घर से भाग जाती है तब ये उस अपमान का बदला अपनी भानजी पर अत्याचार करके चुकाते हैं। लेखिकाओ के उपन्यासो मे दूसरी ओर

मामा का भोलाभाला और भानजी के प्रति स्नेहमय आचरणकर्ता के रूप म भी चित्रण हुआ है। 'मायापुरी' मे शोभा के मामाजी भोले भाले इ सान के रूप म चित्रित है और अपनी भानजी की सहायता की यथासम्भव चेष्टा करते रहते ह। आर्थिक दृष्टि से विपन्न होकर भी सकटापन्न भानजी को शरण देकर उसकी सहायता का प्रयास करत हैं। 'कृष्णकली' म वाणीराय के मामा अपनी गरीबी के कारण अनाथ भानजी के भरण पोषण का भार नही उठा पाते। यही स्थिति 'स्वोगी नही राधिका' म राधिका की भी है। राधिका स अतिशय प्रेम के कारण प्रवास से लौटने पर राधिका द्वारा सूचना न दिए जाने पर भी स्टेशन जात है उस घर ल आत है। आर्थिक दृष्टि से गरीब होने हुए भी अत्यन्त उत्साह से उसकी आवभगत करन ह।

'प्रिया' उपन्यास म नाना के गरिमामय रूप का चित्रण हुआ ह। जिन्दगी की सारी बाजी हार जाने पर भी वे पुत्री और नातिन के लिए जिन्दा रहते है और शारीरिक क्षमताओ के बावजूद चेष्टा कर उन्ह निरापद बनाने की असफल चेष्टा करत है।

'मित्रो मरजानी' म देवरो का आचरण अधिक खुलकर सामने आया है। मित्रो का पति सरदारीलाल अपनी भाभी का पूण आदर करता है। भाभी के मन म भी उसके प्रति पर्याप्त पूज्य भाव है। 'सरदारी देवर देवता पुरुष है देवरानी।'[23] जबकि छोटा देवर गुलजारीलाल भाभी से अभद्रता से पश आता है। भाभी के सामने अपनी पत्नी का पक्ष लेने मे सकोच नही करता। 'वीरान रास्त और भरने' का देवर अपने वृद्ध भाई की नववधू भाभी को ही यौन तृप्ति का शिकार बनाता है। बाध्य होकर जब उसे भाभी से ही शादी करनी पडती है तब वह उसे पीटता है, कमर मे बद रखता है। उसके बच्चा को अकारण दण्डित करता है।

इस प्रकार इन उपन्यासा मे पारिवारिक सम्बधा की दृष्टि से अ य पुरुष पात्र भी चित्रित हुए है। इन सभी पुरुषो के दो रूप देख जा सकते ह। पहले प्रकार के व पुरुष है जो गम्भीर व उत्तरदायित्व बोध से परिपूण हैं। दूसरे व पुरुष है जिनका आचरण स्वाथवृत्ति, यौन दुबलता, पलायनवादिता से आतप्रोत है। लेखिकाओ का झुकाव जहा पहले वर्ग के पुरुषो का समथन और गुणगान करने की ओर है तो दूसर वग के पुरुष उनकी निन्दा, अवमानना के भाजन बने हैं।

साराश

पारिवारिक सम्बन्धो की दृष्टि स वे सभी पुरुष पात्र रूप म इन उपन्यासा मे देख जा सकते हैं जो सचमुच किसी भी परिवार म हुआ करते है। पिता की महत्त्वपूण भूमिका के कारण लेखिकाओ ने भी सामान्यत उन्ही को परिवार म प्राथमिकता प्रदान की ह। परिवार मे दृष्टिगत होन वाले अन्य सम्बन्धी भी प्रस्तुत हुए हैं। उनके आचरणगत अनेक रूप इन उपन्यासा मे चित्रित हुए है। पिता के अनक रूपा म

उनका गम्भीर, प्रभावशाली रूप, जो अपने बच्चों पर पूरी तरह छाया रहता है अधिक विस्तार में वर्णित हुआ है। पिता के अन्य रूपों में विवश पिता, परम्परागत विचारों के समर्थक पिता, उत्तरदायित्वों से पलायन करने वाले अथवा पुत्रियों को बेच देने वाले पिता एवं परिवार के सदस्यों की सुख-सुविधा के लिए सचेष्ट पिता दृष्टिगत होते हैं। इस प्रकार महिलाओं द्वारा रचे-परखे पिता के विविध रूपों को देखा जा सकता है। पुत्र रूप में चित्रित पुरुषों में या तो, माता पिता की आज्ञा मानने वाले उनकी भावनाओं का सम्मान करने वाले पुत्रों का चित्रण हुआ है अथवा स्वच्छाचारी स्वार्थी पुत्रों का हुआ है। पुत्र रूप में चित्रित पुरुष ही भाई की भूमिका का निवाह करते हुए दो रूपों में दृष्टिगत होते हैं। श्वसुर रूप में चित्रित पुरुष मुख्यत पुत्रियों की हित कामना एवं दामाद को अधिकाधिक सुविधाएँ प्रदान करने वाले श्वसुर हैं। इसी प्रकार पुत्रवधुओं के प्रति उदारमना श्वसुर भी दिखाई देते हैं। परम्परागत विचारों वाले ऐसे श्वसुर पुत्रवधुओं से परिवार की मर्यादा के निर्वाह की अपेक्षा करते हैं। दामाद रूप में चित्रित पुरुषों के दुर्बल पक्ष का ही सामान्यत चित्रण हुआ है। ससुराल में अशिष्टता का प्रदर्शन करना अपना अधिकार समझते हैं। एसे पुरुषों ने अपनी यौन दुर्बलता को भी प्रकट किया है। बहनोई रूप में भी पुरुषों का आचरण निर्दोष नहीं है। स्वरूप जैसे आदर्श बहनोई भी चित्रित हुए हैं। पारिवारिक सम्बन्धों के निर्वाह की दृष्टि से अन्य पुरुषों का चित्रण गौण रूप से ही हुआ है। सामान्यत इनके दो रूप हैं—पहले रूप में इनका आचरण सहज है और आदर्श मण्डित कहा जा सकता है। किन्तु इनका दूसरा रूप कामनाथ पुरुष की छवि को प्रस्तुत करता है। चाचा दादा, देवर, आदि रूप में चित्रित पुरुष यौन दुर्बलताओं का उद्घाटन अधिक करते हैं। इन पुरुषों में उच्छृंखलता, उत्तरदायित्वहीनता स्वार्थवृत्ति परिलक्षित होती है।

इस प्रकार परिवार में पुरुष की भूमिका स्त्री के साथ उनके सम्बन्ध के निर्वाह की दृष्टि से निर्मित हुई है। लेखिकाओं ने पुरुष के आचरण को परिवार की महिलाओं के प्रति उनके आचरण के आधार पर चित्रित किया है। उसके आधार पर परिवार में पुरुष के आचरण को मुख्यत दो वर्गों में बटा हुआ देखा जा सकता है। उनके पहले वर्ग के अंतर्गत आदर्श व्यवहार करने वाले पुरुष आते हैं तो दूसरे वर्ग के अंतर्गत उन पुरुषों का चित्रण देखा जा सकता है जिनका दुर्बल पक्ष अधिक प्रकट हुआ है। परिवार में पुरुष के इस दुर्बल पक्ष को विस्तारपूर्वक चित्रित कर लेखिकाओं ने पुरुषों के आचरण के प्रति अप्रत्यक्षत अपने विचारों को प्रकट किया है।

दाम्पत्य सम्बन्धों के आधार पर चित्रित पुरुष पात्र

परिवार में यौन सम्बन्धों के आधार पर भी पुरुष की भूमिका को अनेक रूपों में प्रकट होता देखा जा सकता है। पत्नी के साथ बहुविध सम्बन्धों का निर्वाह करने वाले

पतियो के विविध रूप इन उपन्यासों में प्रकट हुए हैं। उसके ये रूप एक दूसरे से सर्वथा असम्पृक्त हैं। कहीं वह स्वामीवत् आचरणकर्ता के रूप में प्रस्तुत हुआ है तो कहीं असंतुष्ट पति के रूप में। कहीं उसका दुराचारी रूप प्रकट हुआ है तो कहीं वह अपने सहज रूप में उपस्थित हुआ है।

वासनान्ध पति

पति का पहला रूप वासनान्ध पति के स्वरूप को प्रकट करता है। 'बात एक औरत की' का संजय, 'रेत की मछली' का शोभन, 'अनारो' का नंदलाल इत्यादि इसी कोटि के पति हैं। संजय पुलिस विभाग में उच्च पदाधिकारी है और अनेक कुण्ठाओं से ग्रस्त है। पत्नी की इच्छाओं आकांक्षाओं की ओर ध्यान नहीं देता, रात में भूखे भेड़िये सा उस पर टूट पड़ता है। सम्पर्क में आने वाली प्रत्येक स्त्री से यौन सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा करता है। 'तुम्हें तो यह सब सहन की आदत होनी चाहिए। पुरुष तो एकपत्नीव्रत होता ही नहीं। किसी की पोल खुल जाती है, किसी की नहीं।'[24]

शोभन भी वासनान्ध पति है। प्रेम विवाह करके भी वह पत्नी के प्रति सहज नहीं है। पत्नी की आँखों के सामने प्रेमिका से सम्बन्ध बनाए रखता है। इन उपन्यासों में संजय और शोभन दोनों का दोहरा आचरण भी प्रकट हुआ है। समाज के सामने ये पत्नी से प्रेम का दिखावा करते हैं, किन्तु घर पर उसे पीटने, उस पर अत्याचार करने में संकोच नहीं करते।

नंदलाल भी अन्य स्त्री से यौन सम्बन्ध रखता है। 'ससुरी तेरी ठेढ पसली की काठी और इतरा रही है गुलबदन की तरह। उसका बदन देखा है कैसा गदराया है? रसभरी है, रसभरी।'[25] 'कृष्णकली' का रजनीकांत भी पत्नी के समक्ष इतर स्त्रियों के साथ सम्बन्ध स्थापित करता है। 'फूलरेनू, पुन्नारिनी, अभया, कृष्णा, बनू, कितनी सौता ने सताया है मेरी मालकिन को।'[26] यौनतुष्टि के लिए लालायित रहने वाले ये पति अपने आचरण से पत्नियों के लिए पीडाकर स्थितियों का निर्माण करने वाले सिद्ध होते हैं।

अहंकारी पति

दूसरी कोटि के पति वे हैं जो अपने अहं को पत्नी पर थोपने में सचेष्ट रहते हैं। 'नरक दर नरक' का जोगन्दर, 'उसके हिस्से की धूप' का मधुकर, 'मित्रो मरजानी' का सरदारी लाल, 'वह तीसरा' का संदीप इसी कोटि के पति हैं। जोगन्दर घर में अपनी ही चलती देखना चाहता है। शिक्षिता पत्नी जब उसकी अनेक दुर्बलताओं को प्रकट करती है तो वह उस पर अपने अहं को आरोपित करना चाहता है। 'तुम मुझसे हर समय ऐंठकर मत बोला करो। मैं कभी तुम्हारे लिए सॉफ्ट महसूस भी करना

चाहूँ तो तुम मोहल्ला नहीं देती।"[27] दूसरे की पत्नी से प्रेम विवाह करने वाला मधुकर पत्नी पर अपने अहं को आरोपित करते हुए देखना चाहता है। इतना अहंकारी है कि पत्नी के हर काम की नुक्ताचीनी करता है और उसे अनुगामी मात्र देखना चाहता है। नारी को नारी औरतों की खोपड़ी उल्टी मानता है और 'वीमन्स लिब' का घोर विरोधी है। 'मैं न तो 'वीमन्स लिब' में विश्वास करता हूँ और न 'दीवस' में।'[28] 'शुभ मार्ग करना' का नायक वृद्ध होते हुए भी अनेक विवाह करता है, किन्तु पत्नियों से सीता सावित्री के आदर्शों का पालन करने की अपेक्षा करता है। 'एक आदर्श गृहिणी बनो ताकि सीता और सावित्री की तरह तुम्हारा उदाहरण दिया जा सके।'[29] 'दूरियाँ' का हरि भी नायिका पर अपने अहं को आरोपित करने में सचेष्ट रहता है। 'आपका बेटी' का अजय भी पत्नी पर अपने अहं को थोपने की चेष्टा करता है जिसकी अंतिम परिणति तलाक होना है। 'तुम जानती हो अजय बहुत डॉमिनेन्ट भी है और बहुत पजेसिव भी। अपना आपका पूरी तरह समाप्त करके ही तुम उसे पा सकी थीं या सकोगी, अपने को बचाए रखकर तो उसे खोना पड़ेगा।'[30] पति के रूप में पुरुष के अहंकार को सुन्दर ढंग से प्रस्तुत करने वाला उपन्यास 'वह तीसरा' है। पत्नी की आकांक्षाओं को कुचलते रहना नायक सतीश का स्वभाव है। हर समय हर हालत में सतीश अपने अहं को रंजिता पर थोपता रहता है। 'ओह रंजिता! नो आरग्युमेंट्स प्लीज। आई हेट आरग्युमेंट्स।'[31] 'नयना' का अंग्रेज कमाण्डर पीयर्सन भी गवर्नर की पुत्री व स्वाभिमान को रखने वाली पत्नी पर अपने को थोपने की चेष्टा करता है।[32]

अत्याचारी पति

पति का अहंकारी रूप विकसित होकर पत्नी पर अत्याचार करने की प्रेरणा देता है जिसके कारण पुरुष पत्नी को पीटने, गालियाँ देने में भी संकोच नहीं करता। 'मित्रो मरजानी' का सरदारीलाल, 'बात एक औरत की' का अजय, 'मोहल्ले की बूआ' का महेश, 'रेत की मछली' का शोभन, 'अनारो' का नन्दलाल सभी पत्नी को पीटने में संकोच नहीं करते। ऐसा करने वाले पति शिक्षित भी हैं। फिर भी मात्र अहं की तुष्टि के लिए ये पत्नी पर अत्याचार करने लगते हैं। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

(i) तनु के घर लौटते ही अजय ने उसे पलंग पर गिरा लिया और इस तरह मारा कि खून से उसकी सफेद साड़ी लाल हो गई। जब हाथ पर मार सहने में हाथ टूट गया तब अजय का मारना बंद हुआ।[33]

(ii) अब कहाँ चली गई हरामजादी? अब आइयो मेरे घर में, तेरी हड्डी पसली न तोड़ दूँ तो मेरा नाम महेश नहीं।[34]

(iii) जीना हराम कर दिया है। जान लेकर छोड़ूँगा।[35]

पत्नी पर सदव शका करने वाले पति भी इन उप यासा म दिखाइ देते है।

भरवी' मे राजेश्वरी ने शकालु पति के भी अत्याचारा का उल्लेख हुआ है। उस शकालु स्वभाव के व्यक्ति न अपनी ओर स पक्की किले ब दी करना आवश्यक समझा। दूकान पर जाता तो सुदरी पत्नी को ताले म बन्द कर जाता। ठीक एक वष पश्चात् चदन हुई फिरभी वह म बद रखी गई। सुदरी पत्नी द्वारा ईमान दारी से प्रस्तुत की गई स तान को भी वह निमल चित्त स ग्रहण नही कर पाया। उससे एक ही प्रश्न बार बार पूछता बयाजो, यह मेरी हो पुत्री है ना? कही पानी तो नही मिलाया दूध मे।[36]

शोभन जस अत्याचारी पति, पत्नी पर अत्याचार भी करत हैं और समाज क समक्ष उस चुप रहने के लिए अनुनय विनय भी करते ह। पत्नी कु तल को जब वह पीटता ह तो इसी बीच उसके पिताजी आ जाते हैं। वह तुरत अपना रूप बदल कर पत्नी स उनके समक्ष सहज ढग स आने की भीख मागन लगता है। 'मुझे माफ कर दा कु तल, मैं पागल हो गया था। प्लीज कु तल! दखो अब मरी लाज तुम्हार हाथो म है। तुम्हारे पिताजी आए है। उ ह मालूम न हो यहाँ क्या हुआ था। बस, जल्दी स बाथरूम जाओ और हाथ मुह धोकर कपडे बदल लो।'[37] इस प्रकार पति क अहकारी रूप की अभि यक्ति अनेक रूपा म हुई है। पुरुषो की दुबलता का यह पक्ष निश्चय ही, लेखिकाओ की मा यताओ को विस्तार से वर्णित करता है।

अनुकूल पति

पत्नी के साथ सहज ढग स पश आने वाल या मित्रवत् आचरण करन वाल पतियो की अभिव्यक्ति भी इन उप यासा म हुई है। 'पानी की दीवार' का दिलीप, 'टूटा हुआ इ द्र धनुप' का प्रभात, 'मित्रो मरजानी' का बनवारीलाल, 'सूरजमुखी अँधेरे के' का केशी, 'सफर के साथी' का सुका त, 'मायापुरी' का अविनाश इसी कोटि क पति हैं।

दिलीप स्वय तो सादगी पसद है कि तु पत्नी की फशन के प्रति आकर्षित दखकर न उसका विरोध करता है और न बाधक ही बनता है। प्रभात अपनी पत्नी की इच्छाओ का सम्मानित करता है। उसके प्रेमी स भी खुलकर मिलता है। पत्नी क अतमन क अज्ञात रहस्यो के प्रति शका नु बन उसको कुरेदना इसका स्वभाव नही है। रहा प्रभात, तो इतना शाभना का विश्वास था कि वह इतना सज्जन है कि पत्नी के अतमन की निजी, अतरग, छिपी पगडडिया पर कभी अनधिकार प्रवेश नही करेगा। उसकी जिज्ञासा कभी शोभना की अतरात्मा को कुरेदगी, रोदगी नही।[38] बनवारीलाल अनुरक्त और सहिष्णु पति है और इसी आचरण के प्रतिदान मे वह पत्नी का भी भरपूर प्यार प्राप्त करता है। कभी भी पत्नी रीमा म पूरी तरह

अनुरक्त है। छोटी मोटी बातों से होने वाली टकराहट द्वारा आपसी तालमेल के कारण बेअसर रहती है। मुकान्त भी पत्नी के प्रति एकनिष्ठ प्रेम रखने वाला पति है। अविनाश अपनी पत्नी मंजरी के प्रेम में पूरी तरह अनुरक्त है और 'जा आना सरकार! मैंने तो आपकी सेवा का व्रत लिया है।'[39] कहकर अपना प्रेम को प्रकट करता है। इस प्रकार अनुकूल पतियों की एकनिष्ठता, सहिष्णुता, प्रेम, सहजता को लेखिकाओं ने प्रशंसा के साथ चित्रित किया है। पति का यह रूप उनके वैचारिक समर्थन को प्राप्त कर प्रस्तुत हुआ है।

विवश पति

नारी कृत उपन्यासों में पुरुष पर नारी के अहं को प्रत्यारोपित करने के प्रयास भी हुए हैं। एतद् विषयक लेखिकाओं के चिंतन की सक्षम अभिव्यक्ति इनके उपन्यासों में चित्रित विवश पति करते हैं। पति का यह रूप पत्नी के समक्ष अपनी बेबसी, निरुपायता और लाचारी को प्रकट करता है। पति के अहंकार के स्थान पर इन पतियों पर पत्नी का अहंकार हावी है जिसे पुरुष को विवश भाव से झेलना पड़ता है। 'घर' का परमजीत 'लडीज क्लब' के मिस्टर पुरी 'सागर पानी' का स्वरूप 'ज्वालामुखी के गर्भ में' के मौसाजी 'काली लड़की' के कमल बाबू 'सूनी नदी का पुल' के रायसाहब और 'नावें' का विजयेश विवश पति के रूप को सुन्दर अभिव्यक्ति देते हैं। परमजीत वस्तुतः मनीवनी से प्रेम करता है। संस्कारों के हावी हो जाने पर वह उससे छिटक कर रमा से विवाह करता है और उसकी संकीर्ण मनोवृत्ति के कारण अपने को कसाई के हाथों बन्धी बकरे की स्थिति में निरुपाय पाता है। परमजीत को लगा वह किसी कसाई के हाथों में पड़ गया है और मिमियाने के अलावा कुछ नहीं कर सकता।[40] 'लडीज क्लब' के मिस्टर पुरी पत्नी की शान शौकत की जिन्दगी के प्रति आकर्षण एवं उसकी प्रदर्शनप्रियता की रुचि की पूर्ति के लिए कर्ज लेकर शानदार पार्टी करने को विवश होते हैं। क्योंकि उनकी पत्नी के लिए यह सामाजिक परिवेश कायम रखना उसके जीवन की सबसे बड़ी चुनौती थी और शान बान के इस झूठे प्रदर्शन पर वह किसी को होम कर सकती थी चाहे वह पुरी साहब हों, चाहे उनकी पुत्रियाँ हों या फिर वह स्वयं ही।[41] स्वरूप भी अनेक कारणों से पत्नी के समक्ष अपने को पराजित महसूस करता है। 'सुलोचना के समग्र व्यक्तित्व के सामने उनकी हस्ती बिल्कुल छोटी पड़ गई थी—ठिगनी सी बावन अंगुल की। सुलोचना के साथ उनकी स्थिति हास्यास्पद होती थी। सुलोचना को उनकी आवश्यकता नहीं थी और वह अब सुलोचना के आश्रित हो चुके थे।'[42] देश की स्वतंत्रता के पूर्व का जनसेवक, स्वतंत्रता के बाद की स्थितियों में पत्नी पर पूरी तरह आश्रित होकर उसकी डाट फटकार और तिरस्कार को झेलने के लिए विवश हो जाता है।

'वाली लडकी' के कमल बाबू पत्नी के समक्ष इतने पराजित हो जाते है कि पुरुष होकर भी फूट फूट कर रोने लगते है। 'वह मुझे बहुत तंग करती है और घर पहुँचते ही खाने को दौडती है।'[13] 'ज्वालामुखी के गर्भ में' के मौसाजी भी पत्नी के अहं के समक्ष सदैव अवमर्दित होते रहते है, इसलिए घर में वे भजन पूजन में ही व्यस्त रहते है और अपनी अस्मिता की तुष्टी घर से बाहर करते है। 'ऐसा होना असम्भव भी तो नही है ! मनुष्य ही तो है आखिर वे। कही तो उनके अहं की तुष्टी होनी चाहिए। पत्नी द्वारा निरन्तर लांछित और अपमानित व्यक्तित्व को कही तो सिर उठाने का अवसर मिलना चाहिए। नही तो कोई जीयेगा कैसे।'[14] रायसाहब योगेशचन्द्र यद्यपि निरंकुश वृत्ति के है। पत्नी और परिवार पर सदैव अपने को थोपते रहते है किन्तु पत्नी द्वारा तटस्थता और वैराग्य भाव अपना लेने पर शून्यतायुक्त एकाकीपन से भर कर 'जब तुम नही तो सब कुछ भी नहीं'[15] जैसी चमत्कारी अवस्था में पहुँच जाते है।

नावे' का विजयश विवश पति का चरम रूप कहा जा सकता है। आदर्शवादिता के कारण यह एक पुत्री की मां मालती से विवाह करता है। विवाह के साथ ही पति और पिता की दोहरी भूमिकाएँ निभाता है लेकिन पत्नी की निष्ठुरता और आत्म केन्द्रित वृत्ति के कारण इसे एक विवश पति मात्र बनकर रह जाना पडता है। फलतः विजयश कुण्ठित हो जाता है और सोचता है 'अच्छी तमाशा मोल ले ली है मैंने भी। बच्चे घर घर होते है पर आदमी को इस तरह दूध की मक्खी बनाकर कही नहीं निकाल फेंक दिया जाता।'[16] पत्नी के समक्ष यह इतना निरुपाय हो जाता है कि घर से भाग जाने को ही अपना मोक्ष समझता है। 'शाम को घर जाने पर थोडा सा सामान अटैची में रखेगा और निकल जायेगा। नही नही मालती ने कुछ भी कहने सुनने की बात व्यर्थ है। वह भी देख ले मन का गुस्सा कितना तेज होता है। अगला वाले सोचेगा बाद में यहां से पिंड छुडा लेने के बाद।'[17] अतः विवश पति पर लेखिकाओं ने पत्नी के अहं को प्रत्यारोपित करने का प्रयास किया है। नारी रूप में लेखिकाओं द्वारा किए गए एस प्रयास परिवार में पुरुष के अहं को चुनौती देते हुए दृष्टिगत होते है।

सारांश

पुरुष के पति रूप से ही नारियाँ सर्वाधिक जुडी हुई रहती है। उसका आचरण, पत्नी के साथ समायोजन नारी के लिए विविध सुविधाजनक असुविधाजनक स्थितियों की सृष्टि करता है। फलतः लेखिकाओं ने पति के रूप को ही सर्वाधिक महत्त्व दिया है। पति के अनेक रूपों में से पत्नी के साथ सहज समायोजन करने वाले पुरुष प्रशंसा के साथ चित्रित हुए हैं। एसे पतियों के प्रति नायिकाओं का श्रद्धा भाव प्रकट हुआ है। किन्तु पति के दुर्बल पक्ष को चित्रित करने वाले पुरुषों का चित्रण अधिक विस्तृत हुआ है। सामन्ती, अहंकारी, अत्याचारी पति लेखिकाओं की रचनाओं में प

है क्योंकि इनका आचरण नारी के लिए पीडाकर स्थितियों की सृष्टि करता है। आधुनिक नारी अब उतनी विवश या निरुपाय नहीं रही है। योग्यताओं को रखने के कारण वह अनुगता मात्र बनी रहना नहीं चाहती। अपने अहं को पुरुष के समकक्ष देखना चाहती है। लेखिकाओं ने नारी के उसी अहं की रक्षार्थ पति के विवश रूप को भी चित्रित किया है। ऐसे पतियों पर नारी के अहं को प्रत्यारोपित करने का प्रयास हुआ है।

विधुर

पति के अनेक रूपों के अतिरिक्त यौन सम्बन्धों की दृष्टि से चित्रित विधुर की स्थिति भी महत्त्वपूर्ण है। पत्नी के साथ रहते हुए उसके साथ समायोजित करने वाला पुरुष पति के अनेक रूपों को उद्घाटित करता है, किन्तु पत्नी के अभाव मे उसका जीवन सहज नहीं रह पाता। अत विधुर के पारिवारिक आचरण को देखना भी आवश्यक है।

इन उपन्यासों में विधुर रूप में चित्रित पुरुष पात्रों में से अधिकांश ने पुनर्विवाह करने में स्वरुचि प्रकट की है। 'रुकोगी नहीं राधिका' के पापा, 'सोनाली दी' के पापा 'पाषाणयुग' के पापा, 'प्रिया' के बाबा प्रमुख विधुर पात्र है। राधिका के पिता लिखने पढने में रुचि लेने वाले व्यक्ति हैं। राधिका की माँ की मृत्यु के बाद तो उसका सारा समय ही स्वाध्याय में लगने लगा। वर्षों तक जीवन का क्रम इसी प्रकार चलता रहा। लेकिन अपने एकाकीपन से वे इतने ऊब जाते हैं कि पुनर्विवाह कर लेते हैं। 'पापा केवल पिता, लेखक, वकील बनकर ही सन्तुष्ट नहीं थे, यह उनके सामने स्पष्ट था। वे जीवन में परिपूर्णता चाहते थे। एक युवा शरीर का साथ, और इसी बोध से राधिका का मन घोर वितृष्णा से भर गया।'[48] 'सोनाली दी' उपन्यास के 'पापा' भी भी विधुर जीवन के एकाकीपन से ऊब कर पुनर्विवाह के लिए तत्पर दिखायी देते हैं। सोनाली से कहते हैं 'मेरी परीक्षा बार बार क्या लेती हो? यह घर अब तुम्हारे बिना मुझ से नहीं चलाया जाएगा। तुमने किस सुचारु रूप से चला दिया है।'[40] 'पाषाणयुग' के पापा भी पत्नी की मृत्यु के तीन वर्ष के भीतर भीतर पुनर्विवाह कर लेते हैं। 'सूखी नदी' का पुल' के रायसाहब भी पुनर्विवाह कर लेते हैं।

ये सभी विधुर वयस्क कन्याओं के पिता हैं अपने से उम्र में बहुत छोटी (सामान्यत स्वयं की पुत्री की उम्र की) नवयुवती के साथ पुनर्विवाह करते हैं। ऐसी नवयुवती पत्नी के साथ ठीक से एडजस्ट नहीं कर पाती। उस पर अपने अहं को थोपते रहने में सचेष्ट रहते हैं। पत्नी की अवस्थानुरूप इच्छाओं को विशेष सम्मान नहीं देते। उस पर अकारण सन्देह करने की प्रवृत्ति कुछ पुरुषों में दिखाई देती है।

इन विधुरों की पुत्रियाँ भी पिता के पुनर्विवाह को पसन्द नहीं करती हैं। अपनी ही

उम्र की नवयुवती को माँ के रूप म स्वीकार नही पाती है। कही कही इनका विरोध उग्र रूप म भी चित्रित है। ऐसी अवस्था म उनके पिता भी प्राय पुत्री का पक्ष लेकर दूसरी पत्नी के प्रति अत्याचार करते हैं। इस कारण 'रुकोगी नही राधिका' म राधिका की विमाता पति के ऐस आचरण स दु खी होकर आत्महत्या कर लती है। जबकि 'पाषाणयुग' म विमाता मूक होकर सारे अपमान व कष्ट झेलती चली जाती है। 'सूखी नदी का पुल' म विमाता एस पति क अत्याचारो को सहन न कर पान के कारण पूरी तरह आत्म केन्द्रित हो जाती है। पति स उदासीन भी होकर कठोर संयम का व्रत सा ले लेती है।

'सोनाली दी' ही एक मात्र एसा उपन्यास है जिसम पुत्री रानू अपन विधुर पिता क पुनर्विवाह क लिए उत्सुक दिखलाई पडती है। यहाँ पिता का आचरण भी दूसर विवाह क बाद पत्नी क प्रति अनुकूलता का भाव रखता है।

विधुरा का दूसरा रूप एस पुरुषा की कामा धता का प्रस्तुत करता है। यद्यपि य विधुर पुनर्विवाह नही करत हैं लकिन नवयुवतियो का फसान म और उन्ह अपनी वासना का शिकार बनान म ही सचेष्ट दिखाई दते हैं। य लोग अभिभावक होन क भाव का प्रदशन करत हुए अनाथ नवयुवतियों का मन जीत लत हैं। उनका विश्वास प्राप्त कर लत हैं किन्तु अवसर आन पर भूखे भेडिय स उन पर झपट कर अपनी वासना का शिकार बनान हैं। 'कृष्णकली' का रजनीकान्त मित्रा इसी कोटि के विधुर हैं। पहल पहल चतुर रजनीकान्त न अपनी शरण म आयी उस अनाथा बिहारी क साथ अपना व्यवहार [illegible] रखा कि वाणी को स्वय ही उनका अपनी छोटी आवश्यकताओं म [illegible] लिए इधर उधर भटकना पडा। [illegible] अपनी उदासीनता स ही उसका विश्वास जीतना चाहता [illegible] तब वह क्या जानती थी कि [illegible] एकदम ही शिकार पर झपटता है? [illegible] गोल गोल चक्कर काटत जब रजनीकान्त अपन शिकार [illegible] नहीं पायी। [illegible] 'रम्या' का [illegible] तरह पालिता वसती का [illegible] वासना का [illegible] बटी-बटी कहत [illegible] वह काल [illegible]

इस प्रकार विधुर [illegible] करता है जिसम विधुरों के [illegible] व्यक्ति हुई है। [illegible] उपरान्त पुनर्विवाह नहीं [illegible] हुए, प्रतिशोध [illegible] करत रहत हैं।

[illegible]

प्रेम सम्बन्धों के आधार पर चित्रित पुरुष पात्र

प्रेम वह कोमल तन्तु है जो स्त्री और पुरुष को परस्पर निकट लाता है। नारी मन प्रेम की कोमल अनुभूतियों में रेशमी तारों की सृष्टि करता है। प्रेम का सही प्रतिदान मिलने पर जहाँ नारी का हृदय पुरुष के चरणों में अर्घ्यदान देने लगता है लेकिन 'प्रेम में धोखा मिलने पर हर नारी चाहे वह किसी भी युग की हो, किसी देश की, चाहे वह नारी स्वतन्त्रता की सबसे बड़ी नेता हो एक ही प्रतिक्रिया से पीड़ित होती है। वह सारी पुरुष जाति से घृणा करती है और हर पुरुष को नीच मानती है।'[33] महिलाओं ने प्रेमाश्रित कथानकों वाले अनेक उपन्यास लिखे हैं। अन्य उपन्यासों में भी प्रेम का चित्रण हुआ है। इनमें प्रेमियों के अनेक रूपों का उद्घाटन हुआ है जिनका चिन्तन एवं आचरण भिन्न भिन्न प्रकार का है।

आदर्श प्रेमी

वास्तविक जीवन की ही भाँति प्रेम के सच्चे सम्बन्ध का निर्वाह करने वाले आदर्श प्रेमियों के दर्शन इन उपन्यासों में अधिक नहीं होते। 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' का नील, 'सूखी नदी का पुल' का डा. बानो, 'प्रिया' का मनसिज, 'नावें' का अजय आदि आदर्श प्रेमी हैं।

सुषमा से प्रेम करते हुए भी नील उस पर अपने प्रेम भाव को बलात् थोप नहीं देता है। उसे चुनाव की स्वतन्त्रता प्रदान करता है। किन्तु एक बार प्रेम भाव का स्थिरीकरण हो जाने पर सुषमा से उसका समुचित प्रतिदान भी चाहता है। 'मैं तो इतना स्वार्थी हो गया हूँ कि प्यार नहीं तो करुणा ही सही, जो भी मिले बताइए क्या मुझे दुत्कारती रहती हो।'[34] उसे इस बात का दुःख है कि वह सुषमा के जीवन को पूरी तरह एक अंग नहीं बन सका। 'मुझे अक्सर लगता है सुषमा कि तुम्हारे जीवन को मैं पूरी तरह से ढँक नहीं पाया हूँ। मैं तुम्हारे अस्तित्व की केवल परिधि ही छू सका हूँ।'[35] जब उसे ज्ञात होता है कि सुषमा के संकोच का कारण उसके पारिवारिक उत्तरदायित्व हैं तो वह सहर्ष उन्हें अपने कन्धे पर झेलने के लिए तैयार हो जाता है। 'ये जिम्मेदारियाँ मेरी भी होंगी। तुम्हारे भाई बहनों सबके लिए सब कुछ वैसे ही होगा जैसे होता आया है।'[36]

डा. बानो भी आदर्श प्रेमी है। मित्र की बहिन से सगाई हो जाने पर वह अत्यन्त प्रसन्न होता है। किन्तु जब वह किसी अन्य से विवाह कर लेती है तो वह आजीवन अविवाहित रहता है। 'टुकड़े होने न हों तो मन का मीत मिल नहीं जाया करता तारा।'[37] प्रौढ़ावस्था में सर्वथा बदली हुई अवस्था में जब प्रेमिका से उसकी पुनः भेंट होती है तो वह उसके प्रति किसी प्रकार की कटुता नहीं पालता उसके प्रति विष वमन नहीं करता वरन् उसी के यहाँ अस्पताल में अपनी सेवाएँ प्रदान करता है। प्रेमिका को पूरी तरह

क्षमा कर देता है। 'न न तारा, गलत मत समझो। तुमने जो किया था उस समय तो मुझे धक्का लगा था किंतु अब कुछ नहीं।'[58] मनसिज भी आदर्श प्रेमी है। वह प्रिया से प्रेम करता है। उसे पाने के लिए लालायित है। सच्चे प्रेम के कारण मनसिज, प्रिया को हर हालत में प्राप्त करना चाहता है। मिस प्रिया एक बात याद रखिए मनसिज चौधरी गाँधीजी के सत्याग्रह में विश्वास नहीं रखता, सुभाष बोस की सशक्त क्रांति में विश्वास रखता है। आपने मनसिज चौधरी का दिल चुराया है सजा में वह आपको उमर कैद दे सकता है देता भी।[59] अरुण के द्वारा छला जाने पर भी उसे अंगीकार करना चाहता है, क्योंकि अतीत को छोड़ यह जो कुछ सामने है उसकी वास्तविकता को स्वीकारने का पक्षधर है। पास्ट इज पास्ट, जो बीत गया सो बीत गया। जिन्दगी पीछे मुड़कर देखने का नाम नहीं, आगे देखने का नाम है, एण्ड आई बिलीव इन द फिलासफी आफ द मोमेण्ट्स, सामने खड़े ये क्षण, यह धूप, यह तुम या मैं, यही सब तो सच है जिन्दगी का। तुम आगे-पीछे देखने में उलझी रहोगी तो एक कदम भी चल नहीं पाओगी। फिर वक्त किसी के लिए नहीं ठहरता, टाईम एण्ड टाईड वेट फार नन, प्रिया! कम आन डियर लेट अस मार्च विद द टाईम, समय के साथ कदम मिलाती चलो, मैं साथ देने का वादा करता हूँ।'[60] अजय भी आदर्श है प्रेमी। पिता की हठवादिता इसे प्रेज स्वीकार करने के लिए विवश नहीं कर पाती। नीलिमा से सच्चा प्रेम करता है और उसे पाने के लिए घर परिवार सभी को छोड़ देता है।

इस प्रकार आदर्श प्रेमी प्रेम के प्रति समर्पित रहते हैं। उनमें स्वार्थवृत्ति का अभाव होता है। लेखिकाओं ने प्रेमियों के इस रूप के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट की है।

असफल एवं निराश प्रेमी

प्रेम के क्षेत्र में सभी सफलकाम नहीं हो पाते। वर्तमान सामाजिक स्थितियों में प्रेमी के लिए सफल होना सहज नहीं है। 'इन्नी' का राज, 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' का नील, 'श्मशान चम्पा' का सतीश, 'रथ्या' का विमलानन्द इत्यादि इसी कोटि के पुरुष पात्र कहे जा सकते हैं।

प्रेमी के आदर्श रूप को अभिव्यक्ति देने वाला नील असफल प्रेमी है। सुषमा का हृदय जीत लेने पर भी वह उसे प्राप्त नहीं कर पाता। सुषमा अपनी जड़ता नहीं तोड़ पाती और वह निराश होकर विदेश चला जाता है। राज नायिका इन्नी से प्रेम करते हुए भी अन्य से विवाह करने को बाध्य होता है किन्तु जीवन भर प्रेमिका की कामना की निदारुण भट्टी में जलता रहता है। मैं तुम्हें प्यार करता हूँ एकाग्र एकांत रूप से। यह अग्नि उसका साक्षी है। तेरा अंतर्यामी- घट घट व्यापी साक्षी है। तभी तो मर कर तुझे छू न दूँ।'[61] विमलानन्द पिता के क्रूर अनुशासन के कारण प्रेम में सफल नहीं हो पाता। सतीश मन की कायरता के कारण अपनी प्रेमिका शोभा को प्राप्त नहीं कर पाता। 'क्षमा तो मुझे मांगनी थी शोभा। मैं ही कायर था, उसी का फल भोग

रहा हूँ। मेरी आँखों में देखो शोभा, तुम क्या सोचती हो कि मैं तुम्हें भूल गया हूँ।'[66] यही स्थिति 'रुकोगी नहीं राधिका' में अक्षय की भी है। अपनी संकोचजनित जड़ता के कारण राधिका के समक्ष वह हृदय की बात नहीं रख पाता और विफलकाम होता है।

इस प्रकार इन उपन्यासों में विफल प्रेमियों की एक लम्बी पंक्ति है। इनकी विफलता का कारण मुख्यतः उनकी दब्बू वृत्ति है। अपनी बात को ठीक समय पर ठीक ढंग से न कह पाने के कारण ये असफल हो जाते हैं। महिलाओं ने इन प्रेमियों के माध्यम से पुरुषों की कायरता का उद्घाटन किया है। आदर्श प्रेमी होने पर भी दुर्बल मनोवृत्ति के कारण ये पात्र लेखिकाओं की सहानुभूति प्राप्त करने में असमर्थ रहे हैं। नील जैसे आदर्श प्रेमी आदर्शवादिता के अतिरेक के कारण विफलकाम होते हैं। प्रेमिका के लिए त्याग का आदर्श तो स्थापित करते हैं किन्तु लेखिकाओं की गहरी सहानुभूति प्राप्त नहीं कर पाते।

धोखेबाज एवं भ्रमरवृत्ति के प्रेमी

इन उपन्यासों में उन प्रेमियों के प्रति लेखिकाओं का विरोध भाव अधिक प्रकट हुआ है जो प्रेम के नाम पर छल करते हैं। प्रेम सम्बन्ध का पूरी तरह निर्वाह नहीं करते और अपने अहं के कारण नारी को पीड़ा देते हैं। 'बेघर' का परमजीत, 'प्रिया' के यशवन्तजी एवं अरुण, 'दूरियाँ' का मन्नू, 'कृष्णकली' का विद्युतरंजन, 'पतझड़ की आवाजें' का विजय इसी प्रकार के छली प्रेमी हैं। संजीवनी से प्रेम करने वाला परमजीत उससे दैहिक सम्बन्ध स्थापित कर उसे सिर्फ इसलिए छोड़ जाता है कि वह उसके लिए अपने को पहला पुरुष नहीं पाता। संजीवनी को अपनी सफाई में कुछ भी कहने का अवसर नहीं देता। इस प्रकार प्रेम के कारण सम्बन्ध स्थापित करने वाला परमजीत उसके साथ छल करता है और अन्यत्र विवाह कर लेता है। परमजीत से पूर्व विपिन भी संजीवनी के साथ छल से बलात्कार करता है और मारीशस जाकर बस जाता है। 'प्रिया' में माँ एवं पुत्री दोनों को प्रेमियों द्वारा धोखा दिया जाता है। समाज सेवक यशवन्तजी सौदामिनी से प्रेम का नाटक करते हैं, किन्तु बच्ची की माँ बनने पर रखैल से अधिक सुविधाजनक स्थिति में रखने को तैयार नहीं होते। 'मैं तुम्हारी संगिनी बनकर रह सकती थी रखैल बनकर नहीं। और तुमने मेरे साथ भारी धोखा किया था, अक्षम्य अन्याय। तुमने मुझे बरबाद करके छोड़ दिया।[67] फिर अपनी पुत्री के ही बड़े होने पर उसके यौवन के मूल्य पर अपनी फैक्टरी के लिए सुविधाएँ प्राप्त करते हैं। इस प्रकार यशवन्तजी अपनी पुत्री को अरुण के हाथों समर्पित कर सुविधाएँ प्राप्त करते हैं। अरुण भी प्रिया से प्रेम का नाटक कर उसे धोखा देता है। पुरुष की नीचता का प्रदर्शन करते हुए यशवन्तजी स्वार्थसिद्धि हो जाने पर प्रिया को उसकी माँ के पास लौटा जाते हैं। 'मुझे अफसोस है अरुण

ग़ाबाज निकला। वह योरोप जा चुका है। सुना है वह वहाँ पहले ही एक अमरीकी लड़की से शादी कर चुका है, एक बच्चा भी है। खैर, जो हुआ सो हुआ। दो हजार का चक भेज रहा हूँ, प्रिया का एबार्शन करवा देना और उससे कहना कि सब कुछ भूल जाए। इसके अलावा कोई उपाय भी तो नहीं है। हाँ मुझे अफसोस जरूर है। और हाँ, एक अपने ही 'तबके' का कोई घर वर ढूंढ कर प्रिया का ब्याह कर लो। कन्यादान देने। आऊँगा बस अब और तंग मत करना।[61]

नाव' के सोमजी भी छली प्रेमी ही है। मालती से प्रेम के कारण यौन सम्बन्ध स्थापित करते हैं पर गर्भिणी हो जाने पर उत्तरदायित्व का नकारते हैं। विवाह के लिए कतई तैयार नहीं होते और उस रखैल की स्थिति में रखने की व्यवस्था करते हैं। यही स्थिति कृष्णकली के विद्युतरंजन की भी है। विवाहित होते हुए भी पन्ना से सम्बन्ध रखता है लेकिन जब वह माँ बनने वाली होती है और अपना हक माँगती है तो उसे छिटक देता है। प्रथम यौवन के गरजते तरजते समुद्र में जब दोनों समय की पतवार दूर पटक मस्ती में डगमगाती तरणी में तरते, आधा फासला पार कर चुके थे तब मँझधार में ही तूफान का आभास पाकर कुशल तैराक कर्णधार कूदकर तरता किनारे में लग गया था। रह गयी थी केवल तरणी और भय से काँपती निराधार सहचरी।'[60] यही नहीं प्रेमिका पर आरोप भी लगाता है कि पन्ना होने वाली सन्तान का पिता कोई और पुरुष है। यह क्यों भूल जाती हो पन्ना कि हम में ही नहीं कोई और भी इस दुनिया में ला सकता है।[66] 'दूरियाँ' का यश भी धोखेबाज प्रेमी है। चारु के साथ प्रेम कर वह उससे विवाह के लिए प्रतिश्रुत होता है किन्तु अपने तबादला हो जाने पर वह आदिवासी लड़की से विवाह कर लेता है लेकिन चारु के प्रति अपने को दोषी नहीं मानता। 'एकोमी नहीं राधिका' का विदेशी पुरुष डन राधिका के साथ भी धोखा करता है। पिता के पुनर्विवाह के निर्णय में क्षुब्ध राधिका को यह अपने साथ अमरिका ले जाता है किन्तु एक वर्ष बाद अन्य देश में नियुक्ति हो जाने पर उसे अमेरिका में छोड़ स्वयं चला जाता है। 'बात एक औरत की' का कलस्टर अमर भी इसी कोटि का प्रेमी है जो नायिका की मजबूरियों से फायदा उठाकर उससे यौन सम्बन्ध स्थापित करता है और उसे भूल जाता है। विजय भी प्रेम के नाम पर अनुभा को छलता है। उससे यौन सम्बन्ध तक स्थापित करता है। अनुभा के घबराने पर वह सब कुछ सम्हालने की जिम्मेदारी लेता है लेकिन जब सचमुच वह माँ बनने वाली होती है तो पीछे हट जाता है। निलज्जता से पीछे ही नहीं हटता दहेज या पैसे के द्वारा पिता को संतुष्ट करने की बात भी कहता है। 'तुमने कहा था मैं सब सम्हाल लूंगा। पर अब तुम कह रहे थे कि क्या करूँ, शादी नहीं कर सकता। हालात ही ऐसे हैं। अगर कोई बेहद अमीर लड़की होती तो संभव हो पाता। पिताजी का इतना आतंक है कि बहनों के लिए दहेज जुटा दूं तभी विवाह करा

देंगे—और सुनो, तुम्हारी तनख्वाह साढ़े चार सौ ही तो है न। मान लो मैं अपना घर छोड़, परिवार छोड़ तुम्हारे पास आ जाऊँ। तो क्या गुजर हो सकेगी ? जानती हो मैं आर्टिस्ट आदमी हूँ। बेहद सेंसिटिव हूँ। मैं जिन्दगी की मामगाह की उलझनों से नहीं भर सकता वरना बहुत जल्दी उजड़ जाऊँगा।[67]

इस प्रकार प्रेम के नाम पर धोखा देने वाले इन प्रेमियों को अनेक उपन्यासों में देखा जा सकता है। इनमें विवाहित एवं अविवाहित दोनों प्रकार के पुरुष हैं। ये सभी यौन तुष्टि के लिए प्रेम सम्बन्ध स्थापित करते हैं। यौन सम्बन्धों के परिणामस्वरूप जब प्रेमिका माँ बनने की स्थिति में पहुँच जाती है अथवा अपने अधिकारों की माँग करती है तो ये भाग खड़े होते हैं। नारी को काम संतुष्टि का साधन मात्र समझते हैं। उसकी भावनाओं का सम्मान नहीं देते। नारी के साथ छल करने में संकोच नहीं करते 'पतझड़ की आवाजें' की अनुभा प्रेम के नाम पर छल करने वाले विजय को सम्बोधित कर मानो नारी की ओर से सारे छली प्रेमियों से कहती है 'तुम जिन्दगी में पचीस दफ़ा मरो पर ईमानदारी तो बरतो। अपने से ही बेईमानी करते जाना तुम्हें गिरा देगा।'[68] परमजीत, यश, इन जैसे प्रेमी अपने निर्णय को उपयुक्त मानते हैं। यशवन्त सोमजी, विद्युत्‌रंजन जैसे प्रेमी अपनी प्रेमिका को रखैल में अधिक सुविधाएँ देने के पक्षधर नहीं हैं।

साराश

अस्तु, नारी के साथ प्रेम सम्बन्ध स्थापित करने वाले पुरुष- प्रेमियों के अनेक रूप इन उपन्यासों में चित्रित हुए हैं। उनमें से आदर्श प्रेमियों को सश्रद्ध समर्थन प्राप्त हुआ है तो छल करने वाले, नारी को फुसला कर यौन बुभुक्षा की पूर्ति करने वाले, प्रेम सम्बन्ध का पूर्णत निवाह न करने वाले प्रेमियों के आचरण पर प्रश्नचिह्न लगाए गए हैं। भ्रमरवृत्ति के प्रेमी संख्या में अधिक हैं जो पुरुष के आचरण की दुर्बलताओं का उद्घाटन करते हैं। निराश प्रेमियों का चित्रण पुरुषों की कायरता को प्रकट करने के लिए किया गया है। अपनी बात को न कह सकने वाले ये दब्बू प्रेमी महिलाओं के समक्ष अपनी हीनता का प्रदर्शन कर उनके समर्थन को प्राप्त नहीं कर पाते।

शैक्षणिक योग्यता की दृष्टि से चित्रित पुरुष-पात्र

शैक्षणिक योग्यता की दृष्टि से पुरुष आचरण के अनेक रूप स्वत निर्मित हो जाते हैं। शिक्षितों एवं अशिक्षितों के चिंतन में पर्याप्त असमानता होती है। इसी कारण उनका आचरण भी भिन्न भिन्न प्रकार का होता है। इन उपन्यासों में शिक्षित पुरुषों का चित्रण अधिक हुआ है। विदेश में शिक्षा प्राप्त पुरुषों की संख्या भी अधिक है। शैक्षणिक उपलब्धियों के संदर्भ में उनके जीवन दर्शन के भिन्न भिन्न रूप बौद्धिक चेतना अहंभाव आदि भी विस्तार से वर्णित हुए हैं।

शिक्षा के प्रति विचार

उपन्यासों में चित्रित प्रायः सभी पुरुष पात्र शिक्षित हैं। वे शिक्षितों की ही भांति आचरण भी करते हैं। 'मोम के मोती' का राजन, 'उसके हिस्से की धूप' का मधुकर, 'बेघर' का परमजीत और 'नरक दर नरक' का जोगेन्दर शिक्षा के प्रति विशिष्ट मान्यताएँ रखते हैं। राजन अध्ययन को जीवन की अनिवार्य आवश्यकता मानता है "पढ़ना प्रकाश है माया, मैं चाहता हूँ तुम इससे वंचित न रहो।"69 लेकिन उससे भी अधिक तरजीह अनुभव की शिक्षा को देता है। 'तुमने टगोर नहीं पढ़ा, परन्तु जीवन तो पढ़ा है। जीवन का पढ़ना ही सबसे बड़ी शिक्षा है।"70 मधुकर पढ़ाई के नाम पर किताबें रटकर परीक्षा उत्तीर्ण करने को सच्ची शिक्षा नहीं मानता और अपने छात्रों को यूनिवर्सिटियों के काल्पनिक जगत को छोड़कर यथार्थ जगत में प्रवेश करने के लिए उकसाता है। 'किताबें रटने और लक्चर चाटने में वे जीवन का मुकाबला नहीं करते।"71

दूसरी ओर शिक्षित होते हुए भी शिक्षा के प्रति अरुचि रखने वाले, पढ़ने की प्रवृत्ति को नापसन्द करने वाले पुरुष भी देखे जा सकते हैं। 'बेघर' का परमजीत इस प्रकार का ही पुरुष है जो शिक्षा को मात्र फैशन समझता है और पढ़ने के शौक को पौरुषमय शौक नहीं समझता। "पढ़ना उसे कभी पौरुषमय शौक नहीं लगा। उसने इस बात पर घमण्ड ही किया था।"72

नरक दर नरक में शिक्षित रूप में सामाजिक एवं राष्ट्रीय समस्याओं से जूझने वाले शिक्षित बेरोजगार पुरुषों की चेतना का स्फुरण हुआ है। शिक्षा का व्यापक प्रसार लाखों लोगों को बेरोजगार बना देता है। इस दृष्टि से उच्च शिक्षा के व्यापक फैलाव के दुष्परिणामों को जोगेन्दर, जगनाथ, आतिश आदि पात्र प्रस्तुत करते हैं। "हमारी यूनिवर्सिटियों से निकले हुए कितने लाख विद्यार्थी बेरोजगार हैं, इसकी तुम्हें खबर है ?"73

विदेशी शिक्षा प्राप्त पुरुष

विदेश में पढ़े हुए अनेक पुरुष पात्रों का चित्रण इन उपन्यासों में हुआ है। किन्तु अधिकांश के आचरण में इससे कोई भी परिवर्तन परिलक्षित नहीं होता है। इनके लिए विदेशी शिक्षा एक अलंकरण मात्र है। लेखिकाओं ने विदेशी शिक्षा प्राप्त करने का महत्व देकर अपने पात्रों को गौरव भर प्रदान करने की चेष्टा की है। 'मायापुरी' का सतीश, 'सूरजमुखी अँधेरे के' का पुत्र का मुकेश, 'सफर के साथी' का सुकान्त इसी कोटि के पात्र हैं। सतीश एवं सुकान्त का आचरण विदेश में शिक्षा प्राप्त करके लौटने पर भी अपरिवर्तित रहता है जबकि मुकेश विदेश में शिक्षा प्राप्त करके भी भारतीयता और भारतीय संस्कारों को पसन्द करता है। विदेशी महिला से विवाह करता है

लेकिन पत्नी को भारतीय लिबास में रखता है। स्वदेश आने पर माता पिता के चरण स्पर्श कर उन्हें प्रणाम् करने की प्रेरणा देता है। स्वयं भी ऐसा ही करता है।

विदेश में शिक्षा प्राप्त करने गए उन पुरुष पात्रों का चित्रण भी हुआ है जो वहां जाकर पूरी तरह से अपनी भारतीयता की पहचान ही खो देते हैं। 'स्वोगी नहीं राधिका' का प्रवीण इसी कोटि का पुरुष है। फाईन आर्ट्स में डिप्लोमा करने विदेश जाता है और भारतीयता को पूरी तरह भूल जाता है। अंग्रेजी में ही बातचीत करता है, हिन्दी बोलने में उसे शर्म महसूस होती है। गर्वपूर्वक यह स्वीकारता है कि उसके बच्चे हिन्दी नहीं जानते हैं। हमारे बच्चों को तो अंग्रेजी छोड़कर कोई भी भाषा नहीं आती।'[74]

विदेश में शिक्षा प्राप्त कर स्वदेश लौटने पर यहां की अव्यवस्था से दुखी, किन्तु भारतीयता के मोह के कारण देश न छोड़ने वाले पुरुष भी इन उपन्यासों में दिखाई देते हैं। 'रुकोगी नहीं राधिका' का मनीश यहां की दुरावस्था से शीघ्र ही ऊब जाता है। यहां की निराशाजनक स्थितियों से घबराकर भारत या विदेश में स्थायी रूप से बसने के प्रश्न पर अनिर्णीत दशा में झूलता रहता है। इसी उपन्यास का दिवाकर फिजिक्स में डाक्टरेट की उपाधि लेकर विदेश से लौटता है किन्तु अपनी योग्यता के अनुरूप यहां कोई अवसर नहीं पाकर दुखी हो जाता है। फिर भी स्वदेश के मोह के कारण यहीं रहना चाहता है।

इस प्रकार शिक्षा द्वारा अर्जित योग्यताओं से पुरुष आचरण के विविध रूप दृष्टिगत होते हैं। चेतना के धरातल पर उनकी इन योग्यताओं का स्फुरण अपने अपने ढंग से हुआ है। कुछ पात्रों में वैयक्तिक अहं की दृढ़ता के कारण तो अन्य कुछ में दुर्बल व्यक्तित्व संघटन के कारण उनका निजी व्यक्तित्व शिक्षित हो जाने पर भी अपरिवर्तित रहा है। शेष शिक्षित पात्रों में योग्यतानुरूप बौद्धिक चेतना एवं आचरण की विशिष्टता के दर्शन होते हैं।

शिक्षित पात्रों में बौद्धिक चेतना का स्वरूप

शिक्षित पुरुषों में बौद्धिक चेतना का प्राधान्य समाज में सर्वत्र दिखलाई पड़ता है। इसकी उपस्थिति के कारण ही पुरुष वर्ग जीवन के नाना विषयों पर विचार करते हैं एवं स्थितियों से जूझते हुए अपनी अस्मिता की रक्षा की चेष्टा करते हैं। तदनुरूप आचरण करते हैं। पुरुषों की बौद्धिकता शिक्षा संस्कार और व्यक्तित्व में परिवेष्टित होकर उद्भासित होती रही है। इन उपन्यासों के पुरुषों में भी यह प्रवृत्ति पूरी तरह विद्यमान है।

'सूरजमुखी अंधेरे के' के केशी बुद्धि के धरातल पर सही और गलत सोचने को परिभाषित करते हुए कहते हैं 'जितना गलत सोचना गलत है, उतनी ही सही को कम सही

समझना भी।'75 जीवन की विषम संघर्षशील स्थितियों में ऐसी लड़ाई को मन में लड़ते रहने की अपेक्षा अपने से बाहर रखकर लड़ना हमेशा अच्छा समझते हैं। हमेशा अपने अन्दर लड़ते रहने का कोई फायदा नहीं। लड़ाई को अपने से बाहर रखकर लड़ना हमेशा अच्छा है।' 76 'पानी की दीवार' का दिलीप पेट की भूख से भी अधिक मन की भूख को तरजीह देता है। 'जीवन में पेट की भूख सहन हो सकती है, किन्तु मन की भूख नहीं।'77 बौद्धिक धरातल पर काल्पनिक हवाई आदर्शों का विरोध करने का भाव 'नावें' के विजयश में दृष्टिगत होता है। सुधारवादी आदर्शों को यथार्थ के क्रूर थपेड़ों से टूटने की नियति को यह जीवन की अनिवार्यता मानता है। 'यहां भी बड़े सुधारवादी नकुआ बन फिरते थे। कैसा सुधार हुआ है। आदर्शों की भट्ठी खुद गई और उस पर बैठे हुए गुलगुले तले जाते।'78

शिक्षित पात्रों का दूसरा वर्ग उन पुरुषों का है जो बुद्धिजीवियों में व्यर्थ की दिमागी कसरत करने की प्रवृत्ति का विरोधी है। शिक्षितों में व्याप्त चिन्तन एवं आचरण की असमानता को नापसन्द करता है। 'उसके हिस्से की धूप' का जितेन इसी कोटि का पात्र है। वह भारतीय बुद्धिजीवियों के चिन्तन को त्रुटित और विडम्बनापूर्ण पाता है। चिन्तन पर अमल करने की अपेक्षा परोपदेश देने की आदत का यह घोर विरोधी है। 'है यहां कोई बुद्धिजीवी जो किसी ठोस चीज का संचालन कर रहा है? अलबत्ता सुझाव हर मिनिट एक की रफ्तार में जरूर दे रहा होगा।'79

इस प्रकार युगसत्य को आत्मसात् करने वाले इन शिक्षित पुरुषों की बौद्धिक जागरूकता विविध दिशोन्मुखी दृष्टिगत होती है। इन प्रबुद्ध चेता पात्रों की संख्या लेकिन सीमित है। अधिकांश पात्र प्रेम, यौनतुष्टि या आत्मतुष्टि के भावों की पूर्ति के लिए ही प्रयत्नशील दिखाई देते हैं।

अशिक्षित पुरुष

शिक्षित पात्रों की समता में अशिक्षित पुरुष पात्रों का उल्लेख इन उपन्यासों में अधिक नहीं हुआ है। 'मरघी' का खपा, 'अनारो' का नन्दलाल, 'अपना घर' का इसहाक, 'नयना' का बाल्ल, 'श्मशानचम्पा' का शेरसिंह, 'सागर पाखी' का नौकर इत्यादि कुछ पात्र हैं। खपा श्मशान में चाण्डाल का काम करता है। मन का साफ है और वही एक दुकान चलाता है। ... पुरुष की छवि को प्रस्तुत करता है। दिमाग का कोठा तो खाली है अभागे का पर दिल का पूरा सिकन्दर है। बस है हरामी एक नम्बर का मजाकिया होटल का नाम धरा है श्मशान विहार। 80 लेकिन अशिक्षित होने से इसहाक अपने व्यवसाय में ठगे जाने की पीड़ा से ग्रस्त है।

नन्दलाल अशिक्षित पात्रों के निकृष्ट आचरण को प्रस्तुत करता है। समस्त दुर्व्यसन

टरा वाला यह पात्र पत्नी के श्रम का शोषण करता है, जिम्मेदारियों से भागता फिरता है और इस प्रकार अपने दुर्बल व्यक्तित्व का प्रस्तुत करता है। केहरसिंह अनपढ़ होने से बात बात में गालियां बोलता है और अपने आपको अधिक दयनीय और हास्यास्पद बना देता है। सागर पानी का नौकर अशिक्षित है। घर की सारी जिम्मेदारी इसी पर है लेकिन यह बेईमानी करने से नहीं चूकता।

इस प्रकार अशिक्षित पात्रों की बौद्धिक चेतना अविकसित जीवन दृष्टि का परिचय देती है। यथा रसहाय जैसे पात्र अशिक्षित होते हुए भी सम्पन्न हैं। इनमें मानवीय आचरण की शाश्वत मनुष्यता के दर्शन होते हैं। दूसरी ओर नन्दलाल जैसे पात्र विकारों से युक्त होकर हेय आचरण करते हैं। अशिक्षित पात्रों का चित्रण इन उपन्यासों में अत्यंत सीमित है। लेखिकाओं ने इन्हें कहीं भी कथान्तरों में प्राथमिकता प्राप्त नहीं करने दी है।

सारांश

शैक्षिक योग्यता के आधार पर चित्रित पुरुषों के अनेक रूप देखे जा सकते हैं। सामान्यतः शिक्षित पुरुषों का आचरण योग्यतानुरूप आचरण ही है। किन्तु शिक्षित होते हुए भी पतन से अनभिज्ञ रहने वाले पुरुषों का चित्रण भी उपन्यासों में हुआ है। शिक्षा के प्रसार से उत्पन्न राष्ट्रीय समस्याओं के प्रति रोष को भी इन पुरुषों में देखा जा सकता है। विदेशी शिक्षा प्राप्त पुरुषों में से अधिकांश ऐसे हैं जिनमें ऐसी योग्यता के बावजूद कोई परिवर्तन दृष्टिगत नहीं हुआ है। विदेशी शिक्षा प्राप्त करना एक प्रकार से उनका अलंकरण मात्र है। दूसरी ओर विदेश की शिक्षा से उत्पन्न नवीन चिंतन एवं आचरण को प्राप्त करने वाले पुरुषों का चित्रण भी हुआ है। इनमें चेतना के स्तर पर कहीं अहं भाव है तो कहीं भारत के पिछड़ेपन का दायित्व बोध है। कुछ में अपने अनुरूप सेवा के अवसरों के अभाव की पीड़ा भी है। जहाँ तक शिक्षित पुरुषों की बौद्धिक चेतना का प्रश्न है इन पुरुषों में तदनुरूप सक्षमता का भाव परिलक्षित होता है। इन उपन्यासों में अशिक्षित पुरुषों की संख्या नगण्य है। उनके आचरण में जीवन के प्रति गम्भीर दृष्टि का अभाव है। उपन्यासों में अशिक्षित पात्रों की अधिकांशतः अनुपस्थिति है जबकि विदेशी शिक्षा प्राप्त पुरुषों का चित्रण अधिक है। इससे यह संकेत मिलता है कि लेखिकाओं का उच्च शिक्षा का क्रेज है और वे विदेशी शिक्षा के ठप्पे को पुरुषों पर लगा देखना पसन्द करती हैं। यह दूसरी बात है कि ऐसे अधिकांश पुरुषों में विदेशी शिक्षा शोभा बढ़ाने वाला अलंकार मात्र है, उनके वास्तविक आचरण में कोई खास परिवर्तन दिखाई नहीं देता है।

सस्कारों के आधार पर चित्रित पुरुष पात्र

महिलाओं के इन उपन्यासों में भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों संस्कारों से परिचालित

होकर आचरण करने वाले पुरुष पात्र देखे जा सकते हैं। भारतीय संस्कारों के पात्र परम्परागत भारतीय आचार विचारशीलता को प्रस्तुत करते हैं। 'कृष्णकली' का प्रवीर इसी कोटि का पुरुष पात्र है। देश विदेश घूमकर भी यह पूरा संस्कारी भारतीय है। अम्मा ने बड़े गर्व से कहा था, मेरा लल्ला, मेरा संस्कारी बेटा है। जब देश विदेश घूमकर भी उसका जनेऊ उसके साथ रहा तो क्या अपनी देहरी में लौट कर उसे तोड़ देगा ?81

भारतीय संस्कारों से बँधे हुए ब्राह्मण पात्र भोजन के सम्बन्ध में विशेष परहेज और विधि निषेधों का पालन करते हैं 'श्मशान चम्पा' के लोकमणि पंत यात्रा के समय पत्नी के हाथ की बनाई हुई गुड़ पापड़ी खाकर गुजारा करते हैं। दिन डूब जाने पर संध्या वंदन किए बिना कुछ भी नहीं खाते हैं। अपने संस्कारों को स्पष्ट करते हुए कहते हैं नहीं धुलेगी दिन डूब गया है अब तो मैं बिना संध्या किए कुछ नहीं खाऊँगा। तुम तो जानती हो अपनी ब्राह्मणी को छोड़, मैंने आज तक किसी के हाथ का दाल भात नहीं खाया। मुसबी के रस में आटा गूँधकर अगर चार पूड़ी तल दोगी तो काम चल जाएगा। दूध के गूँधे आटे में भी मेरी श्रद्धा नहीं रही। जानती तो हो शुद्ध दूध कहाँ मिलता है आजकल। मुसबी के रस में तो किसी मिलावट का डर नहीं रहता।82 अपने को कुलीन ब्राह्मणवंश का मानने वाले लोकमणि पंत शुद्धाचारों के पक्षधर हैं। एकादशी का व्रत करते हैं और उस दिन किसी और से छू दिए जाकर भ्रष्ट नहीं होने देना चाहते। बस कर बस कर मुझे मत छूना। आज एकादशी है। भ्रष्ट करोगी क्या मुझे।83 'मुझे माफ करना' का सेठ भी संध्या जनेऊ, अर्पण में विश्वास करता है। यद्यपि यह सिर्फ प्रदर्शन के लिए अधिक था आस्थापूर्ण आचरण का सत्य नहीं था। संध्या जनेऊ अर्पण आदि पर उनको श्रद्धा थी परन्तु मैंने कभी उन्हें कर्मकाण्ड में रमते नहीं देखा। बैठकर विधिवत् उन कार्यों के लिए जो धैर्य चाहिए, उसका उनमें अभाव था। जनेऊ भर आस्था से पहनते थे।84

जातीयता एवं अस्पृश्यता की भावना भी इन पुरुषों में दृष्टिगत होती है। 'नयना' उपन्यास में हिन्दुओं की अस्पृश्यता की भावना का विस्तारपूर्वक उभारा गया है। महतर की लड़की को छूना पाप समझने वाले उन पर अत्याचार करने वाले, उन्हें अपने से कहीं नीचा समझने वाले गुसाईं जी रामभरोसे चौधरी जी आदि पुरुष पात्र छुआछूत के आधार पर अपने आचरण को प्रस्तुत करते हैं। 'अरे साहब इसे कैसे छू सकते हैं ? यह तो महतर की लड़की है। नहीं तो दो धौल लगाकर भगा न देता। बड़ा गजब हो गया इसने आपको छू डाला। आपको फिर से स्नान करना पड़ेगा।85

दूसरी ओर इन उपन्यासों के प्राय सभी शिक्षित युवा पुरुष पाश्चात्य सभ्यता के पक्षधर हैं। वर्मा जी जीवन जीने वाले ये पुरुष भारतीयता की पहचान को

महिला उपन्यासका-

भुला चुके हैं। आधुनिक जीवन मूल्यों को स्वीकार करते हुए शराब, जूआ, स्वच्छन्द यौनाचार, क्लब, होटल सभी को आत्मसात् करते हुए जीवन जीते हैं। इनमे भौतिकवादी सुख-सुविधाओं के उपभोग की प्रबल प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है। प्रायः सभी युवा इसी मान्यता के पोषक हैं और तदनुरूप आचरण करते हैं। चिंतन के द्वारा अपनी इन मान्यताओं का पोषण भी करते हैं। प्रिया का मनसिज इस रॉकेट एज में बैलगाड़ी पर सफर करना पसन्द नहीं करता है। कहता है—'एण्ड आई बिलीव इन नो स्नहिविशि स आर टर्न। बात पर जा उनका के इस 'रॉकेट एज' में मैं तो बैलगाड़ी पर सफर नहीं कर सकता। और मन्दिर में किसी पत्थर की प्रतिमा के सामने आँख मूंद के हाथ से, तुम्हारी जैसी जीती जागती हाड़ मांस की प्रतिमा की आँखों में डूब जाना मनसिज की सिनयर-स्ट फिलॉसफी है।[86]

क्षेत्रीय संस्कारों के आधार पर चित्रित पुरुष-पात्र

क्षेत्र विशेष में रहने वाले व्यक्ति के चिंतन पर उस क्षेत्र के परिवेश का पूरा प्रभाव परिलक्षित होता है। इन उपन्यासों के पुरुष पात्रों के चिंतन में भी उसकी छवि स्पष्ट ही परिलक्षित होती है। परिवेश की भिन्नता के कारण चित्रित पुरुषों के सोच व आचरण की भिन्नता स्पष्ट दिखाई देती है।

महानगर के पुरुष-पात्र

महानगरों में रहने वाले पुरुषों के चिंतन एवं आचरण पर वहाँ की सामाजिक एवं भौगोलिक स्थितियों का पूरा प्रभाव दृष्टिगत होता है। सर्वाधिक प्रभाव अलग अलग महानगरों के जीवन स्तर में अंतर का पड़ा है। 'बेघर' का परमजीत 'नरक दर नरक' का जोगेन्दर दोनों ही बम्बई को दिल्ली से बेहतर समझते हैं। परमजीत पुरानी दिल्ली की पुरानी आबादी में पलकर बड़ा होता है। मित्रों की ही भांति बम्बई को वह समुद्र फिल्म और लड़कियों से जोड़ता है। जबकि दिल्ली उसे गंदगी का शहर नजर आता है। उन्होंने बम्बई फिल्मों में देखी थी और उन्हें लगता था बम्बई में दिल्ली की तरह दूध के लिए लम्बी कतारें नहीं लगती। वहां अँगीठियों में धुएँ नहीं निकलते, वहाँ सड़कों पर गाये गोबर नहीं करती और वहां शादी पर लाउडस्पीकर पर गाने परेशान नहीं करते।'[87] लेकिन जब वह नौकरी करने बम्बई जाता है तो सर्वथा भिन्न स्थितियाँ पाकर दुःखी होता है। शहर का मिजाज इतना रूखा होगा परमजीत ने नहीं सोचा था। उसके सामने कभी यह समस्या आई ही नहीं कि अगर शहर उसे मंजूर न करता क्या होगा? अपने शहर में वह अपने को इस कदर घर पाता था कि उसे कभी कुछ भी अजाना नहीं लगता था। पर यह शहर उसके लिए नितान्त अपरिचित था, उसके घरेलूपन व वैचित्र्य आरामपसन्दी के लिए चुनौती।[88] जोगेन्दर नौकरी के अवसरों का अभाव एवं जीवन यापन के लिए अनुकूल अवसरों की कमी के बावजूद बम्बई को दिल्ली से अच्छा समझता है। इस

बात क लिए हालांकि उसके पास कोई तक नही है। बम्बई मुझ पसन्द है तुम मुझे पसन्द हो इन बाता का मेरे पास कोई तक नहीं।'[89] तथापि दिल्ली के पिछडेपन स इसे कोफ्त होती है। वह एक डेकेडण्ट सिटी है। लाख उसक विकास की याजनाएँ बनती रह वहा बसा म उतनी ही भीड रहेगी। और कनाटप्लेस म उतने ही जेबकतरे।[90]

महानगर म बसन वाला के सामने आवास व आवागमन व भीड भर माहौल म अपनी स्वतन्त्र सत्ता बनाए रखन इत्यादि की अनेक समस्याएँ रहती ह। उनम तालमेल बढाने की चेष्टा के कारण महानगर के व्यक्ति क जीवन का एक सुनिश्चित ढर्रा बन जाता है। उसम उलटफेर हात ही उनका सारा जीवन अस्तव्यस्त हो जाता है। इन उपन्यासा के पुरुष पात्र उन समस्याओ एव तद्विषयक आत्मानुभूतियो को भी सुन्दरता से अभिव्यक्त करते ह।

विजयेश की दृष्टि म बडे शहरा म नौकरी मिल सकती है, सिर छुपान की जगह नही। बडे शहरा की यही मुसीबत है। यहा नौकरी मिल सकती है पर सिर छिपान का टपरिया मिलना मुश्किल है।[91] इसी प्रकार यातायात की कठिनाइयाँ, जुलूस राशन की पक्तियाँ बस के धक्के, खोखला व्यक्तित्व, भीड म एकाकीपन, मुखौटे आदि बात महानगरीय जीवन जीन वाले लोगा की जीवन नियति बन जाती है। इन उपन्यासा के पुरुष पात्र परमजीत मधुकर विजयेश, महिम इन्द्रजीत आदि उन समस्त जीवन स्थितिया के भोक्ता ह और अपन चिन्तन के रूप म कही कही महा नगरीय स्थितिया को एव उनके परिप्रेक्ष्य म निर्मित हाने वाली आचार सहिता को साकार रूप प्रदान करत ह।

नगरो के पुरुष पात्र

इन उपन्यासा मे शहरा की स्थितिया का अधिक विस्तार नही मिला है। यही कारण है कि महानगरा की पीडा स त्रस्त पुरुषो की समता म शहरो के पुरुष पात्रा का चित्रण कम हुआ है। महानगरा की अपेक्षा शहरा म पाई जाने वाली शान्ति सभी के लिए आकषण का कारण बनती है। मधुकर दिल्ली स बगलौर जाता है और उस पसन्द करता है। सचमुच पतीस साल दिल्ली म रहकर मैंने बेकार बर्बाद कर डाला। रहने की जगह तो बँगलूर है।[92] किन्तु अतिविकसित महानगरीय जीवन बोध के अभाव म नगरा के लाग महानगरीय जीवन की नकल करन की चेष्टा म अधकचरी सभ्यता म जीवन यापन करत ह। शहरो म रहकर एक ओर वे आधुनिकता को पकडने की चेष्टा करते है तो दूसरी ओर परम्परित धार्मिक सामाजिक आदर्शों को छोड सकना उनके लिए सम्भव नही हो पाता।

वन्ध्या म सोमजी जब मालती क विरुद्ध अवैध सन्तान का धारण करन का प्रचार

रत है तो वहाँ उसे पर्याप्त समर्थन मिलता है। किन्तु इसी आधार पर वह शहरों के जीवन को पसन्द करता है। 'बड़े शहर में रहना अच्छा रहता है। बनायें म तुम्हें कितनी निरत हुए। बड़े शहरों में वही बात भी छोटी हो जाती है। किसी को किसी की तरफ ध्यान देने की फुरसत नहीं रहती।'[93]

...नी ...माहिल हिन्दू लड़की शनी से विवाह करता है किन्तु वह जानता है कि बड़े शहर ने तो उनकी शादी को भन लिया है लेकिन भोपाल जैसे शहर में ऐसा होना सम्भव नहीं था। दिल्ली और भोपाल में वही अन्तर है जो अकबर और औरंगजेब में था या जो कबीर और पैगम्बर में था। ये लोग हमारी दोस्ती बर्दाश्त कर रहे हैं पर क्या शादी बर्दाश्त करेंगे।'[94] जोग ...र इलाहाबाद को शिक्षा, राजनीति की ही भाँति धर्म के व्यापार केन्द्र के रूप में पाता है। शिक्षा और राजनीति ही नहीं यह शहर धर्म का भी व्यापार केन्द्र था।[95] इस प्रकार शहर के पुरुष पात्र मिली जुली अधकचरी जिन्दगी जीते हैं। महानगरों की तेज तर्रार जिन्दगी को आत्मसात् न कर पाने की विवशता को स्वभाव की तेजी में पूरा करने की चेष्टा करते हैं।

ग्राम्यांचल के पुरुष-पात्र

ग्रामीण प्रदेश के पुरुषों में अशिक्षा, जमीन के लिए झगड़ा करने की प्रवृत्ति, पुरातनता का मोह, जातीय स्वाभिमान, गरीबी एवं अभावों में भी सहजता एवं भोलापन आदि प्रवृत्तियाँ दृष्टिगत होती हैं। लेखिकाओं ने ग्राम्यांचल के पुरुष पात्रों को अधिक स्थान नहीं दिया है तथापि इन गिने पुरुषों के द्वारा उनके उपयुक्त भावों का प्रकाशन ही होता है। इन्हीं भावों के आधार पर ग्रामीण पुरुषों के आचरण के अनेक रूप दृष्टिगत होते हैं। जमीन के प्रति मोह एवं उसके लिए झगड़ा करने की प्रवृत्ति भीगपंख के ठाकुर एवं चौधरी में दृष्टिगत होती है। ठाकुर बाप दादा की जमीन को आसानी से देना नहीं चाहता और उसके लिए झगड़ा करने को उद्यत है। 'पुरखन की जमीन को एक एक टुकड़ा भी मैं खून बहाए बिना काऊ को छुअन नहीं देऊँगो। सुनी है कि तेरन कूं तालाब बनवावगो, सो तेरे लाडले तेरेई खून में न तर तो मैं ठाकुर नइं।'[96] यही विचार ठाकुर और चौधरी के मनमुटाव का कारण बनता है जो क्रमशः पुश्तैनी झगड़े का रूप ले लेता है।

डार से बिछुड़ी में ग्रामीण पुरुषों का जातीय अहं उपन्यास की कथा को मुख्य दिशा प्रदान करता है। वे अपनी बहिन से अत्यधिक प्रेम करते हैं लेकिन जब वह शेखों के घर बैठ जाती है तो जातीय स्वाभिमान के कारण वे भाई ही उसके शत्रु हो जाते हैं। बहिन के प्रति प्रकट रोष को भानजी पर उतारते हैं। भानजी को फूल की तरह रखने वाले मामा उसे पीटने, भूखा रखने, गालियाँ बकने में संकोच नहीं करते।

इस मुह उसका नाम न लू बिटिया, उसी की करनी तुझे भरनी थी। तरे दोना मामू उसे कितना मानते थे, यह लोक जहान जानता है पर वह नासहोनी तो घर भर का मुह काला कर गई।'[97]

ग्रामीण पुरुषो का तीसरा रूप गरीबी और विवशता के बीच भी सहजता और भोलेपन को प्रकट करता है। 'श्मशान चम्पा' का बेनूपद कलाकार इसी कोटि का पुरुष है। 'उस स्नेही दरिद्र ग्रामीण के सरल आतिथ्य ने, चपा की सारी थकान दूर कर दी।'[98] आस्था का सच्चा रूप इसम प्रत्यक्ष है। व्यवहार मे सहज खुलापन और आचरण म शुभ्रता इसे भोले भाले ग्रामीण का प्रतिरूप बना देते है। 'भरवी' का खपा भी ऐसा ही भोलाभाला ग्रामीण है।

ग्राम्याचल के पुरुषो का चौथा रूप अनामा उपन्यास के पुरुषो म दृष्टिगत होता है। पुरातन के प्रति अत्यधिक मोह एव आधुनिक जीवन स्थितियो स समायोजन न कर पाने की भावना का स्फुरण इनमे हुआ है। नायिका के परिवार के पुरुष पात्रो का चिन्तन इसी आधार पर निर्मित हुआ दृष्टिगत होता है। इस प्रकार ग्राम्याचल के पुरुष सख्या म कम होते हुए भी उस परिवेश म पुरुष के आचरण की भूमिका को सबल ढग स चित्रित करते है।

पर्वताचल के पुरुष पात्र

शिवानी के उपन्यासो मे गढवाली लोक जीवन की विस्तृत अभिव्यक्ति हुई है। इनके उपन्यासो के पुरुष पात्र पर्वताचल के पुरुषो के स्वरूप को प्रकट करत ह। इन सभी पात्रो म सस्कारशीलता और प्राचीन परम्परित मान्यताओ के प्रति दृढ आस्था है। अपना समाज और अपन प्रदेश के प्रति विशेष मोह है और सास्कृतिक परम्पराओ के प्रति दृढ आस्था है। इनसे मुक्त होना इनके लिए सहज नही है। 'समाज और रक्त, का सम्बन्ध विकट होता है शिवदत्त, अभी तुम्हार पास साधना की प्रचुरता है तुम्हारा वैभव असीम है पर एक दिन इस राजसी सुख के बीच तुम सहसा अपन देश और अपनी जन्मभूमि के लिए व्याकुल हो उठोगे।'[99] चौदह फेरे' का कनल विदेशी सभ्यता और चाल ढाल को अपनाकर भी अपनी पुत्री को पहाडी अदब कायदे म पूरी तरह अवगत देखना चाहता है। 'एक बार पहाड जाकर पहाडी अदब कायद और समाज स बेटी को परिचित कराना होगा। समाज और आत्मीय स्वजनो स नाता क्या सहज म ही तोडा जा सकता है?[100] रीति रिवाजो का पालन, सस्कार शीलता, रहन सहन की विशिष्टता इत्यादि बातें इस क्षेत्र के पुरुष पात्रो के व्यक्तित्व का अनिवार्य अग बनकर प्रस्फुटित हुइ ह। 'श्मशान चम्पा' क प रामदत्त, चौदह फेरे के दद्दा, 'मायापुरी' के मामा 'कैंजा' के गदादर भट्ट कृष्णकली के रेवतीशरण तिवारी इत्यादि प्राय एक ही पुरुष पात्र के अलग अलग रूप दिखाई

पडते हैं। इनका व्यवहार पश्चात्य देशीय संस्कारों में पगे हुए पुरुषों को सक्षम अभिव्यक्ति देता है।

विदेश गमन किए हुए पुरुष पात्र

इन उपन्यासों में विदेश गमन किए हुए पुरुषों की अभिव्यक्ति भी हुई है जिनकी जीवन दृष्टि आचार विचार निजी मान्यताएँ विदेशी सभ्यता और संस्कृति के प्रभाव से कहीं परिवर्तित हुई है तो कहीं उन पर किसी प्रकार का असर नहीं हुआ है। इस लिए इन पुरुष पात्रों को दो रूपों में देखा जा सकता है। विदेश जाकर लौटे हुए पुरुष पात्रों का पहला वर्ग उन पुरुषों का है जिनमें किसी भी प्रकार का कोई परिवर्तन नजर नहीं आता है। विदेश प्रवास से पूर्व और पश्चात् का उनका आचरण एक सा है। कृष्णवन्ती का प्रवीर 'मायापुरी' का सतीश 'मुग्धा' का मृत्युंजय, 'अपराधिनी' का दानियल इसी कोटि के पुरुष पात्र हैं जिन पर विदेशी प्रवास का कोई विशेष प्रभाव परिलक्षित नहीं होता।

विदेश गमन कर लौटे हुए पुरुष पात्रों का दूसरा वर्ग उन पुरुषों का है जिन पर विदेशी प्रवास का प्रभाव परिलक्षित होता है। सर्वप्रथम उनके समक्ष दो विपरीत संस्कृतियों में अपने आपको खपाने की समस्या आती है। 'एकोणी नहीं राधिका' का मनीष ऐसे व्यक्ति की मन स्थिति को विश्लेषित करते हुए कहता है कि ऐसी स्थिति में पड़ा हुआ व्यक्ति 'रिवर्स कल्चरल शाक' से ग्रस्त रहता है। जब हम अपना देश छोड़कर बाहर जाते हैं तो पहले छह महीने हम एक कल्चरल शाक के दौरान बिताते हैं जबकि हर कदम पर हमें अपना देश, अपनी संस्कृति ऊँची दिखायी देती है। फिर हम उस देश में रहने के आदी हो जाते हैं। दो साल ढाई साल उस नये देश में रहकर उसके रीति रिवाज के आदी होकर हम अपने देश वापस आते हैं, तो हमें एक धक्का दुबारा लगता है। रिवर्स कल्चरल शाक।[101] मनीष यद्यपि इस शाक को झेलने के लिए पहले से तैयार होकर लौटता है तथापि यहाँ की स्थितियों में अपने को दुबारा एडजस्ट करने में उसे कठिनाई अवश्य महसूस होती है। और अब यह उसका अपना देश था, पर कहाँ थे वे लोग क्या मनीष प्रवीण किस और वह स्वयं, किसी भी प्रकार अपने देश का प्रतिनिधित्व करते थे? राधिका को लगा कि जैसे वे पुतले हैं और एक विशेष प्रकार के आचरण करने के आदी हो गये हैं।[10-] प्रवीण पूरी तरह विदेशी सभ्यता में रंग जाता है और यहाँ के रहन सहन का ही नहीं भाषा तक को भूल जाता है।

विदेश में लौटे हुए योग्य व्यक्तियों में अपनी योग्यता के अनुरूप सेवा के अवसर इस देश में न मिलने की कुण्ठा भी है। मनीष की यही कुण्ठा है। दिवाकर में यह कुण्ठा क्षोभ के माध्यम से प्रकट हुई है। 'दिवाकर से सावधान रहना राधिका' वे असन्तुष्ट

भारतीय सघ के प्रधान है।'[103] योग्यता रखते हुए भी अपने आपको उपहास्यास्पद स्थिति मे पाकर वह विचित्र दशा मे पडा हुआ पाता है लेकिन राष्ट्रीयता के मोह के कारण इस देश को छोड नही पाता। 'मेरी बीबी कहती है कि हम अपने देश के लिए त्याग करना चाहिए। हमे अपने देश मे ही रहना चाहिए, अपने बच्चो का भविष्य देखना चाहिए। पर मैं पूछता हूँ कि मेरे देश मे मेरे लिए क्या है?'[104] इस प्रकार विदेशी प्रवास से लौटे हुए ये पात्र परिवर्तित मन स्थितिया को प्रस्तुत करते हैं और ऐसी स्थिति म कुण्ठित होने वाले या अपनी पहचान को भूल जाने वाले पुरुष पात्रा का सच्चा प्रतिनिधित्व करते है।

विदेशी पुरुष-पात्र

इन उपन्यासा के विदेशी पुरुष पात्रा के आचरण का स्वरूप भारतीय परिवेश म पल पात्रा के आचरण से सर्वथा भिन्न है। इनमे 'रुकोगी नही राधिका' का डैन और राडिनी, 'नयना' का अग्रेज कलेक्टर पीयसन, 'कृष्णकली' म पर्यटक रूप म आए हुए विदेशी पुरुष पात्र प्रमुख ह। डैन अधेड आयु का है और जीवन की विविध स्थितिया का विश्लेषण सम्बन्धा के सामाजिक सदर्भ से न करके वैयक्तिक धरातल पर करता है। व्यष्टिचेतना को सम्मान देने वाला यह पात्र आत्मविचारो को तर्क के आधार पर प्रस्तुत करता है। पत्नी को छोडकर अलग रहता है और राधिका को अपनाता है। विवाह को एक कान्ट्रेक्ट समझता है जिसके द्वारा पति पत्नी अपनी अपनी आकाक्षाओ की पूर्ति देखना चाहते है। राधिका, तुम मुझमे अपना पिता ढूढ रही थी, वही पिता जिसे त्रास देने के लिए तुम मेरे साथ चली आयी थी। पर मैंने तुम्हारे पिता की जगह स्थापित नही होना चाहा, मैं तो स्वतत्र व्यक्तित्व हूँ। और मैं तुममे अपना यौवन ढूढ रहा था। पर शायद हम दोना ही सफल नही हुए।'[105] इसलिए मन न मिलने पर राधिका को अमेरिका म एकाकी छोड देन म इसे किसी प्रकार का सकोच नही होता है।

इन विदेशी पुरुषो म सेक्स के सम्बन्ध मे उन्मुक्त व्यवहार करने की प्रवृत्ति है। पत्नी स बिछुड कर डैन, राधिका को अपनाता है पर एक वर्ष के भीतर भीतर ही उसे छोडकर अन्यत्र चला जाता है। 'नयना' का पीयसन पत्नी से दूर रहन पर हरिजन बालिका नयना से यौन सम्बन्ध स्थापित करता है। 'कृष्णकली' के विदेशी पर्यटक सेक्स को जीवन की कोई बाधा नही मानत। इतने उन्मुक्त की स्त्री या पुरुष के अन्तर को नकारते हुए यौन सम्बन्ध स्थापित करते हैं। तुमसे कहा न मैं। हमार दल म सेक्स इज नो बार। न हमम कोई स्त्री न पुरुष।[106]

भारतीय सस्कृति एव भारतीया के रहन सहन, जीवन दर्शन के सम्बन्ध म दो मान्यताएँ दो रूपा म प्रकट हुई हैं। पहली मान्यता के अतगत इनम उन्हें

अरुचि और घृणा का भाव है। ये विदेशी पुरुष अपनी सांस्कृतिक स्थितियों को अच्छा मानते हुए भारतीयता को नकारते हैं। 'रुकोगी नहीं राधिका' के डैनियल की दृष्टि में भारत एक गरीब देश है, गंदगी का ढेर, जहाँ नैतिकता नाम की कोई चीज नहीं है। 'और भारतीय नैतिकता, आप बुरा न मानिए, सड़क पर चलना मुश्किल।'[107] पाश्चात्य एवं भारतीय संस्कृति की तुलना करते हुए कहता है 'हमारी सभ्यता में स्त्री पुरुष की मैत्री बहुत नैसर्गिक, अकृत्रिम समझी जाती है। यह जीवन साथी चुनने की एक पद्धति है। पर वही काम करने के लिए यहाँ दूसरी कटगरी में आ जाता है। और फिर हम लोग अपने आत्मिक ज्ञान को बघारते नहीं। ठीक है हम भौतिकवादी हैं और उसे स्वीकार करते हैं।[108] पीयरसन हिन्दुस्तानी लोगों की अस्पृश्यता की प्रवृत्ति से घृणा करता है और इस आधार पर उनके आचरण को हेय समझता है। ये हिन्दुस्तानी लोग भी अजीब होते हैं। समझते हैं सारी दुनिया के लोग इनकी मान्यताओं से प्रभावित हैं।'[109]

'रुकोगी नहीं राधिका' का डैन भारतीय परिवेश में स्त्री पुरुष के नैसर्गिक प्रेम के लिए अनुकूल वातावरण के अभाव की प्रवृत्ति का विरोध करता है। राधिका जब अपने पिता के पुनर्विवाह को अजूबे के रूप में लेती है तो यह भारतीय परिवेश की इस कमी का उद्घाटन करता है। 'इसका कारण तुम्हारा व्यक्तित्व और परिवेश है राधिका। माँ के मरने के बाद तुम्हारा पिता के प्रति लगाव बहुत कुछ एबनामल हो गया। यदि भारतीय परिवेश में तुम्हें प्रारम्भ से ही युवा मित्र बनाने की सुविधा होती तो ऐसा न होता। तब तुम्हें प्रसन्नता होती कि तुम्हारे पिता ने जीवन में फिर सुख पाया।[110]

दूसरी कोटि के विदेशियों में भारतीय भोजन, रीति रिवाज, मदिरा, संस्कारों के प्रति विशिष्ट आकर्षण का भाव परिलक्षित होता है। विदेशी पुरुषों के इस आकर्षण के भाव को भारत में भ्रमणार्थ आए 'कृष्णाकली' के पर्यटकों के माध्यम से सुन्दरता से प्रस्तुत किया गया है। इनमें योग का आकर्षण है और साधुओं के ससंग में चरस गाँजे का दम भी ये भर लेते हैं। 'ये विदेशी एक से एक लक्षाधिपतियों के सम्य पुत्र मानवीय सभ्यता के सर्वोच्च शिखर पर पहुँचकर फिर किस वहशी सभ्यता के आदिम स्रोत को छूने स्वेच्छा से अनजान घाटियों की ओर लुढ़कते जा रहे थे।[111] भारतीय भोजन का आकर्षण भी इन्हें है। सरदारजी के गन्दे, सस्ते होटल में बड़े बड़े अल्युमीनियम के पतीलों में घोटे जा रहे सुस्वादु भोजन की सुगन्ध लपटें इन्हें अपनी ओर खींच ले जाती हैं। टिपिकल इण्डियन करी एण्ड टिपिकल इण्डियन चैप कहकर मुस्कुराती मंडली जम गई।[112] श्मशान में जलती चिताओं को देखना इनके लिए पिकनिक मनाने जैसा रोमांचक व आनन्ददायक है।

इस प्रकार क्षत्रीय सस्कार क आधार पर पुरुषो क अनेक रूप इन उपयासा म चित्रित हुए हैं। उनका आचरण क्षेत्र विशेष के सस्कारो से सवलित दिखाई पडता है। महानगर के पात्रो म वहाँ की जीवन स्थितिया के बोध स भी अधिक ऐस दो महानगरा की तुलना का भाव अधिक है। महानगर की विविध समस्याआ म स आवास एव मानवीय अस्तित्व की चेतना के बोध का भाव अवश्य इन उपयासा म चित्रित हुआ है। अधिकाश पात्रा को दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता से सम्बद्ध करक प्रस्तुत किया गया है। वहा की जीवन स्थितियो के भोक्ता के रूप म उनका चित्रण विस्तारपूर्वक नही हुआ है। नगरा के पुरुषो की सख्या कम है फिर भी महानगरा की समता म वहा की शान्ति तथा सस्कारा क साथ जुडे रहन का भाव इस दृष्टि स अधिक विस्तार स वर्णित हुआ है। ग्रामीण पुरुषा की सख्या तो और भी कम है। यह लेखिकाआ क सम्पर्क क्षेत्र की सीमा को सकेतित करता है। इस परिवेश म चित्रित पुरुषा म बाप दादा की जमीन क लिए झगडा करना, जातीयता को प्राथमिकता देना, पुरातनता क प्रति मोह एव गरीबी असहायता म भी भोलेपन को अपनाए रखना इत्यादि विशेषताए देखी जा सकती ह। पर्वताचल के पुरुषा म भारतीय परम्परित सस्कारा के प्रति अ धश्रद्धा का भाव अधिक है। विदेश गमन किए हुए पुरुषो म से कुछ अपरिवर्तित विचारो के रहते हैं तो कुछ म उनकी विचार धारा इतनी बदल जाती है कि वे भारतीयता की पहिचान ही खो देत है। विदेशी पुरुषो म जीवन स्थितिया की भौतिकवादी, यथार्थपरक व्याख्या का भाव, सेक्स क प्रति स्वतन्त्र व्यवहार, भारतीय स्थितिया के प्रति घृणा, उपेक्षा अथवा श्रद्धा का भाव परिलक्षित होता है। इस प्रकार लेखिकाआ के उपयासा के पुरुष पात्रो म क्षेत्रीय सस्कारो क आधार पर आचरण एव चिंतनगत वभिन्य देखा जा सकता है।

सामाजिक वर्गों के आधार पर चित्रित पुरुष पात्र

वग चेतना को एक विशिष्ट सामाजिक प्रक्रिया का स्वरूप प्रदान करने का प्रयास कार्ल मार्क्स न किया। इससे उत्पादन म वृद्धि के साथ वैयक्तिक सम्पत्ति की भावना का प्रसार हुआ जिसके परिणाम स्वरूप वग भावना का विकास हुआ। मार्क्स ने आर्थिक आधारा पर सामाजिक वर्गों को दो रूपा म विभाजित कर प्रस्तुत किया बोर्जुआ’(शोषक वग) और ‘प्रोलिटेरियेट’ (शोषित वग)। शोषक और शोषिता क वग सघर्ष स ही कालान्तर म तीसरे वग, मध्यवग, का उदय हुआ। आधुनिक काल म सामाजिको को इन्हा तीन वर्गों म विभाजित कर उनके आचरण को प्रस्तुत किया जाता ह। इन उपयासा म भी तीना वर्गों के पुरुष पात्रा म उनकी वग चेतना के दर्शन होते है। फलत सामाजिक वर्गों क आधार पर पुरुषा के तीन रूप इस प्रकार देख जा सकत है।

उच्चवर्ग के पुरुष पात्र

उच्च या आभिजात्य वर्ग के अनेक पुरुष-पात्र इन उपन्यासों में प्रस्तुत हुए हैं। 'सोनाली दी' के जीवन दास, 'स्त्रोगी नहीं राधिका' में राधिका के पापा और भाई, 'मुझे माफ करना' का नायक सेठ, 'मुनी दीदी का पुत्र का रायसाहब, काली लड़की का कमल, 'कृष्णार नी' के राजा गजेन्द्र, विद्युतरंजन और पाण्डेजी, मायापुरी के तिवारी जी, 'श्मशान चम्पा' का सेनगुप्ता 'अमलतास' के महाराजकुमार और हरदेवलाल 'नष्टनीड' के मि. चौधरी, 'लेडीज क्लब' में श्री गढ़ेथिया, 'सागर के मोती' के सेठजी इत्यादि इसी वर्ग के पात्र कहे जा सकते हैं। आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न ये पात्र वैभव और महिमामण्डित जीवन जीते हैं। आचरण की दृष्टि से इनके दो रूप दृष्टिगत होते हैं। उच्चवर्ग के अधिकांश पुरुष पात्र समृद्ध होते हुए भी नायक नहीं बने हैं और सहज सरल जीवन यापन करते हैं। जीवनदास, राधिका के पापा, मि. चौधरी, गढ़ेथिया इत्यादि इसी कोटि के पात्र हैं।

दूसरी कोटि के आभिजात्यवर्गीय पात्र वे पुरुष हैं जिनमें धन का अहंकार, शोषण की वृत्ति और प्रदर्शनप्रियता अधिक है। विद्युतरंजन, गजेन्द्र, पाण्डेजी, तिवारीजी, सेनगुप्ता, महाराजकुमार, रायसाहब, हरदेवलाल, सेठजी इत्यादि इसी कोटि के पात्र हैं। विद्युतरंजन बंगाल की छोटी सी रियासत का राजकुमार है और अपने धन सौंदर्य से सब पर छा जाता है पर शोषण की वृत्ति को छोड़ नहीं पाता। राजा गजेन्द्र, महाराजकुमार आदि भी राजाओं के अहंकार का प्रदर्शन करते हैं। सेनगुप्ता, सेठजी बड़े बड़े उद्योगपति हैं। सुविधाभोगी जीवन यापन करने वाले ये लोग शोषकों के प्रतिरूप बन दृष्टिगत होते हैं। तिवारीजी, पाण्डेजी राजनेताओं के राजसी रूप को प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार उच्चवर्ग के पुरुष पात्रों में वर्गगत अहंकार, सुविधाभोगी जीवन यापन की रुचि इत्यादि प्रवृत्तियाँ दृष्टिगत होती हैं।

मध्यवर्ग के पुरुष पात्र

इन उपन्यासों में से अधिकांश का कथानक मध्यवर्गीय पात्रों की कहानी प्रस्तुत करता है। अतः इनमें मध्यवर्गीय पात्रों का बाहुल्य है। फिर भी मध्यवर्ग की चेतना का प्रत्यक्ष निरूपण इनमें बहुत कम हुआ है। सोनाली दी का इन्द्रजीत इस दृष्टि से प्रतिनिधि पुरुष पात्र कहा जा सकता है। शोषकों के प्रति इसमें विरोध का भाव है। रानू की ओर आकर्षित होते हुए भी उसके वर्गगत संस्कारों का विरोधी है। और यह दम्भ पाले हुए है कि वह श्रमजीवी वर्ग का सदस्य है। 'श्रमजीवी! मैं शाम को दो घण्टे एक प्रकाशक के यहाँ प्रूफ पढ़ता हूँ तो मुझे भोजन मिलता है। कालेज की पढ़ाई चलती है। तुम्हारे पास बैठकर जो काफी पी रहा हूँ, इस अमीरी का अधिकारी मैं नहीं हूँ।'[113] पूँजीवादी वर्ग के प्रति उपेक्षा का भाव भी इसमें है और वह रानू को इसी आधार पर अपमानित भी करता है। 'मैं जानता हूँ तुम मेरे वर्ग की

नहीं हो तुम्हारा सौंदय पूजीवादी समाज का है।'[114] व्यक्ति के आचरण को बुर्जुआ, सवहारा आदि वर्गों म बाटकर उपस्थित करन की प्रवृत्ति भी इस वग के पात्रा म है। 'नरक दर नरक' का विनय इसी आधार पर जोगेन्दर को 'तुम फटी बुर्जुआ हो' कहता है।[115] और 'सोनाली दी' का नील कमल भी इन्द्रजीत का बुर्जुआ घोषित करता है। इन्द्रदा तुम बुर्जुआ हो। रानू दी को देखकर तो बिल्कुल 'बुर्जुआ' बन जान हो। तुम वास्तव म जो हो वही बन जात हो।[116]

ऐसी मध्यवर्गीय चेतना के साथ ही पात्रा म इस वग की विशेषताएँ भी हैं जो उनके आचरण को अनेकरूपता प्रदान करती ह। मध्यवग के पात्रो का पहला रूप, जो अधिक विस्तार से वर्णित हुआ है व्यवस्था एव स्थितियो के प्रति असन्तोष एव तीव्र आक्रोश के रूप मे प्रस्तुत हुआ है। 'उसके हिस्से की धूप' का मधुकर, नरक दर नरक का जोगेन्दर एव उसके मित्र बजनाथ साहिल इत्यादि इसी कोटि क पात्र ह। मधुकर व्यवस्था स जूझकर क्रान्ति का प्रवक्ता का समथक है। दलित वग के उत्थान का स्वप्न देखता है 'आखिर कब तक मजदूर अपना शोषण करवात रहग।'[117] और शोषकों का विरोध करता है। 'श्रमिको का सचालन हम क्या करेंगे व तो आपकी मुट्ठी म हैं, और अवसरवादी राजनीतिज्ञ भी आपके ही चट्टे-बट्टे है।[158] जोगेन्दर और उसके मित्र स्वातन्त्र्योत्तरकालीन भारतीय परिवेश म व्याप्त अव्यवस्था के शिकार है। असन्तोष और कुण्ठा म जीवन जीते हुए सघष की भूमिका निभात हैं।

जोगेन्दर के चिन्तन के द्वारा ही फटी बुर्जुआ और जनवादी लेखको के परस्पर वषम्य को उभारा गया है। इस प्रकार फटी बुर्जुआ चिन्तन की भत्सना की गई है। 'बस मुझे यही समझा दो तुम जनवादी कसे हो और मैं बुर्जुआ कसे? तुम्हारी बीबी की डिलीवरी भी उसी अस्पताल म होती है जिसम मेरी बीबी की, तुमन भी जीवन-बीमा की वही बीस साला पालिसी ले रखी है जो मैंने, तुम्हारे बच्चे भी उसी स्कूल म पढत हैं जिसम रायसाहब हरिमोहन सिंह के तुम्हारे भी घर दीवाली पर लक्ष्मी पूजन होता है, तुम्हारे घर भी बीमारी म शहर का सबसे अच्छा डाक्टर आता है। तुम किस बिन्दु स जनता की आवाज बन जात हो?'[119]

मध्य वग के पात्रा का दूसरा रूप अपनी योग्यता और प्रतिभा का ढिंढोरा पीटने वाले अपने को जीनियस समझने वाले मिथ्याभिमान और अहभाव को पालने वाले पुरुषो मे प्रस्तुत हुआ है। 'बात एक औरत की' का सजय, 'वह तीसरा' का सदीप इसी कोटि के पात्र है। सजय मध्यवर्गीय सस्कारो से ग्रस्त आदर्श पात्र कहा जा सकता है। यह अपने को जीनियस समझता है सस्कारा से घृणा करता है, प्रदशन प्रिय है और घोर अहकारी है। सजय म अह की पराकाष्ठा रही और अह कभी

गीभा से अधिक बढ़कर घमंड और ऊँचे होने की भावना तक जा पहुँचा। उसमें एक अजीब सा अपने बारे में विचार जम गया कि वह असाधारण है, उसमें कोई जीनियस है जो असाधारण काम करवाना चाहता है, जबकि उसकी दृष्टि में उसकी पत्नी बिल्कुल साधारण है और उसे उसके सामने अस्तित्व विहीन रहना ही चाहिए।'[100] मुनीष अहंकार के कारण अपने को सर्वथा योग्य और अपने समक्ष पिता तक को कुछ भी नहीं गिनता है। कहता है 'डैडी वाज ए फैन्यार मैन सार्टिंग। आइ एम गजेस।'[121]

सस्कारों के प्रति प्रतिबद्ध होकर नूतन जीवन स्थितियों में ठीक से समायोजित न कर पाने से कुण्ठित जीवन जीने वाले मध्यवर्ग के पुरुष पात्रों का चित्रण भी इन उपन्यासों में हुआ है। 'कृष्णकली' का प्रवीर 'बेघर' का परमजीत, 'मायापुरी' का सतीश, 'मित्रो मरजानी' का सरदारीलाल इत्यादि इसी कोटि के मध्यवर्गीय पुरुष पात्र हैं। प्रवीर अंग्रेजी में एम ए है लेकिन सस्कारी घर के कारण चोटी और यज्ञोपवीत धारण किए रहता है। सस्कारों में बधकर यह उनका उल्लंघन नहीं करता है और किसी को ऐसा करते देख कुण्ठित भी हो जाता है। दूसरी ओर इसमें प्रदर्शनप्रियता भी है। एम्बेसी में नियुक्त हो जाने पर साधारण वेशभूषा में जाना उसे अपमानजनक महसूस होता है। 'वाह घर के सिले कपड़े पहन, एम्बेसी में चले जा रहे हैं डिप्लोमेट! इतना भी नहीं जानतीं अम्मा कि कोई भी समझदार आदमी बीबी के सिले कपड़े नहीं पहनता।'[102]

मध्यवर्ग के पुरुष पात्रों में अवसरवादिता और स्वार्थी प्रवृत्ति का उद्घाटन 'वह तीसरा' का सदीप 'पतझड़ की आवाजें' का मी के 'रेत की मछली' का शोभन इत्यादि में हुआ है। सदीप नौकरी में अपने प्रमोशन के लिए पत्नी और पार्टियों को माहरा बनाता है। विवाह की सालगिरह की पार्टी के बहाने अवसर को भुना कर उनपर अपना इम्प्रेशन डालना चाहता है। 'रजिता बरसों पूरे स्टाफ को बुलालें तो बहुत अच्छा रहेगा। कम्पनी में कुछ चेंजेज होने वाले हैं। मैं चाहता हूँ कि अपना एक शानदार इम्प्रेशन क्रिएट हो जाय। एक पंथ दो काज हो जायेंगे।[103]

पार्टी के उपरान्त मनोवांछित फल पाने की आशा भी रखता है। 'रजिता इट हैज बीन वेरी सक्सेसफुल। मेरा प्रमोशन निश्चित है।'[1] सी के सच्चा अवसरवादी है। अपने प्रमोशन के लिए मजदूरों का समर्थन कर अधिकारियों को खुश कर लेता है और आगे बढ़कर प्रबन्धतन्त्र का ही एक अंग बन जाता है। शोभन साहित्यिक फायदे प्राप्त करने के लिए अपने साहित्यकार मित्रों को पास बुलाता है और उनके श्रम चिंतन, अध्ययन का लाभ उठाकर उन्हें छोड़ देता है। 'सामान्यत शोभन साहित्यिक

मित्रो से दूर ही रहते थे। हां उन्हें निकट बुलाया जाता था जब शोभन को अपनी महत्त्वाकांक्षा की नई सीढ़ी चढ़नी होती थी।'[105]

इस प्रकार मध्यवर्गीय चेतना को अभिव्यक्ति देने वाले ये पुरुष पात्र वर्गगत वशिष्टय की अप्रत्यक्ष अभिव्यक्ति करते हैं। किन्तु पूरी तरह मध्यवर्गीय भावना को आत्मसात् कर उनके अनुरूप आचरण करने वाला अथवा आचरण को शत प्रतिशत मध्यवर्गीय चेतना से जोड़कर प्रस्तुत करने वाले पात्र का चित्रण इन उपन्यासों में नहीं हुआ है।

निम्नवर्ग के पुरुष पात्र

नारी कृत इन उपन्यासों में निम्नवर्ग के पुरुष पात्र अनुपस्थित हैं। नौकरों के रूप में यत्र तत्र कुछ पुरुष चित्रित हुए हैं। मंजुल भगत के 'अनारो' में ही निम्नवर्ग की स्थिति एवं चारित्रिक विशेषताओं को चित्रित किया गया है। उपन्यास नायिका अनारो के जीवन की संघर्ष गाथा है जिसके दुःख का कारण उसका पति नन्दलाल है। 'चार छः महीने तक पत्नी के साथ रहता है फिर भाग खड़ा होगा। दारू, बोतल गाली गलौज कर्जा उधार सभी कुछ कर करा के भाग लेगा।'[116] स्वयं कमाऊ होते हुए भी पत्नी को कुछ नहीं देता है। पत्नी के श्रम का शोषण करता है। पराई औरतों और दारू पर पैसे खर्च करता है, बच्चों के लालन पालन में सहायक नहीं बनता है।

सामूहिक दृष्टि से निम्नवर्ग के पात्रों में मालिकों के प्रति आक्रोश का भाव है। उनमें अपने श्रम का शोषण किए जाने का बोध है। अवसर मिलने पर मालिक के प्रति हिंसक आचरण करने के लिए भी तैयार हो जाते हैं। 'आजकल के मजदूर तो मालिक को हमेशा ही पिस्तौल सा ममतन का तैयार बैठे रहते हैं।'[127] लेकिन अपनी दलितावस्था से ऊपर उठने के लिए शराब जुआ, पर स्त्री गमन, अशिक्षा जनित निम्न अवस्था से ऊपर उठने का उपक्रम ये पात्र नहीं करते हैं।

इस प्रकार सामाजिक वर्गों के आधार पर इन उपन्यासों में पुरुष-पात्रों का चित्रण अनेक रूपों में हुआ है। इनमें मध्यवर्ग के पुरुष पात्रों का बाहुल्य है। उनमें वर्गगत चेतना की उपस्थिति स्पष्ट रूप में दृष्टिगत होती है किन्तु उच्च एवं निम्नवर्ग के पुरुष पात्रों में वर्गगत विशेषता का सामान्यतः अभाव है। उच्चवर्ग के पुरुष-पात्र फिर भी यत्र तत्र देखे जा सकते हैं किन्तु निम्नवर्ग के पात्रों का चित्रण लेखिकाओं ने नहीं किया है। इसका यह कारण मिलता है कि लेखिकाओं का सम्पर्क क्षेत्र मध्यवर्ग या उच्चवर्ग ही है। उनसे अलग क्षेत्र के मानव वर्गों से सम्पर्क कर उनका अनुभव पूरा है। ये ठान पड़े निम्न लोगों का ही देखा है गरीबी और अभाव से जूझते मजदूरों दलितवर्ग के मनुष्यों का नहीं देखा है।

सदंभ

1 ठकोगी नहीं राधिका–पृ 37
2 वही–पृ 99
3 नरक दर नरक–पृ 26
4 वही–पृ 26
5 वही–पृ 11
6 सोनासी दी–पृ 9
7 जावें
8 बचपन खम्भे लाल दीवारें पृ 40
9 मित्रो मरजानी–पृ 16
10 मुझे माफ करना–पृ 12
11 वही–पृ 12
12 रति विलाप–पृ 17
13 मित्रो मरजानी–पृ 16
14 वही–पृ 40
15 कृष्णकली–पृ 83
16 सागरपाखी–पृ 36
17 मुझे माफ करना–पृ 160
18 ज्वालामुखी के गर्भ में (धर्मयुग 16 मार्च 1975 पृ 11)
19 बात एक औरत की पृ 31
20 वही–पृ 25
21 जुड़ हुए पृष्ठ–पृ 48
22 कृष्णकली–पृ 34
23 मित्रो मरजानी–पृ 92
24 बात एक औरत की–पृ 69
25 मनारो (साप्ता हिंदु 5 सितम्बर 1976 पृ 18)
26 कृष्णकली–पृ 35
27 नरक दर नरक–पृ 180
28 उसके हिस्से की धूप–पृ 54
29 मुझे माफ करना–पृ 76
30 आपका बंटी–पृ 122
31 वह तीसरा (धर्मयुग 28 दिस 1975 पृ 9)
32 नपना पृ 107
33 बात एक औरत की–पृ 76
34 मोहल्ले की बुआ–पृ 46
35 रेत की मछली–पृ 193
36 भरवी पृ 54

37 रेत की मछली–पृ 194
38 टूटा हुआ इन्द्रधनुष–पृ 16
39 मायापुरी–पृ 152
40 बेघर–प 195
41 लेडीज क्लब (टूटा हुआ इन्द्रधनुष)–पृ 90
42 सागर पाखी–प 19
43 काली लड़की प 127
44 ज्वालामुखी के गर्भ म (धमयुग 16 माच 1975–प 11)
45 सूखी नदी का पुल–पृ 31
46 नावें पृ 94
47 वही प 87
48 रुकोगी नहा राधिका–पृ 55
49 सोनाली दी–प 113
50 कृष्णकली–प 33
51 वही पृ 35
52 रथ्या पृ 39
53 दूरियाँ पृ 35
54 पचपन खम्भे लाल दीवारें–पृ 50
55 वही पृ 56
56 वही पृ 56
57 सूखी नदी का पुल–पृ 169
58 वही–पृ 169
59 प्रिया पृ 138
60 वही–पृ 140
61 ह नी पृ 172
62 मायापुरी–पृ 172
63 प्रिया–पृ 107
64 वही–पृ 129
65 कृष्णकली–पृ 20
66 वही–पृ 66
67 पतझड़ की आवाजें पृ 108
68 वही–प 110
69 मोम के मोती–पृ 134
70 वही पृ 174
71 उसके हिस्से की धूप पृ 134
72 बेघर पृ 42
73 नरक दर नरक–पृ 46
74 रुकोगी नहा राधिका–पृ 115

75 सूरजमुखी अंधेरे के–पृ 24
76 वही पृ 24
77 पानी की दीवार पृ 66
78 नावें पृ 85
79 उसके हिस्से की धूप पृ 119
80 भरथी–पृ 27
81 कृष्णकली–पृ 88
[redacted] श्मशान चम्पा–पृ 11
83 वही पृ 143
84 मुझे माफ करना–पृ 128
85 नयना–पृ 11
86 प्रिया–पृ 140
87 बेघर–पृ 14
88 वही–पृ 22
89 परत दर परत–प 77
90 वही
91 नावें पृ 60
92 उसके हिस्से की धूप–पृ 92
93 नावें–पृ 46
94 इन्नी–पृ 7
95 परत दर परत–प 146
96 भोज पत्र–पृ 8
97 डार से बिछुड़ी–प 11
98 श्मशान चम्पा–पृ 13
99 चो'हफरे–पृ 61
100 वही
101 रुकोगी नहा राधिका पृ 123
102 वही प 109
103 वही–पृ 110
104 वही–प 111
105 वही प 41
106 कृष्णकली–प 149
107 रुकोगी नही राधिका–पृ 114
108 वही
109 नयना–प 11
110 रुकोगी नहीं राधिका–प 36
111 कृष्णकली–प 141
112 वही

113 सोनाली दी पृ 78
114 वही
115 नरक दर नरक-पृ 169
116 सोनाली दी-पृ 83
117 उसके हिस्से की धूप पृ 174
118 वही-पृ 118
119 नरक दर नरक पृ 169
120 बात एक औरत की पृ 58
121 वह तीसरा (धर्मयुग 28 सितम्बर 1975-पृ 9)
122 कृष्णकली-पृ 135
123 वह तीसरा (धर्मयुग 28 सित 1975-पृ 9)
124 वही पृ 12
125 रेत की मछली-पृ 146
126 अनारो (साप्ता हिन्दु)
127 श्मशान चम्पा-पृ 62

महिलाओ के उपन्यासो मे पुरुष-व्यक्तित्व

महिलाओ के उपन्यासों मे पुरुष व्यक्तित्व

महिलाओ ने उपन्यासा म चित्रित पुरुष पात्रों म विविध स्वरूपा को देख लन क उपरान्त उनके आधार पर अब पुरुष व्यक्तित्व को निर्धारित किया जा सकता है। पुरुषो के व्यक्तित्व का सर्वांगीण चित्रण करन क लिए उनके व्यक्तित्व के शारीरिक या बाह्य व्यक्तित्व एव मानसिक या आतरिक व्यक्तित्व दोना स्वरूपा को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। तदुपरान्त उनके चिन्तन की अन्यान्य दिशाओ का उल्लेख करत हुए महिलाओ के उपन्यासा म पुरुष के व्यक्तित्व की समग्र छवि का साकार करने का प्रयास किया गया है।

पुरुषों का बाह्य व्यक्तित्व

व्यक्तित्व के शारीरिक पक्ष का प्रकट करने के लिए उनका सौंदय, रुचियाँ, वेशभूषा आदि महत्वपूण होते है। समाज मे पुरुष व्यक्तित्व का प्रारम्भिक परिचय इन्ही बाता से होता है। इन्ह व्यक्तित्व के बाह्य पक्ष कहा जा सकता है। महिलाओ ने अपने उपन्यासा म पुरुष व्यक्तित्व निर्धारण म यद्यपि शारीरिक पक्ष की उपेक्षा की है। तथापि उसके सौंदय, वेशभूषा शिष्टाचार का प्रसगवश यत्र तत्र अवश्य चित्रित किया गया है। उन्ही के आधार पर यहा पुरुषा के व्यक्तित्व के इस पक्ष का विश्लेषण किया गया है।

सौंदय

इन उपन्यासा म जहाँ भी पुरुष पात्रो की चर्चा हुई है वहाँ उनके सौंदय का प्रसग किसी न किसी रूप मे अवश्य प्रकट हुआ है। लेखिकाओ न सामान्यत पुरुषा क सुदशन रूप की ही चर्चा की है। सुन्दर पुरुष को चित्रित करते हुए लखिकाओ ने माना पुरुष सान्द्य के प्रति आत्मरुचिया का प्रदशन किया है। 'कृष्णकली' का प्रवीर सौंदय का धनी है। 'क्या अकड म तने क धे थे और धूप का चश्मा लगाए पूरा इतालवी टूरिस्ट लग रहा था पट्ठा।'[1] नायिका कली उसके सौंदय को देख कर एव डिप्लोमेट के रूप म अफगानिस्तान मे उसकी नियुक्ति के कारण उस काबुलीवाला के नाम से सम्बोधित करती है। मायापुरी का मतीश भी सुन्दरता की प्रतिमूर्ति है। आयत स्कध प्रशान्त ललाट और गौरवपूण मुखश्री पर कानवोकेशन म उपस्थित नवयुवतियाँ रीझ जाती हैं और उसके सौंदय की बोली बोलने लगती हैं।[2]

कैंजा' का सुरेशभट्ट इतना सुन्दर है कि न चाहते हुए भी नायिका आदि की दृष्टि उस नासपीटे की ओर उठ जाती है।[3] 'विपक्न्या' का नायक इतना सुन्दर है कि उसकी सलोनी छवि नायिका के हृदय कक्ष मे गोदने सी ही उभर आती है और जिसकी स्याही वह खाल खीचने पर भी मिटा नही सकी थी।[4] झिलमिलाते प्रकाश म उसके सौंदय की नई से नई परतें खुलती जाती ह। उसके सौंदय से प्रभावित नायिका कहती है 'सुन्दर चेहरे वा मैं कभी नही भूलती। उस पर वह चेहरा तो लाखा मे एक था। लगता था इस किशोरी के से कमनीय कपोलो ने अभी किसी ब्लेड का स्पर्श भी नही किया है, सुतवा नाक के नीचे उसके रसीले अधर।'[5] इस प्रकार शिवानी के उपन्यासो के पुरुष पात्र नारी पात्रो के समान ही अपूर्व सौंदय को धारण करने वाले है।

अन्य लेखिकाओ ने भी पुरुषो का सुदर्शन रूप ही उपन्यासो म चित्रित किया है। 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' का नील प्रथम दशन मे ही सौंदय की अमिट छाप नायिका के मन पर अंकित कर देता है। पानी की दीवार' का दिलीप, 'रुकोगी नही राधिका' का मनीष भी ऐसे ही सुदर्शन पुरुष है।

शारीरिक सघटन की दृष्टि से भी पुरुष सम्पन्न हैं। वयर' का नील पजाबी डील-डौल के कारण गुजराती पुरुषो की अपेक्षा सजीवनी को अधिक भा जाता है। 'नरक दर नरक' का जोगेन्दर भी ऐसे ही व्यक्तित्व का धनी है। 'उसके हिस्से की धूप' का जितेन की शारीरिक बनावट भी मनीषा को भा जाती है। 'प्रिया' का अरुण भी ऐसे ही आकषक शारीरिक सौंदय को धारण करने वाला है।

पुरुषो के लेडीकिलर' रूप की चर्चा भी यत्र तत्र हुई है। 'कैंजा का सुरेश भट्ट, 'ज्वालामुखी के गम म' के मौसाजी ऐसे ही सौंदय के धनी पुरुष ह। सुरेश भट्ट सौन्दय और डीलडौल से लेडीकिलर लगता है। 'जिसे अग्रेजी मे 'लेडी किलर' कहते ह वही था सुरेश भट्ट। उस कद्दावर पहाडी जवान का रग कुमाऊँ के शाहो का और ऊँचा कद वहाँ के क्षत्रियो का था।[6] उसके सौंदय का आतक गाव की बहू बेटियो म भर-भभी से कुछ भी कम वर्णित नही है। मौसाजी भी ऐसे ही सौंदय के धनी हैं। 'यू ना ही इज ए लेडी किलर।'[7] इस प्रकार सौंदय के धनी य पुरुष उस कोटि के पुरुषो म रखे जा सकते है जिनके लिए 'श्मशान चम्पा' म कहा गया है कि 'कुछ पुरुष [illegible] होते है बोज्यू जिन्हे देखकर कौन सी लडकियाँ नहीं भटकतीं, समझीं।[8]

कुरूप पुरुषो का चित्रण इन उपन्यासो म कम हुआ है। [illegible]
कृष्णकली' का गजेन्द्र 'निर्झरिणी और पत्थर' [illegible]
पात्र इन उपन्यासो म चित्रित हुए है। [illegible]
उसके विरूप सौन्दर्य के कारण भी [illegible]

[illegible]

है।[9] दो पुत्रियो के जन्म के बाद वह पुत्र न होने पर भी सिर्फ इसलिए आपरेशन करवा लेती है कि वह एक और नहुन गड को पृथ्वी पर नही लाना चाहती थी।[10] राजा गजेन्द्र चनल बुन्देलखण्डी अकेला (सुअर) सा ही हिंस्र, बदशक्ल, चौकोर व्यक्तित्व का धनी है।[11] उसके आचरण को देखकर प्रवीर सोचता है यह व्यक्ति तन का ही नही मन का भी काला है।[12] भयावह भालू से रोयेदार शरीर वाला गजेन्द्र किसी भी कोण से सुन्दर नही है। 'निर्झरिणी और पत्थर' का नौकर दत्याकार है। आकृति से वह वन मानुष की तरह दिखायी पडता है।[13]

इन उपन्यासो म लेखिकाओ के वे प्रयास भी दिखाई देते हैं जिनम पत्नी के द्वारा पति की शारीरिक न्यूनताओ को भी सुन्दरता के रूप मे परिगणित किया जाता रहा है। भारत मे प्राचीन काल से ही नारियाँ पति को परमेश्वर की तरह मानती है अत अपने पति के शरीर की बनावट के दोषो को भी वे बलात् गुण रूप म ही देखती है। मन को झूठा तोष देने का यह भाव इन उपन्यासो की नायिकाओ म भी परिलक्षित होता है।

'वह तीसरा' उपन्यास की नायिका रजिता अपने पति की सौदर्यहीनता को बलात् दृष्टि ओट मे करते हुए उसे गुण रूप म देखने की चेष्टा करती है। मैंने कनखियो से सदीप को देखा—सदीप की आखें बडी नही थी, किन्तु मुझे लगा पुरुष की आँखें ऐसी ही होनी चाहिए। सदीप के दाँत ऊबड खाबड थे मैंने सोचा बेतरतीब दाँतो मे भी अपना एक सौदर्य होता है। सदीप गोरे नही थे पर कृष्ण भी तो काले थे। म राधिका सी विभोर हो गयी थी।[14] राधिका सी आत्म विभोरता भारतीय नारी की सनातन समझौतापरस्ती की भावना को प्रकट करता है।

'उसके हिस्से की धूप' की प्रबुद्ध नायिका मनीषा भी जितेन की शारीरिक कमजोरियो को छुपाने के लिए अपने आपको भुठलावे म रखती है। 'वह उसकी ओर पीठ किए खडा था। लम्बी पतली टाँगो पर प्राचीर के समान तना खडा उसका सावला शरीर उसे मुग्ध किये ले रहा था। अजीब बात यह थी कि हल्के गोलाई लिये हुए उसके कन्धे दिखाई देने पर भी, चित्र खण्डित नही होता था।'[15]

इस प्रकार इन उपन्यासो के पुरुष पात्र सामान्यत शारीरिक सौदय के धनी ह। लेखिकाओ ने अपने नायको को अतिरजनापूर्ण सौदय का धनी वर्णित किया है। पुरुष का यह सौदय 'लडीकिलर' के रूप मे नारी पात्रो को न केवल गहराई स प्रभावित करता है बल्कि उनकी चेतना म हर क्षण समाया रहता है। यह पुरुष के शारीरिक व्यक्तित्व के प्रति महिलाओ की धारणाओ को सुन्दरता स प्रकट करता है। कुरूप सौदय वाले पुरुषो का उपन्यासो म अभाव है। इसी प्रकार पति के सौंदय मे जहाँ कही कुछ कमियाँ नजर आती हैं। वहाँ नायिकाएँ आत्मतोषी तर्कों के द्वारा

या तो उसे नजरअंदाज करने की चेष्टा करती है, अथवा उस कुरूपता को ही सौंदर्य के उपादान के रूप में मानने लगती हैं।

शिष्टाचार

मनोविज्ञान मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्धारण करने के लिए व्यक्ति के सामाजिक आचरण को विशेष महत्व देता है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक मन के अनुसार 'व्यक्तित्व के समग्र पक्षों में सामाजिक पक्ष ही सदैव प्रधान रहता है।[16] सामाजिक आचरण के अंतर्गत दूसरों के साथ व्यक्ति का व्यवहार दूसरों के कृत अकृत के प्रति कोपशीलता, वेशभूषा, नैतिकता और सदाचार इत्यादि महत्त्वपूर्ण होते हैं। मन के ही अनुसार 'विज्ञान की ठंडी अमूर्त शब्दावली में आपका व्यक्तित्व जो भी हो, दूसरों के निकट वह आपका सामाजिक रूप है सामाजिक सम्बन्धों में आपकी भूमिका (रोल) है।'[17] समाज में भद्रता का व्यवहार करने पर जहाँ व्यक्ति का आचरण सराहा जाता है वहीं अभद्रता के कारण निंदित भी किया जाता है। इन उपन्यासों के प्रायः सभी पुरुष पात्र सामान्यतः सामाजिक शिष्टाचारों का भली प्रकार से पालन करते हैं। सामाजिक दृष्टि से उनकी भूमिका निर्दोष ही कही जा सकती है।

पचपन खम्भे लाल दीवारें का नील अपने शिष्ट, सौम्य आचरण से सबको प्रभावित करता है। 'टूटा हुआ इन्द्र धनुष' का प्रभात 'एक सुलझा हुआ, सही व्यक्तित्व, ग्रन्थि विहीन, कुंठा मुक्त और सरल व्यक्ति है जो अपने सहज आचरण से सबको प्रभावित करता है। उसने पत्नी के मित्र मनोप से परिचय होने पर स्वाभाविकता से बोलना चालना आरम्भ कर दिया था। काम, दफ्तर, इधर उधर की सार्वजनिक बातें। मनोप ने जाना इस निष्कलुष व्यक्ति का स्पष्ट चिन्तन इसी निष्कर्ष पर पहुँचा है कि जीवन एक बहुत ही सरलता से जीने की वस्तु है।[18]

'एकाकी नहीं राधिका' का अक्षय, 'अपना घर' का दानिएल, 'नरक दर नरक' का जागन्दर, उसके हिस्से की धूप' का जितन इत्यादि सामाजिक शिष्टाचार का सहज पालन करते हैं और उसे अपने आचरण का अनिवार्य अंग बनाए हुए हैं।

पुरुषों के अशिष्ट आचरण का चित्रण भी इन उपन्यासों में हुआ है। बुजुर्गों एवं पूज्यों के प्रति अभद्रता का प्रदर्शन करने में ये संकोच नहीं करते। 'बीरान रास्ते और झरना' का रजत अपने चाचा के प्रति अशिष्टता को खुले शब्दों में प्रकट करता है। उनके प्रति पूज्य भाव को स्थान नहीं देता। 'आपकी बंटी' का बंटी भी माँ के दूसरे पति डॉ॰ जोशी के प्रति सहज आचरण नहीं करता है।

पारिवारिक मर्यादाओं का ठीक से पालन न करने वाले पुरुषों का चित्रण भी इन उपन्यासों में हुआ है। 'कृष्णकली' का दामोदर ससुराल में शराब पीकर आता है, साले सालियों से अभद्रता से पेश आता है। पत्नी से मारपीट करता है और अशिष्टता

से अपना अधिकार प्रकट करते हुए कहता है 'मैं इस घर का दामाद हूँ नौकर नहीं।'[19] उसका अभद्र आचरण सारे परिवार की शांति को भंग कर सभी के मन मे विष घोल जाता है। इसी उपन्यास का गजेन्द्र भी अशिष्ट आचरण करने म सकोच नहीं करता। 'कुन्ती को मा माँ पुकारता वह क्रूर नरव्याघ्र की सी जिस दृष्टि से उसे देख रहा था, वह निश्चय ही स्नेही पुत्र की नही थी। कभी वह क्षुधातुर दृष्टि उसके नीचे तक खुले गले पर निबद्ध होती, कभी आकर्षक नितम्बो पर झूल रही करधनी पर।'[20] भोजन की मेज पर तो गजेन्द्र मानो अपना असली रूप प्रकट कर देता है। 'यह चिक्कुर सा महादानव बिना हाथ मुह धोये टाँग फलाकर, गृह की माता पुत्री के सम्मुख ही जिस निलज्जता से पडा जुगाली कर रहा था वह देखकर ही उसे घृणा होने लगी।'[21]

इन उपन्यासो म गुरुजना के प्रति अभद्रता स पेश आने वाले पुरुषो के दशन भी होते है। 'नरक दर नरक' मे नायिका के अध्यापक पिता को उनके ही छात्र उनकी आदशवादिता से असन्तुष्ट होकर उन्ह लाठी से पीटने म भी सकोच नही करते। इसी उपन्यास मे छात्रा द्वारा प्राध्यापका के साथ अभद्रता करने का सकेत भी मिलते ह। मेडिया कालेज के छात्र केन्टीन मे तोड फोड करते हैं। प्रोफेसर देशमुख जब उन्ह रोकने की चेष्टा करत हैं तो वे उनका भी चाय का प्याला जमीन पर पटक दत हैं। उनके द्वारा आयडेन्टिटी काड माँगने पर एक छात्र फहडता से हँसत हुए कहता है 'आय डिडन्ट ब्रू इट सर।'[22]

महिलाओ के साथ सामाजिक शिष्टाचार को न निभाए जान का वणन अधिक हुआ है। मोहल्ले की बुआ का मोहन पत्नी को पीटता है, उसे गालियाँ देता है। बुआ जब बीच बचाव करती है तो उनके साथ भी शिष्ट व्यवहार नहीं करता। कृष्णकली का प्रवीर इतना रूखा है कि वह कृष्णकली के प्रति सामान्य शिष्टाचार का निर्वाह भी नही कर पाता। कली महसूस करती है इस व्यक्ति को इसकी अभद्रता का समुचित दण्ड देना ही होगा। 'कॉमन कर्टिसी का भी तो एक महत्व होता है। देख रहा है कि वह पदल चली जा रही है, पर फिर भी झूठे मुह म भी एक बार लिफ्ट देने का भद्र पुरुषोचित प्रस्ताव नही रख सकता था? ऐसी नम्र मिष्टभाषी अम्मा का पुत्र ऐसा रूखा कसे जन्मा?'[23] प्रवीर के ऐसे रूखे आचरण से ही क्षुब्ध होकर कली की मित्र भी कहती है 'ब्लास्ट हिम, क्या इन्ही के साथ तू रहती है कली! बाप रे बाप, इसस तो कलकत्ते के चिडियाघर के शेर-पिंजरे म रहन क्या नही चली जाती! क्या करते हैं य हजरत? समझते तो अपने को बहुत कुछ ह।'[24] 'पानी की दीवार' का दिलीप भी एस ही रूखे स्वभाव का व्यक्ति है। नारियो के प्रति अपेक्षित पुरुषोचित भद्रता का प्रदशन नही करता। उसके ऐस ही आचरण

को देखकर नीता अनुभव करती है 'मुझे एक क्षण के लिए अटपटा सा लगा, यह व्यक्ति भी कैसा है ? नारी के साथ ऐसा व्यवहार किया जाता है।'[25]

इन उपन्यासो के पुरुष पात्रो में आचरणगत दोहरापन भी दिखाई देता है। मुखौटा धारण किए हुए व्यक्ति की तरह इनके दो रूप दृष्टिगत होते है। 'बात एक औरत की' का संजय, 'रेत की मछली' का शोभन, 'पतझड की आवाजे' का चन्द्रकान्त, 'सूखी नदी का पुल' का शल इत्यादि दोहरे आचरण कर्त्ता पुरुष है। संजय और शोभन घर मे पत्नी के प्रति क्रूर, अत्याचारी हैं लेकिन समाज मे दिखावे के लिए वे पत्नी को क्लबो सभाओ, सामाजिक कार्यों मे साथ ले जाते है। लोगो के सामने उसे सम्मान देते है और उनके प्रति प्रेम भाव का प्रदर्शन करते हैं। शैल माँ आदि के सामने प्रेम पूर्ण व्यवहार करके पत्नी से उसके मन की बात उगलवा लेता है लेकिन उसके चले जाने पर मा के सामने उन्ही बातो का मजाक उडाता है। पत्नी के द्वारा स्वीकार किए जाने पर कि वह शादी से पूर्व शौकिया तौर पर सिगरेट पीती रही है, वह सबके सामने जबरदस्ती सिगरेट जलाकर उसके मुह मे ठूस देता है, लेकिन उसकी पीठ पीछे मा से कहता है 'छोटी मा, अपनी लाडली बहू देखो। सिगरेट पीती है तो ह्लिस्की भी पीती ही होगी। कल को ।[26] चन्द्रकान्त दोहरा आचरण करने वाले व्यक्ति की सुन्दर प्रतिमूर्ति है। एक ओर वह अधिकारियो से जुडा हुआ है तो दूसरी ओर श्रमिको को इस भ्रान्ति मे रखता है कि वही उनका सच्चा हितैषी है।

साराश

इस प्रकार पुरुषो के शारीरिक व्यक्तित्व का चित्रण करते समय लेखिकाओ ने उसके सुदर्शन रूप पर ही अधिक ध्यान दिया है। उनकी वेशभूषा, सौंदर्य बोध, सामाजिक शिष्टाचार को साधारण ढग से ही वर्णित किया है। उनकी लेखनी से जो पुरुष चित्रित हुआ है वह सुदर्शन रूप को धारण करने वाला है। आचरण की दृष्टि से वह सामान्य शिष्टाचारो का पालन करता है। केवल उनके दोहरे आचरण की लेखिकाओ द्वारा अवमानना की गई है। नारी के प्रति उसके प्रतिकूल रुख के प्रति भी अप्रत्यक्ष विरोध का भाव परिलक्षित होता है।

पुरुषो का आन्तरिक व्यक्तित्व

पुरुषो के बाह्य व्यक्तित्व की अपेक्षा उसका आन्तरिक व्यक्तित्व ही उसकी [illegible] पहिचान होती है। प्रत्येक व्यक्ति की मानसिक बुनावट की भिन्नता ही उसके [illegible] व्यक्तित्व की निजता को निर्धारित [illegible] है। और मानव [illegible] बिन्दुओ मे सामाजिकता, धर्म, [illegible], विज्ञान, कला, [illegible] कितने आयाम दिखाई देते है। [illegible] और वे उसके व्यक्तित्व का [illegible]

[illegible]

पुरुष पात्रा के आन्तरिक व वास्तविक व्यक्तित्व का निर्धारण करने हेतु यहा उनकी उपर्युक्त आधारा पर निर्मित विचारधाराओ, मान्यताओ को परिभाषित करने का प्रयास किया जा रहा है।

सामाजिक धरातल पर पुरुष-चिन्तन का स्वरूप

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उस नाते उसकी अनेक आवश्यकताएँ होती है। उनकी पूर्ति के लिए वह समूह व्यवहार करता है। प्रत्यक समाज इन मौलिक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए कुछ साधन अपना लेता है। उस परिवेश मे जीवन जीते हुए उस समूह की एक इकाई रूप मे विद्यमान मनुष्य की विचारधारा का स्वरूप भी उन्ही साधना पर आश्रित हो जाता है। युग विशेष म मानव का चिन्तन पक्ष उनसे परिचालित होता हुआ व्यक्ति के आचरण के द्वारा प्रकट होता है। महिलाओ के इन उपन्यासो म पुरुषो के चिन्तन के उन्ही सामाजिक पहलुओ का विस्तार पूर्वक अभिव्यक्त, होने का अवसर प्राप्त हुआ है। व ह विविध बिन्दुओ के अन्तगत निम्न प्रकार देखा जा सकता है।

विवाह सम्ब धी मा यताएँ

भारत मे विवाह एक पवित्र सस्कार के रूप म स्वीकार किया जाता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक के षोडष सस्कारा मे विवाह भी एक महत्वपूर्ण सस्कार माना गया है जिसके द्वारा प्रत्येक पुरुष गृहस्थ जीवन म प्रवेश करता है। कि तु अब विवाह क धार्मिक उद्देश्य की महत्ता समाप्त होती जा रही है। स तानोत्पत्ति और यौनच्छाओ की पूर्ति ही आज विवाह के उद्देश्य रह गए है। इस पर भी आज तक भारत म विवाह पवित्र धार्मिक अनुष्ठानो को पूरा करते हुए सम्पन्न किया जाता है। धम, जाति और रूढियो से आज भी विवाह का घनिष्ठ सम्ब ध है। इस द्वत चिन्तन क कारण ही विवाह स सम्बन्धित अनेक समस्याएँ प्रकट हुई। दहेज, अनमेल विवाह बहु विवाह तलाक आदि से सम्बन्धित विवाह सम्बन्धी समस्याओ ने यन केन प्रकारेण प्रत्येक व्यक्ति को प्रभावित किया है। महिलाकृत उपन्यासो के पुरुष पात्र भी इन समस्याओ से अछूते नही है। उनका चिन्तन पक्ष इनसे परिचालित हुआ दृष्टिगत होता है। यह चिन्तन अनक बिन्दुओ का स्पश करता है और पुरुष के व्यक्तित्व को रूपायित कर जाता है।

विवाह का स्वरूप

विवाह के स्वरूप एव विवाह सम्बन्धी निणय को इन पुरुषो क द्वारा विविध प्रकार से प्रकट किया गया है। 'उसके हिस्से की धूप' का जितेन उस मत का पोषक है कि स्त्री पुरुष के परस्पर आकषण की परिणति विवाह के रूप म ही हो यह आवश्यक नही है। विषम लिंगीय व्यक्तित्वो के परस्पर आकषण को यह सहज रूप मे ही लेता

है। किसी भी स्त्री पुरुष के बीच आकर्षण का मतलब यह नही होता कि वे विवाह करें ही करें। आकर्षण ऐसी चीज है जो वक्त के साथ टिकती नही।[27] इसलिए जब तक परस्पर आकर्षण प्रेम सम्बन्ध मे बँध नही जाता तब तक विवाह एक छलना है। इस सम्बन्ध मे 'डमी' का राज कहता है 'तू नही जानती इमी कि बिना प्रेम के जब स्त्री-पुरुष पास आते है तो वह सब कितना निरर्थक भ्रम–कितना यत्रवत्–क्रिया है। मन के खिलाफ अगर तू अपने पति को पाएगी तो तू मेरे कहने की गहराई को ईमानदारी से जान सकेगी पर भगवान तुझे ऐसा अनुभव कराए।'[28]

'नावे' का विजयेश भी इस मत का पोषक है कि सिर्फ स्वार्थ साधना के लिए अनचाहे बाँध दिए गए स्त्री पुरुष को जिन्दगी ढोकर बितानी पडती है। इसलिए विवाह के निर्णय को यह मनुष्य की जिन्दगी का महत्त्वपूर्ण निर्णय मानता है। इसकी धारणा है कि मनुष्य को सोच विचार कर आत्म निर्णय के आधार पर विवाह करना चाहिए। उसी के शब्दो मे 'अपने मित्रो से मैं प्राय यही कहा करता था कि मैं तुम लोगो की तरह दकियानूस ढग की शादी नही करूँगा, अपने आप लडकी चुनूगा और खुद अपने विवेक से सब कुछ करूँगा, किसी के द्वारा धकियाये जाकर या सलाह मशविरे से जिन्दगी का एक बडा कदम मैं नही उठाऊँगा।'[29] वैचारिक परिपक्वता को धारण करने वाला यह पात्र एक कुआँरी माँ (मालती) से विवाह कर उसके समस्त दायित्वो को अपने ऊपर ओढ लेता है।

विवाह का प्रयोजन

विवाह सम्बन्ध केवल वासनापूर्ति के शारीरिक सम्बन्ध ही होते है या उनमे प्रेम भाव भी रहता है यह एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक प्रश्न है। प्राचीन भारतीय चिन्तन के अनुसार विवाह स्त्री पुरुष की यौनतुष्टि के लिए उतना अनिवार्य नही है जितना सन्तानोत्पत्ति के लिए। किन्तु पाश्चात्य चिन्तन मे काम तुष्टि का भाव प्रमुख रहता है। इन उपन्यासो मे पुरुष विवाह के प्रयोजन से सम्बन्धित मिली जुली विचारधारा प्रस्तुत करते हैं।

'पानी की दीवार' का दिलीप केवल शारीरिक क्षुधा की पूर्ति से ही सन्तुष्ट नही है वह मानसिक तुष्टि म भी पत्नी को सहायक देखना चाहता है। अपनी व्यथा को प्रकट करते हुए कहता है 'ओह नीना, शारीरिक भूख ही तो सब कुछ नही मानसिक भूख भी तो कोई चीज है।[30] मन की भूख की दुहाई देने का यह भाव शिक्षा के प्रचार के साथ प्रकट हुआ। आज का शिक्षित पुरुष अपने मन की पीडा का पत्न के साथ बाँट लना चाहता है। यदि पत्नी ऐसा नही कर पाती तो वह कुण्ठित जाता है। दिलीप की पीडा का कारण भी यही है। पत्नी के लिए वह कहता 'करुणा एक अच्छी लडकी है क्षमशील है, और किसी को भी आवश्यकता पडन

सहायता कर सकती है। पति परायण भी है वह पर इसस अधिक कुछ नहीं।'[31] 'दरोगी नहीं राधिका' का मनोज सुखी वैवाहिक जीवन के लिए पति पत्नी के परस्पर सामञ्जस्य को महत्व देता है। उसकी मान्यता है कि 'सुखी ववाहिक जीवन के लिए आदर पर्याप्त नहीं है, उमी तरह जसे कि परस्पर शारीरिक आकषण भी नहीं।'[32]

विवाह और प्रेम

विवाह के साथ प्रेम का प्रश्न भी जुडा हुआ है। विशेषत तब जबकि विवाह वस्तुत प्रेम के परिणामस्वरूप प्रेम विवाह के रूप म प्रकट हुआ हो। भारत म विवाहोपरान्त प्रस्फुटित होने वाले प्रेम को अच्छा समझा जाता रहा है। पर अब विवाह और प्रेम के सम्बन्ध की अन्तरगता को प्राय नकारा जाता है। नयी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करने वाली 'सोनाली दी' की इजरा, विवाह के लिए प्रेम की अनिवार्यता को बुजुआ सस्कारो की देन मानते हुए कहती है 'आह रानू तू बुर्जुआ है—तुम्हारा दृष्टिकोण ही दूसरा है। प्रेम और विवाह का क्या सम्बन्ध है।'[33] 'उसके हिस्से की धूप' का जितेन प्रेम की नियति उसके चुक जान को मानते हुए कहता है 'प्रेम जरूर चुक जाता है यही उसकी नियत है।'[34]

इसके बावजूद भारत म आज तक विवाह के अन्तगत हृदयो के समान आदान प्रदान को ही महत्व दिया जाता रहा है। बातो म कोई कितना ही फारवड क्यो न बन जाय व्यवहार मे सभी विवाह क द्वारा प्रेम का प्रतिदान ही चाहते हैं। काली लडकी' के कमल के शब्दो म आखिर पुरुष नारी से क्या चाहता है ? केवल वह कोमल भावना जो, शरीर से परे है जो बाह्य रूप की परिधि म नहीं बाँधी जा सकती। पुरुष का हृदय अपन जोड का दूसरा हृदय खोजता है। यदि वह मिल जाये तो वह जी जाता है, नहीं तो हमारे समाज मे अस्सी प्रतिशत विवाह मर्यादा के नाम पर या और किसी सुनहरी भ्रान्ति के नाम पर निभाय तो जाते ही हैं।[35]

रोमास और विवाह

रोमास के क्षणो का भी विवाह चिन्तन के साथ गहरा सम्बन्ध है। पुरुषो म रोमास के प्रति सहज आकषण होता है। मित्रो के सामने वे अपनी कल्पित अकल्पित रोमास कथाओ को बढा चढाकर वर्णित करत है। ये पुरुष पात्र भी इसस अछूत नहीं हैं। 'बेघर' का शिन्दे शाट और स्वीट रोमान्स को पसन्द करता है। 'शिन्दे तो इसमे यकीन करता है कि अगली को सोचने का मौका ही न दो।'[36] उसके मित्र भी अल्पायु लडकी को फँसाने मे कोई अधिक कठिनाई महसूस नहीं करते। शिन्दे की सफलता पर उसका मित्र कहता है 'फिर यार सेकण्ड ईयर म पढने वाली लडकी के लिए जोर भी आखिर कितना लगाना पडता है।[37] इस प्रकार रोमान्स के क्षणो को स्वीकारते हुए नयी पीढ़ी के पुरुष इसे विवाह के लिए आवश्यक सीढ़ी मानते हैं।

विवाह और नतिकता

विवाह करते समय प्रत्येक पुरुष अपनी पत्नी से यह अपेक्षा करता है कि वह अक्षत योनी हो। 'नार्वे' का विजयेश एव 'प्रिया' के मनसिज को छोडकर जिनम अवश्य एतद्विषयक उदारता है, प्राय सभी पुरुष पत्नी के प्रति अपने को पहले पुरुष के रूप म देखना चाहते हैं। 'बयर' का परमजीत सञीवनी से प्रेम करता है, उसके साथ शारीरिक सम्बन्ध जोडता है और अपन को उसके लिए पहला पुरुष न पाकर पीडित होता है। इसी की प्रतिक्रिया रूप वह सस्कारी घर की रमा से विवाह करता है और उसे कुआँरी पाकर सन्तुष्ट होता है।'[38]

विवाह के सम्बन्ध मे ये पुरुष पात्र जो विचार रखत हैं वे आधुनिक पुरुष के चिन्तन म पूरी तरह मेल खाते हैं। विवाह इनकी दृष्टि म अब केवल शारीरिक क्षुधा की सन्तुष्टि के लिए ही अनिवाय नही है। ये लोग मानसिक क्षुधा की सन्तुष्टि पर अधिक बल देते हैं और पत्नी को उस ढग का साभीदार देखना चाहते है जो प्रेम का सही प्रतिदान देता हो। यद्यपि अभी तक पुरुषो म यह भावना दृढता से घर किए हुए है कि विवाह के पत्नी अक्षत योनी ही हो तथापि 'नार्वे' के विजयेश एव 'प्रिया' के मनसिज जसे पात्र इस सम्बन्ध मे परिवर्तित विचार धारा की सूचना देते हैं। विवाह के बाद प्रेम सूत्र से परस्पर आबद्ध रहन की शत पर भी विचार किया जाने लगा है और विवश समझौतापरस्ती को पूरी तरह नकारा गया है।

दहेज

विवाह स सम्बन्धित सवाधिक प्रमुख समस्या दहज की समस्या है। दहेज जुटा पाने की कठिनाई के कारण माता-पिता के लिए पुत्री का विवाह करना कठिन हो जाता है तथापि लोग पुत्र के विवाह के अवसर पर दहेज अवश्य चाहते हैं। लोभ के कारण दूल्हा भी माता-पिता की इच्छा का विरोध नही करता और दहेज की मौग को अप्रत्यक्ष समथन देने लगता है। महिलाएँ ही इस समस्या की शिकार होती है। दहेज प्रथा के कारण लडकियो को योग्य वर नही मिल पाते अत उनम इसके कारण कुण्ठा का होना स्वाभाविक है। इन लेखिकाओ के उपन्यासो मे इससे सम्बन्धित पुरुष चिन्तन का प्रत्यक्षीकरण हुआ है।

'मोहल्ले की बुआ' का मोहन अपनी बहिन को स्वयवर का अधिकार देना चाहता है और परिवर्तित परिस्थितियो मे लडके लडकियो के आत्म निर्णय को सम्मानित भी करता है। बुआ से कहता है 'मैं कह रहा था कि इस लडकी का ब्याह तुम्हे नही करना पडेगा। करोगी भी तो दान दहेज नही देना पडेगा। वह अपने आप अपनी पसन्द से शादी कर लेगी।'[39] पुरुषो के ऐसे चिन्तन का उपन्यासो मे प्राय अभाव है। दहेज से सम्बन्धित समान्यत पुरुषो के उन्ही विचारो का चित्रण हुआ है जो दहेज

के लोभी हैं। ऐसे पुरुष युवा हो या वृद्ध सभी दहेज के प्रति लालायित दिखाई देते हैं।

महिलाओं के द्वारा विवाह का सम्बन्ध दहेज से जोड़ने वाले पुरुषों का चित्रण ही अधिक हुआ है। ये पुरुष दहेज से प्राप्त धन को भावी सुखमय जीवन के आधार रूप में देखते हैं। 'नावें' उपन्यास के सेठ दीवानचन्द अजीतप्रसाद तायल अपने पढ़े लिखे पुत्र के विवाह के अवसर पर भरपूर दहेज पाने की आशा करते हैं। विजयन जब अपनी पुत्री के साथ उनके पुत्र के विवाह का प्रस्ताव लेकर जाता है तो कहते हैं ' आपकी जानकारी के लिए मैं यह बता देना चाहता हूँ कि, अजय के लिए एक से एक अच्छी लड़कियों के प्रस्ताव आ रहे हैं, लोग साठ हजार तक देने के लिए तैयार हैं।'[40] इसलिए चतुराई से मोटी रकम की माँग करते हुए सेठजी कहते हैं आप ठीक कहते हैं, पर मन में कभी कभी मलाल उठता है हमने लड़के की तालीम पर इतना खर्च किया। आगे लड़का बाहर पढ़ने जाना चाहता है और दो चार साल उससे अभी कोई उम्मीद नहीं है उल्टे लगाने की ही बात है ।'[41] 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' में वकील साहब का पुत्र नारायण नायिका सुषमा को चाहते हुए भी उससे विवाह नहीं करता और भारी दहेज के साथ अन्य कन्या का वरण करता है। 'पाषाणयुग' का किशोर शकुन से प्रेम करता है लेकिन पिता का दहेज के प्रति रुझान देखकर वह अन्यत्र विवाह कर लेता है। उसके इस निर्णय के प्रति शकुन अपने पिता से कहती है 'उसकी इच्छा थी कि दूसरे वधु पिताओं की तरह आप भी थली लेकर वधू से खड़े हो जाते। इच्छा शायद उसके मां बाप की थी पर उसने उनका विरोध भी नहीं किया था। इकलौता लड़का है न, मां बाप का मन कैसे तोड़ देता बेचारा।'[42] वह 'तीसरा' का संदीप विवाह के उपरान्त श्वसुर के खर्च पर नैनीताल हनीमून मनाने के लिए जाता है लेकिन उनका दिया हुआ पैसा खर्च हो जाने पर पुनः लौट पड़ने की तैयारी शुरु कर देता है। पत्नी रजना जब उससे कुछ और रुकने का आग्रह करती है तो वह कहता है 'रुक तो सकते हैं लेकिन तुम्हारे डैडी तो खर्च उठाना पसन्द नहीं करेंगे और संदीप वर्मा के बस में अब और नैनीताल नहीं है।'[43] 'बयार' का परमजीत जब विधि विधान से रमा के साथ विवाह करता है तो वह भी मिलने वाले दहेज को पसन्द ही करता है। उसके पिता दहेज के रूप में प्राप्त सामग्री की फेहरिस्त बना लेते हैं ताकि चीज अगर छूट जाए तो वापस मगाई जा सके। उसकी मां मिलने वाले रुपयों को दुपट्टे में बटोर लेती है। बम्बई में रहकर आधुनिक जीवन जीने वाला परमजीत लेकिन इनका प्रतिवाद नहीं करता।'[44]

भारी भरकम चैक की राशि में समस्त विवाहिता कन्या के दोषों को नजरअन्दाज कर देने वाले पुरुष भी इन उपन्यासों में देखे जा सकते हैं। 'विषकन्या' में नायिका का भाई श्वसुर के मोटे चैक की ओट में मोटी, थुलथुली मूर्ख लड़की को भी पत्नी बना

लेता है। उसके माता पिता भी लडकी के पितृकुल के वैभव पर रीझकर उन्हें ब्याह लाए थे।[45] इसी प्रकार पारिवारिक अर्थाभावों की विवशता के कारण भी दहेज स्वीकार करते पुरुष दिखाई पड़ते हैं। 'मायापुरी' का सतीश हृदय से विवाह में आडम्बरमय रूप को तथा दहेज को पसन्द नहीं करता किन्तु पिता पर चढ़े हुए कर्ज, माता की रुग्णता अप्रत्यक्ष दबाव के कारण दहेज स्वीकार करने के लिए विवश हो जाता है।

दहेज के प्रति अरुचि प्रकट करने वाले आदर्श पुरुष पात्र भी इन उपन्यासों में चित्रित हुए हैं। 'नावें' का अजय अपने सेठ पिता की दहेज लेने की इच्छा के विरुद्ध प्रेम विवाह करता है। 'कृष्णकली' का प्रवीर श्वसुर को हनीमून के लिए पांच हजार का चेक देते देखकर भड़क उठता है और 'देखिये, यह सब मैं नहीं लूंगा' कहकर चेक लौटा देता है।[46]

दहेज देने के इच्छुक पुरुषों में पुरानी पीढ़ी के लोग ही अधिक रुचि लेते दिखाई देते हैं। 'बंधर' में रमा के पिता अपनी सामर्थ्य से भी बाहर जाकर पुत्री को दहेज दे देते है। जब उनके बेटे इस बात पर आपत्ति करते है तो उन्हें यह कहकर सन्तुष्ट करते हैं कि ले गई जो लेना था, अब जो है घर का है।'[47] 'कृष्णकली' के पाण्डेजी भी अपने जमाता को यथेष्ट दहेज देना चाहते हैं। जब दामाद हनीमून के लिए दिया गया पांच हजार का चेक लौटा देता है तो उसे वे पुत्री को यह कहते हुए दे देते हैं 'तेरा दूल्हा तो कन्धे पर हाथ नहीं धरने देता। इसे तू रखले।'[48]

इस प्रकार इन उपन्यासों के पुरुषों में शिक्षित या सम्पन्न होते हुए भी दहेज के प्रति प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष मोह का भाव है। नवयुवक भी दहेज की कामना करते है या मिलने वाले दहेज से प्रसन्न ही होते है। दहेज के कारण पत्नी के दोषों की ओर ध्यान नहीं देते। कुछ इतने दुर्बल हैं कि चाहते हुए भी माता पिता के द्वारा की गई दहेज की मांग को अस्वीकार नहीं कर पाते। नवयुवकों का एक वर्ग ऐसा भी खड़ा हुआ है जो इस कुप्रथा का विरोध करता है। सामान्यतः पुरानी पीढ़ी के लोग दहेज लेने में इच्छुक है तो नयी पीढ़ी के पुरुषों में इसके प्रति विरोध का भाव प्रत्यक्ष हुआ है। दहेज देने के इच्छुक लोग भी पुरानी पीढ़ी के ही है।

अनमेल विवाह

दहेज की कुप्रथा ने आर्थिक दृष्टि से विपन्न माता पिता को अपनी पुत्री का विवाह जिस किसी व्यक्ति के साथ कर देने की प्रेरणा दी। पुरुषों में किसी प्रकार का दोष न देखने वाला भारतीय समाज अवस्था प्राप्त व्यक्ति को भी उम्र में अपेक्षाकृत अधिक छोटी लड़की से विवाह करने की अनुमति दे देता है। जीवन के मधुर रंगीन स्वप्न संजोने वाली लड़की को, इस प्रकार, अपनी आकांक्षाओं का गला घोटकर प्रौढ़

व्यक्ति से विवाह करना पडता है। इन उपन्यासो मे यद्यपि माता पिता द्वारा अपनी ओर से पुत्री का विवाह किसी प्रौढ से कर देने के दृष्टान्त इने गिने है तथापि आर्थिक विवशताओ के कारण महिलाओ द्वारा उम्र मे अधिक बडे व्यक्ति से विवाह करने के उदाहरण अवश्य प्राप्त होते हैं।

उम्र के आधार पर अनमेल विवाह

पुरुष चाहे शिक्षित हो या अशिक्षित पत्नी से वह यही अपेक्षा करता है कि वह समस्त बाधाओ पीडाओ को झेलते हुए उसकी सेवा करती रहे। अनमेल विवाह म उम्र क कारण जो अन्तर रहता है उसे पत्नी चेष्टा करके भी पार नही पाती। दूसरी ओर ऐसा पति युवा पत्नी द्वारा गम्भीरता का मुखौटा धारण कर प्रौढा के समान आचरण करने के लिए दबाव देता रहता है। ऐसा न हो पाने पर वह पत्नी को पीडित करता है। प्रताडित करने मे भी सकोच नही करता। 'सूखी नदी का पुल' के रायसाहब अपने से बीस वष छोटी लडकी से विवाह करते है लेकिन विवाह के तुरन्त बाद उसम चिन्तन एव आचरणगत प्रौढता देखना चाहते हैं। पत्नी से कहते है तारा, तुम लडकियो के सामने कीमती और सुन्दर वस्त्र मत पहनो अपने कटे हुए बालो को जूडे म बाँध लो। जब घर मे लडकियाँ जवान होती है तो माँ को अपने शौक ताक पर रख देने पडते हैं। 49 पति की इच्छानुसार जब तारा ऐसा आचरण करने लगती है तब भी वह उसके प्रति शकित ही रहते हैं। पुत्रियो का विवाह इसलिए जल्दी कर देते है कि कही युवा पत्नी की देखरेख के अभाव म लडकियाँ बिगड न जाये। इस प्रकार युवा पत्नी के प्रति सन्देह को पालते हुए वे विशेष सजगता बरतते हैं। 'एव तो उन्होने मुझ पर कभी विश्वास किया ही नही। सदव कही न कही उनकी सदिग्ध दृष्टि का अश मुझे मिल ही जाया करता था। दुलारी और बाबू को कई प्रकार के आदेश थे मेरे लिए साँझ को आकर अकसर अकेले म बाबू से घुमा फिराकर मेरे बारे म अनेक प्रश्न पूछा करते थे वह। 50

एकोगी नही राधिका' मे भी राधिका के पिता बीस वष की छोटी विद्या के साथ विवाह करते हैं। किन्तु उम्र के अन्तर पर अवलम्बित यह विवाह स्थिर नही रह पाता। राधिका के पापा पुन एकान्तवासी हो जाते हैं। पुत्री के पलायन का सारा दोष विद्या पर मढ देते हैं। दोनो म तनाव इस हद तक जा पहुचता है कि भीतर ही भीतर घुटते हुए विद्या नीद की गोलियाँ खाकर आत्महत्या कर लेती है। राधिका भी उम्र म अधिक बडे डन का वरण करती है। डन और राधिका दोनो अपने अपने अभावो को भरने के लिए परस्पर निकट आते हैं। डन को पत्नी के अलगाव का दुख है तो राधिका को पिता से बिछुडने का। स्वार्थपूर्ति के लिए निकट आए दोनो प्रणयी इस सम्बन्ध का निर्वाह अधिक समय तक नही कर पाते। डन उस अमेरिका

में एकाकिनी छोड़ कर अन्यत्र चला जाता है। अपनी और राधिका की स्थिति का विश्लेषण करते हुए टन कहता है 'राधिका तुम मुझ में अपना पिता ढूँढ रही थी और मैं तुममें अपना खोया यौवन ढूँढ रहा था। अपनी पत्नी को छोड़कर तान की कड़वाहट धोना चाहता था, पर शायद हम दोनों ही सफल नहीं हुए।'[51]

'पाषाणयुग' में वयस्क बच्चों के पिता 'पापा' अपनी शिष्या नीरजा से विवाह कर लेते हैं। वयस्क बच्चे पापा के इस निर्णय का समर्थन नहीं कर पाते। 'किसी को कुछ पता नहीं था। यह केवल सरप्राइज़ की तरह हुआ। ए हर्टफुल सरप्राइज।'[52] इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप लड़के लड़कियाँ मानो विद्रोह कर देते हैं। इन सभी स्थितियों से क्रोधित होकर पापा सारा दोष नीरजा पर मढ़ देते हैं। कभी उसे गृहिणी के रूप में समर्थ न होने पर डाँटते हैं तो कभी शृंगार करने पर। नीरजा के सहयोग से लिखी गई अपनी पुस्तक को भी वे मृत पत्नी के नाम समर्पित करते हैं। नीरजा की पीड़ा को प्रकट करते हुए पुत्री कहती है कि 'फिर भी वह घर के किसी कोने में जलने वाली अगरबत्ती की तरह चुपचाप अपने अस्तित्व की सुगंध बिखेर रही थी। पर हममें से किसी को उसका ख्याल न था।'[53] इस प्रकार पापा के आचरण से यह अनमेल विवाह उनकी पत्नी नीरजा के लिए पीड़ादायक ही सिद्ध होता है। अपनी स्थिति को प्रकट करते हुए नन्दी से नीरजा कहती है 'मैं इन बच्चों की माँ बनकर इस घर में नहीं आई हूँ। इनके पिता के इस महल में एक वाद्धिक कक्ष खाली था। मेरी नियुक्ति वहीं हुई है।'[54] यौन सम्बन्धों को छोड़कर पापा नीरजा से और कोई सम्बन्ध नहीं रखते हैं। 'रतिविलाप' में हीरा का वृद्ध पति भी उसे पीड़ा देता रहता है। 'सोलह वर्ष की अबोध बालिका थी विवाह हुआ था पर वृद्ध पागल सा दिन रात इसे पीटता था नोचता था, खसोटता था।'[55]

वैचारिक दृष्टि से अनमेल विवाह

अवस्था से ही नहीं वैचारिक दृष्टि से भी अनमेल विवाह का पुरुष के चिन्तन एवं आचरण के द्वारा इन उपन्यासों में चित्रित किया गया है। 'वह तीसरा' का सन्दीप, 'आपका बंटी' का अजय, 'उसके हिस्से की धूप' का जितेन, 'सूखी नदी का पुल' का शेन, 'पानी की दीवार' का दिलीप, 'स्त्री का राज' इत्यादि पुरुष पत्नी के साथ सामञ्जस्य स्थापित नहीं कर पाते। असामञ्जस्य का कारण पत्नी की अधिक योग्यता, पुरुष का अहं, रुचियों का वैभिन्य आदि है। अजय की यह कुण्ठा है कि उसकी पत्नी उससे अधिक पढ़ी लिखी है। पुरुषों की इस कमजोरी के कारण ही पति पत्नी में सामञ्जस्य नहीं हो पाता। शैल के आचरण का विश्लेषण करते हुए उसकी माँ नीरजा कहती है 'मैं जानती हूँ शैल पुरुष अपने से अधिक ज्ञानी स्त्री को पत्नी रूप में नहीं चाहता। हर पुरुष यह चाहता कि स्त्री उससे अधिक ज्ञानवान न हो।'[56] स्त्री

क असंतोष का कारण पत्नी का अधिक आधुनिक हो जाना है और पति के साथ शारीरिक सम्बन्धों में इतर सम्बन्धों का निर्वाह नहीं करना है।

इस प्रकार अनमेल विवाह करने वाले पुरुष पुनः पत्नी के प्रति सहिष्णु नहीं होते और अपने अहं का विसर्जन नहीं कर पाते। बल्कि अपने अहं को उस पर आरोपित करने में सचेष्ट रहते हैं। पत्नी के प्रति अन्याय करते हुए उसमें यह अपेक्षा करते हैं कि वह अपनी अस्मिता, रोष, अवस्थानुरूप रुचियाँ सबको तिलांजलि देकर, मूक भाव से सब कुछ सहती रहे। निश्चय ही इन लेखिकाओं ने पुरुषों के व्यक्तित्व के इस पहलू पर पर्याप्त प्रकाश डालते हुए उनके चिन्तन को दोषपूर्ण सिद्ध करने का प्रयास किया है।

अंतर्जातीय विवाह

पाश्चात्य शिक्षा और संस्कारों के प्रचार प्रसार से जातीय कट्टरता की भावना क्रमशः शिथिलगात होने लगी। इससे पूर्व तक जाति से बाहर विवाह सम्बन्ध स्थापित करने वाला व्यक्ति जातिच्युत कर दिया जाता था। उसकी निन्दा भर्त्सना की जाती थी किन्तु अब अंतर्जातीय विवाह के लिए प्रतिकूल स्थितियाँ नहीं रही हैं। इसका यह अर्थ नहीं है कि लोगों के मस्तिष्क पूरी तरह साफ हो गए हैं, उनके हृदय जातीय दुराग्रहों से पूरी तरह मुक्त हो गए हैं। लोगों में आज तक जातीय भावना है जो विवाह के अवसर पर प्रकट होती रहती है। अपने परिवार के किसी भी सदस्य को अंतर्जातीय विवाह करने की अनुमति सामान्यतः नहीं दी जाती। इन उपन्यासों के पुरुषों का चिन्तन भी ऐसी ही संकीर्णताओं में ओतप्रोत है। साथ ही नूतन मूल्यों के लिए संघर्ष करने वाले एवं विवाह के सम्बन्ध में जातीयता के बंधन को अस्वीकारने वाले पुरुषों का चिन्तन पक्ष भी इन उपन्यासों में चित्रित हुआ है।

अन्नपूर्णा तागड़ी के 'उत्सव' का मनोज जब विजातीय दाची से विवाह करना चाहता है तो उसके पिताजी इसका विरोध करते हैं। मनोज की माँ से कहते हैं, "तुम्हारा दिमाग तो खराब नहीं हो गया है? वह एक कायस्थ की लड़की। यह ब्राह्मण का पुत्र। कभी इसकी कल्पना भी की जा सकती है।[37] लेकिन मनोज ऐसी संकीर्णताओं को नहीं पालता है। कहता है माँ मैं जाति पाँति में विश्वास नहीं करता। मनुष्य सब बराबर हैं, खानदान का नाम तो अच्छे कार्य से होता है।[38] फिर भी पिता की हठवादिता के कारण यह विवाह नहीं हो पाता। ऐसी हठवादिता रत्न की मटकी में नायिका कुंतल के पिता में भी है। कुंतल जब शोभन से विवाह करने की इच्छा व्यक्त करती है तो वे सहर्ष तैयार हो जाते हैं लेकिन जब उन्हें पता चलता है कि शोभन उनकी जाति का नहीं है तो वे तुरंत मना कर देते हैं। पिताजी क्षुब्ध थे क्योंकि उनकी बातों में लग रहा था कि वे विजातीय से शादी की चर्चा छिड़ने के

कारण अपमानित भी महसूस कर रहे हैं। उसी क्षोभ के साथ वे उठकर भी चले आए थे।'[59] 'ज्वालामुखी के गर्भ में' का मनीष जब अपनी सहपाठिनी पंजाबी क्रिश्चियन से शादी करना चाहता है तो उसकी माँ उससे अत्यंत रुष्ट हो जाती है और उससे बोलना तक बंद कर देती है। फिर भी, मनीष यह विवाह करता है और एक प्रकार से घर निकाल दिया जाता है। दूसरी ओर इन उपन्यासों के अधिकांश पुरुष ऐसी संकीर्णताओं से पूरी तरह मुक्त हैं। विवाह करते समय वे इस बात पर तनिक भी विचार नहीं करते कि उनकी भावी पत्नी किस जाति की है। विवाह करते समय वे पत्नी में अन्य गुणों की भले ही अपेक्षा करते हों, उससे यह अपेक्षा कदापि नहीं करते कि वह अनिवार्यतः स्वजातीय हो। इसलिए ऐसे पुरुषों का चिंतन अप्रत्यक्षतः अंतर्जातीय विवाह का समर्थन करता दिखाई देता है।

इस प्रकार अंतर्जातीय विवाह के सम्बन्ध में पुरुष चिंतन में पीढ़ियागत अंतर नजर आता है। पुरानी पीढ़ी के लोग जातीयता के पक्षधर हैं तो नई पीढ़ी के लोग उसके विरोधी हैं। वे जाति से बाहर की लड़की से विवाह करने में किसी प्रकार का संकोच नहीं करते।

अंतर्धार्मिक विवाह

जातीयता की ही भाँति धार्मिक संकीर्णता भी विवाह मार्ग में बाधक सिद्ध होती है। भारत में धर्म का वर्चस्व सदैव रहा है और छोटे-मोटे अनेक धर्मों एवं धार्मिक सम्प्रदायों में यहाँ के पुरुषों का चिंतन सिमट कर रह गया है। सभी धर्मों, सम्प्रदायों के लोग अपने-अपने आचारों का कट्टरता से पालन करते हैं। दूसरों के आचारों-विचारों के प्रति सामान्यतः अनुदार ही रहते हैं इसलिए अंतर्धार्मिक विवाह की अनुमति वे कैसे दे सकते हैं। इन उपन्यासों के पुरुषों में भी ऐसे विवाहों के प्रति लगभग वैसे ही विचार हैं जो जातीयता से सम्बन्धित ऊपर प्रकट किए जा चुके हैं। विधर्मी स्त्री या पुरुष से विवाह सम्बन्ध के प्रति पुरुषों में घृणा का भाव भी अधिक है। [illegible] की नायिका जब मुसलमान से विवाह कर लेती है तो गुरुचरण उसका बाप [illegible] कहता है 'सब हिंदू मर गए थे क्या?'[60] इसी प्रकार [illegible] लोगों की धार्मिक संकीर्णता की ओर संकेत करता हुआ कहता है 'ये लोग [illegible] बर्दाश्त कर लेते हैं पर क्या शादी को बर्दाश्त करेंगे।'[61]

'श्मशान चम्पा' में चम्पा की बहिन जूही जब विधर्मी से [illegible] विवाह कर लेती है [illegible] चम्पा के प्रस्तावित दूल्हे के सम्स्कारी पिता रामदत्त [illegible]। चम्पा की माँ से कहते हैं 'शादी होगी तो [illegible]। [illegible] माफ करो भाई, हम यह रिश्ता नहीं चाहते। [illegible] नटरती है, [illegible]।'[62]

[illegible]

इस प्रकार अत धार्मिक विवाह के प्रति इन पुरुषों में सामान्यत विरोध का भाव ही दिखाई देता है। उपन्यासों में ऐसे नवयुवक भी हैं ऐसा करने में कोई कोई आपत्ति नही करते हैं। अत धार्मिक विवाह इनके लिए कोई बाधा नही बन पाता है।

तलाक

तलाक के प्रति भारत में अनुकूल मान्यताएँ नहीं रही हैं। विवाह को यहाँ जन्म जन्मान्तर का सम्बन्ध माना गया है। दाम्पत्य सम्बन्धों की इसी अटूटता के कारण यहाँ पति पत्नी से यह अपेक्षा की जाती है कि तनाव की स्थिति में भी वे येनकेन प्रकारेण परस्पर समायोजन करें। तलाक के प्रश्न को यहाँ धर्म, नैतिकता एवं आस्थाओं के आधार पर नकार दिया जाता है। लेकिन, अब पति पत्नी के बीच सम्बन्ध विच्छेद को अधिक तवज्जो नही दी जाती। अब तलाक का प्रचलन भी हो गया है और लोग ऐसा करने में सकोच नही करते। इन उपन्यासों के पुरुषों का चिन्तन भी तनाव की स्थिति में तलाक का पक्षधर है।

आपका बंटी उपन्यास तलाक की समस्या पर आधारित है। लेकिन यह तलाक के बाद की समस्याओं को (बंटी के रूप में बच्चे की समस्या को) प्रस्तुत करता है। 'बंटी' का अजय जब शकुन से दस वर्ष के वैवाहिक जीवन में भी सामञ्जस्य स्थापित नही कर पाता है तो उससे तलाक ले लेता है। वकील चाचा भी कटुता और तनाव ग्रस्त वैवाहिक जीवन जीते रहने की अपेक्षा तलाक ले लेने को बेहतर समझते हैं। शकुन से कहते हैं यदि ऐसा ही है तो फिर अच्छा है कि तुम लोग अलग हो जाओ। सम्बन्ध को निभाने की खातिर अपने को खत्म कर देने से अच्छा है कि सम्बन्धों को खत्म करो।[63] अजय की ही भांति इसी उपन्यास का डाक्टर जोशी भी पत्नी प्रमीला को तलाक देता है। दोनों ही तलाक देने के बाद पुनर्विवाह कर लेते हैं। लेकिन जहा अजय बंटी के बहाने फिर भी शकुन से जुड़ा रहता है वहीं डाक्टर उस अध्याय को पूरी तरह बद करके उस सारे प्रसंग को भूल जाना चाहता है। उसी के शब्दों में प्रमीला के साथ का जीवन — वह जैसा भी था अच्छा या बुरा — मेरा इतना निजी है कि मैं उसे किसी के साथ शेयर नही कर सकता। तुम गलत मत समझना और बुरा भी मत मानना। वह एक अध्याय था जो उसी के साथ समाप्त हो गया। और अब मैं उसे किसी के साथ खोलना नही चाहता हूँ। चाहूँ भी तो खोल नही सकता। शायद अब तो अपने सामने भी नही।[64] महानगर की मीता का अजित मीता से प्रेम विवाह करता है अनबन होने पर उसे तलाक दे देता है पुन विवाह करता है उससे भी अनबन हो जाती है तो पुन मीता की ओर झुक आता है।

तलाक की सुविधा समाज में सबको उपलब्ध होते हुए भी भारत में सामान्यत पुरुष को ही ऐसा करने के अधिकार है। नारी इस सम्बन्ध में पहल करती है तो वह

निन्दनीय समझी जाती है। 'महानगर की मीता' में पुरुषों की इस सुविधा भोगी स्थिति के सन्दर्भ में कहा गया है कि 'मुझे दुःख होता है कि यही कानून पुरुषों के लिए ठीक है, वह उस कानून का लाभ उठा सकते हैं, नारियाँ नहीं। हमारा देश अभी तक पिछड़ा हुआ है। तलाक पुरुष के लिए उचित है, स्त्री ले तो कलंकिनी मानी जाती है, पुरुष विजयी और शूरवीर। उसकी पीठ ठोककर लोग कहते हैं—शाबाश अच्छा हुआ तुमने जोरू की गुलामी नहीं सही। इन औरतों का सिर नहीं चढ़ाना चाहिए। अब देखना इनको कोई काना कुबड़ा मिलता है या नहीं।[65]

तलाक के लिए उदार हृदयी पुरुषों का चिन्तन पक्ष भी इन उपन्यासों में चित्रित हुआ है। उसके हिस्से की धूप का जितेन पत्नी मनीषा द्वारा उसे तलाक देकर मधुकर के साथ विवाह करने की इच्छा व्यक्त करने पर आनाकानी नहीं करता। वह तो तलाक तक की आवश्यकता महसूस नहीं करता। मनीषा को छोड़कर जाने की स्वतन्त्रता देते हुए कहता है 'चुनने का अधिकार सबका है, मनीषा। मैं सिर्फ यह कहना चाहता हूँ कि एक बार और सोच लो तलाक की जरूरत मैं नहीं समझता।[66] गलती से दुबारा लौट आने की स्वतन्त्रता प्रदान करते हुए कहता 'जबरदस्ती करके तुम्हें नहीं रोकूँगा मनीषा। एक इन्सान पर दूसरे का अधिकार मैं नहीं मानता। इतना जरूर कहूँगा, एक बार और सोच लो। मैं तुम्हें चाहता हूँ, कभी लौटना चाहो तो लौट आना।'[67]

इस प्रकार तलाक से सम्बन्धित विविध मान्यताएँ इन पुरुषों से अभिव्यक्त होती हैं। इस सम्बन्ध में स्वस्थ चिन्तन को प्रश्रय देने वाले पुरुषों का बाहुल्य है। तलाक को मानव अधिकार के रूप में स्वीकार किया गया है। साथ रहते हुए तनावग्रस्त जीवन जीते रहने की अपेक्षा तलाक को अच्छा समझा गया है। [illegible] पुरुष पात्र तलाक के बिना भी पत्नी को अपने इच्छित व्यक्ति के साथ रहने की अनुमति देते हैं। तलाक का अधिकार, अप्रत्यक्षतः पुरुषों के हाथों में ही रखा गया है नारी के पहल करने पर उसके प्रति क्षीण विरोध का भाव परिलक्षित होता है।

अन्य सामाजिक समस्याओं के प्रति पुरुष दृष्टि

विवाह एवं वैवाहिक समस्याओं से सम्बन्धित पुरुषों की विचारधारा [illegible] जान के बाद समाज की अन्य समस्याओं के प्रति पुरुषों का [illegible] है। लेखिकाओं के द्वारा चयनित विषय क्षेत्र के अंतर्गत वैवाहिक [illegible] पुरुष चिन्तन को अभिव्यक्त होने के [illegible] के लिए नहीं। तथापि भ्रष्टाचार, मुनाफाखोरी, वेश्यावृत्ति [illegible] पुरुषों का चिन्तन [illegible] बहुत प्रकट हुआ है जिसे यहाँ देखा जा [illegible]

भ्रष्टाचार

स्वतन्त्रता क बाद देश म भ्रष्टाचार अधिक पनपा लोगो न अपन अपन घर भरन क लिए अनैतिक तरीको म पैसे कमान शुरू किए । एक ओर धर्म नैतिकता क परम्परित प्रतिमानो के टूटन स लोगो म निष्ठुरता आई तो दूसरी ओर स्वतन्त्रता क रूप म जिन स्वप्नो को लोगो न सजाया था व टूटकर बिखर गए । भ्रष्ट शासन तन्त्र म लोगो न बिगडी व्यवस्था स समझौता कर लिया और स्वार्थ स ऊपर उठकर देश क हित क लिए सोचन वाल लोगो म भ्रष्टाचार के प्रति विरोध का भाव परिलक्षित हुआ । शिष्टाचार के लिए इन्होन भ्रष्टाचार का विरोध किया । उसके हिस्से की धूप का मधुकर भ्रष्टाचार का विरोधी है । भ्रष्टाचार से ग्रस्त इसका चिन्तन उस यथार्थ को तल्खी क साथ प्रस्तुत करता है 'नया कुछ भी नहीं हुआ वर्षों स भ्रष्टाचार और शोषण चल रहा है, वही है ।'[68] वह अपने छात्रो म वह क्रान्ति चेतना भर देना चाहता ह कि जिसमे वे संघर्ष कर इन भ्रष्ट स्थितियो स समाज को मुक्त करा द ।

भ्रष्टाचार के यथार्थ एव उसके बारे म पुरुषो का चिन्तन अधिक नहीं दिखाई देता । अमलतास के महाराज कुवर अजीतसिंह जैसे पात्र पुरुष चिन्तन के इस पक्ष का प्रतिनिधित्व करते है । देश की स्वतन्त्रता स पूर्व य सामन्ती सुविधाओ का भोग करत थ किन्तु आजादी मिलत ही तुरन्त अपना चोगा बदल लेत है । बेईमानी को जीवन की सफलता का मूलमन्त्र समझते ह । वैसा ही व्यवहार करत हुए कहत ह बताओ फिर आजकल कौनसा ऐसा धंधा है जिनम उन्नति करने के लिए तुम्ह चार सौ बीसी नहीं करनी पडेगी । आप फरमात ह देश आजाद हो गया है तो अब हमार दिमागो को भी आजाद हो जाना चाहिए यानी हम सच्चाई के दायरो म चलना सीखना चाहिए । वाह रे कुन्द जेहन ! भई दिमागो की आजादी तो यही है कि हम खुलकर सौ हथकण्डे सोच सके जिसम हम आगे बढ । सरकार न हम कम सताया है जो हम सरकार के वफादार बन ।[69]

ऐसे ही संकीर्ण चिन्तन स प्रेरित होकर पुरुष अर्थोपार्जन के भ्रष्ट तरीके अपनाते ह । दूरियां का कमल जाली पासपोर्ट बनाने का धंधा करता है और पकडा जाता है ।[70] इसी उपन्यास का जय शान शौकत की जिन्दगी के लिए सट्टा खेलता है ।[71] सूखी नदी का पुल के न्यायाधीश और सिविल सर्जन पच्चीस हजार रिश्वत म ले लेते ह ।[72] 'तिन्नी म फबियन और उसके गिरोह के सदस्य तस्करी करते ह । नरक दर नरक का आतिश अर्थाभाव के कारण शराब की दलाली का धंधा करता है ।[73] वह सिनेमा के टिकटो का ब्लैक भी करता है ।[74] पतझड की आवाजें म एक औद्योगिक संस्थान के क्लर्को म प्रमोशन के लिए घूस देने के अतिरिक्त सीनियर लोगो द्वारा समर्पिता नारियो को प्रमोशन दे देने की प्रवृत्ति

दृष्टिगत होती है। चन्द्रकांत अपने प्रति समर्पित होने की शर्त पर अनुभा को प्रमोशन देना चाहता है। उसे दूर पिकनिक पर चलने का प्रस्ताव देते हुए पत्र में लिखता है 'इफ यू डोंट फील मच आई विल ब्रिंग एक एल। डोंट वरी फार इट।' [75] प्रमीला के द्वारा ऐसा न करने पर वह उषा को इसके लिए राजी कर लेता है और उसे प्रमोशन दे देता है।

इस प्रकार भ्रष्टाचार के बारे में पुरुष [illegible] के चिंतन [illegible] आयामी है। [illegible] राष्ट्रीय प्रतिबद्धताओं के पर अधिकांश पुरुष पात्र भ्रष्टाचार का [illegible] भ्रष्टता को अपनाने के लिए विवश सब प्रस्तुत करते हैं। भ्रष्ट आचरण [illegible] करने वाले पुरुष भी इन उपन्यासों में हैं। ये लोग वर्तमान [illegible] परिचालित व्यवस्था को बदल कर नयी व्यवस्था की स्थापना [illegible]

मुनाफाखोरी

मुनाफाखोरी भ्रष्टाचार का ही दूसरा रूप है। नौकरीपेशा [illegible] बोलबाला है तो व्यापारियों में मुनाफाखोरी की प्रवृत्ति [illegible] स्वार्थ के लिए व्यापारी मिलावट, होर्डिंग, कालाबाजारी [illegible] के लोगों के स्वास्थ्य की या असुविधा की अधिक चिंता [illegible] परमजीत का पिता मुनाफा कमाने के लिए डूब में हानिकर [illegible] कोई समझौता नहीं करता। ऐसा करने में एक [illegible] है तो वह स्वयं उस व्यवसाय को छोड़ देता है। इस प्रकार [illegible] परमजीत का पिता मुनाफाखोरी की प्रवृत्ति का [illegible]

बेरोजगारी

नरक दर नरक में शिक्षित बेरोजगारी [illegible] समस्या [illegible] वजनाथ, अनिरुद्ध इत्यादि बेरोजगारी का [illegible] पर भी जागेश्वर अपने नायक नाम के [illegible] और भी अधिक विकट है। मुसलमान [illegible] वह धुरनगर का काम [illegible] भी न मिलने से [illegible] नहीं मानता। [illegible]

व्यावृत्ति

[illegible]

सम्भ्रा त नारिया का वश्या बनने के लिए विवश करता है। इन उपयासा म पुरुष पात्र यत्र तत्र एसा आचरण करते दृष्टिगोचर होते हैं। उनकी वासनान्धता का शिकार होकर नारिया का वश्या बनना पड़ता है। कृष्णकली के रजनीकान्त की वासना का शिकार होने पर वाणी मन अपने आश्रित मामा मामी का मुह दिखलाने के लायक नहीं रहती। इसलिए उसे घर छोड़ देना पड़ता है। अततोगत्वा उसे वेश्या बनकर जीवन यापन करना पड़ता है। रुक्या का मुत्युस्वामी भी वसती का अपनी वासना का शिकार बनाता है जिसके परिणामस्वरूप वह भी घर जाने की स्थिति म नहीं रहती और वश्याओं के चगुल म फँसकर वेश्या बनने को विवश होती है। वेश्यागमन करने वाले पुरुषा का चित्रण भी इन उपयासा म हुआ है। 'कृष्णकली' के विद्युतरजन रहमतुल्ला आदि बैंजी या सुरेश भट्ट अमलतास के महाराजकुमार इत्यादि वेश्यागमन करने वाले पुरुष पात्र हैं। वेश्यागमन की यह प्रवृत्ति सामान्यत उच्च वर्ग के पुरुषा म ही दृष्टिगत हुई है। पैसे वाले वृद्ध स वृद्ध व्यक्ति भी वेश्यागमन म सकोच नहीं करते। 'वाणोसन' के ता असख्य दुलारे चाचा ताऊ थे। चटर्जी काका रायकाका घोषखुड़ो दस्तिदार राय चौधरी काका टामस अकल डविड अकल हाय राम दम फूल गया गिनते गिनते हमारी वाणी सेन का तो आधा ससार इन ससुरे चाचा से भरा है।"8

इस सामाजिक बुराई के प्रति इन उपन्यासा के पुरुष पात्रो का चितन यद्यपि स्पष्ट रूप म उभर कर नहीं आया है तथापि कुछ पुरुषा म वश्याओं का उद्धार करने की या उनके साथ विवाह आदि करने म सकोच न करने की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। श्मशान चम्पा के सेनगुप्ता वश्यापुत्री से विवाह करते है।"9 इसी उपन्यास मे मयूरभज के जागीरदार भी ऐसा ही करते हैं।

परिवार

समाजशास्त्रियों ने सामाजिक सगठन म परिवार को सबसे अधिक महिमा प्रदान की है। परिवार के बिना सामाजिक प्राणी की कल्पना नहीं की जा सकती इसलिए सामाजिक सरचना म परिवार सर्वोपरि है। भारत म सयुक्त परिवार की प्रथा रही थी। हिन्दू समाज की इकाई व्यक्ति न होकर सयुक्त परिवार है।80 किन्तु अब अनेक कारणा से उसके आकार म ह्रास हुआ है। परिवार अब पति पत्नी और बच्चा तक ही सीमित हो गया है। परिवार के सदर्भ म इन पुरुषा म भी परिवर्तित विचारधाराएँ ही दृष्टिगत होती है। इन उपन्यासा के पुरुष पात्र परिवार के सम्बन्ध म जो धारणाएँ रखते है उसको इन बिन्दुओं म प्रकट हुआ देखा जा सकता है।

सयुक्त परिवार

सयुक्त परिवार और उसकी टूटती इकाइयो का चित्रण उपन्यासा म पुरुष चितन के

मा यम स हुआ ह। 'मित्रो मरजानी' म सयुक्त परिवार चित्रित है। गुरदास के तीना बेटे साझे मे यापार करते ह और सयुक्त रूप से परिवार म रहत ह। लेकिन पत्नी की प्रेरणा म छोटा बेटा गुलजारीलाल व्यापार मे धोखा करता है। इसी बात स भाईयो म अनवन हो जाती है और वह घर छोडकर चला जाता है। अम्मा तुम्हारी बहू का गुजारा अब इस घर मे नही।'[81] यह दूसरी बात है कि गुलजारी परिवार का मोह अधिक समय तक छोड नही पाता और ससुराल वाला को उनकी करनी का फल चखाते हुए वापस लौट आता है। ऐसी अवस्था मे भी गुरदास सयुक्त परिवार को बनाए रखन के लिए सचेष्ट है। उसकी दृष्टि म समाज म परिवार की अप्रतिष्ठा हो जाने का अथ है परिवार का महत्त्वहीन हो जाना। 'गुरदास ने सिर हिला हिला कर कहा—यह कलजुग है, कलजुग! आज का पानी उतर गया तो फिर घर घरान की इज्जत क्या और क्या लोक मरजाद?[82] सरदारीलाल भी घर की 'इज्जत पत' रखने के लिए सचेष्ट है। पत्नी द्वारा फूहड ढग से काम भावनाओ का प्रदशन किया जाना इसे पस द नही है और इसी से वह परिवार की इकाई के निर्वाह के लिए मौन रह जाता है। ज्वालामुखी के गम म' का मनीष सयुक्त परिवार म अपने को एडजस्ट नही कर पाता है इसलिए दूसरे शहर मे अध्ययन के बहाने चला जाता ह। दो बहिना का यह परिवार रिश्तो से बँधा है लेकिन मन स दूर दूर ह। मनीष भी इसी ग्रथि से ग्रस्त है। वह मा के द्वारा अपने को मौसी के हाथा सौप दिए जाने को पस द नही करता इसलिए तनावग्रस्त इस घर को ज्वालामुखी का घर कहता है जिसम किसी भी क्षण विस्फोट हो सकता है। एसी ही अनुभूतिया मौसी के लडके हरि की भी हैं। वह अपन को परासाइटस मानता है और घर मे अपन परिवार की स्थिति नौकरा म भी अधिक गई बीती समझता है। आन्तरिक प्रेम एव त्याग भावना तथा नतृत्व के निणय की अक्षमता के कारण उप यास परिवार के विघटन का एसा स्वरूप प्रस्तुत करता है जिसमे परिवार का प्रत्यक सदस्य एक स्वत त्र इकाई बन कर रह जाता है।

परिवार के प्रति मा यताएँ

नावें' के सोमजी परिवार का दलदल क समान अनुभव करते ह। पत्नी और बच्चे उनके लिए दलदल की तरह ह। व अनुभव करत हैं कि 'आदमी का जीवन कभी कभी कितनी बडी दलदल म फँस जाता ह कि फिर कदम आग बढाना भी कठिन हो जाता है। मालती क मिलन स पूर्व अपने परिवेश पारिवारिक नीरस दलदल म फँसकर व कितन असहाय हो उठे थ, अगर उन दिना मालती न मिलती ता? नूतन अपेक्षित पाथेय पाय बिना वे कम आगे बढत?'[83]

परिवार क सकुचित रूप को स्वीकारन वाले पुरुष पात्र सब पारिवारिक उत्तरदायित्वा का, बच्चा की शिक्षा आदि का दायित्व माता पिता का कतव्य मानत हैं। पचपन

सम्भे लाल दीवार का नील पिता की जगह सुषमा का परिव र क सार दायित्वा को ओढत देख कहता है मुझे लगता है सुषमा, कि तुम्हारा परिवार तुम्हारा अनडयू एडवान्टेज लेता है। तुम्हारे भाई बहिन तुम्हार माता पिता की जिम्मदारी ह तुम्हारी नही।'84

इस प्रकार परिवार क सदभ म पुरुषा का चितन स्पष्टत सयुक्त परिवार की प्रथा से कटने और अपन स्वतत्र परिवार की सत्ता को कायम रखन म विश्वास करता दिखाई देता है। ये लोग यह विचार भी रखत है कि पारिवारिक दायित्वा का निवाह करने की जिम्मदारी माता पिता की है। अत युवा होकर भी व परिवार क प्रति उत्तरदायित्वा को निभाने की जगह माता पिता स अलग हो जाना अधिक पसन्द करते ह। व लोग महिलाआ स भी यह अपक्षाए रखत ह कि व पुरान सस्कारा स मुक्त होकर परिवार स बाहर स्वत त्र आचरण करना शुरु कर। कुल मिलाकर परिवार और उसके प्रति अपने दायित्वा का निवाह इनका मनोनुकूल सत्य नही ह। य तो परिवार को और पारिवारिक कठिनाईया का दलदल की तरह दखत ह जिस म उलझकर पुरुष मानो आत्म व्यक्तित्व का व स्वत त्र चेतना का विकास नही कर पाता है।

धार्मिक धरातल पर पुरुष चि तन

देश म वज्ञानिक दृष्टि के प्रसार स धम भावना क स्वरूप म भी क्रमश परिवतन परिलक्षित हुआ है। धम क प्रति आस्था एव अन्ध श्रद्धा का भाव समाप्त हुआ। धार्मिक अनुष्ठाना म क्रमश शथिल्य का भाव परिलक्षित होन लगा। ईश्वर क अस्तित्व के सम्ब ध म सदह किया जान लगा। तक भावना की प्रधानता हुई और श्रद्धा का भाव क्रमश तिरोहित हाने लगा। इसक लिए धम क पुरोधाआ द्वारा साधुआ उनके दोषपूर्ण आचरणा का भी विशेष हाथ रहा है। इ हान मिथ्याचारा बाह्याडबरा और धार्मिक ढकोसलो को ही धम का रूप प्रदान किया। विवकान द क अनुसार जिस धम की जड प्रथा और रूढी म होती ह। वह दुकानदारी धम हो जाता ह। जिसम ईश्वर साध्य नही साधन रह जाता है।85

इन उपन्यासा म भी एस अनक भ्रष्ट पडिता साधुआ का उल्लख हुआ है। कृष्णकला के सन्तजी साधु की वशभूषा धारण करत है लकिन याग क लाइसस बाँटत ह। गुफाआ म अण्डरग्राउण्ड बिजनस चलात ह। दिल्ली म ब्यूटी क्लीनिक चलात ह। भोली भाली लडकिया को फँसात ह। मास भक्षण करन म सकोच नही करत। सिर पर जटाजूट ठुड्डी पर दाढी, गैरिक वसन, कठ म रुद्राक्ष की माला सिरहान कमण्डलु और अण्डा हडिडया का फलाहार। फिर उसन स्वामी जी क गटागट घुटक गए किसी रहस्यमय पय की गटागट ध्वनि भी सुनी।86 चान्ह फरे म भ्रष्ट साधु

अहल्या का अपना शिकार बनाने की चेष्टा म असफल होने पर कहते है 'बच्चा परमानन्द, एक भी गोली तून साथ म धर दी होती, तो शिकार न छिटकता वैसे तो सानी दूसरी छोकरी ही तमचा थी, यहा से एक पहाड़ी छोकरी को ले जाकर मैंने हैदराबाद म सात हजार मे बेचा था।'[87] तान्त्रिक साधना म निष्णात पवित्र शान्त जीवन जीने वाला 'भरवी' का तान्त्रिक भी अन्ततोगत्वा नायिका चदन के रूप की ज्वाला म तपकर पिघल जाता है और उसे पाने के लिए प्रयत्नशील हो जाता है।

दूसरी ओर धम की महिमा का प्रकट करते हुए 'मुझे माफ करना' का सेठ कहता है 'धम और सत्य ही जीवन की आधारशिला है, उसी पर चलकर हम ससार की ऊची चोट तक पहुँच सकते है और उस अजानी दुनिया मे भी इन्ही के सहारे वहा का भी माग प्रशस्त करते ह।'[88] किन्तु धम एव धार्मिक क्रियाओं के प्रति इन पुरुषों म अधिक आकषण नही है। स्वय सेठजी यज्ञोपवीत, सध्या आदि म ऊपरी तौर पर रुचि लेते ह। इसी प्रकार 'सूखी नदी का पुल' के राय साहब एव उनके पुत्र पूजा आदि म रुचि न रखते हुए भी पारिवारिक पूजा अचनाओ मे उपस्थित रहते है।

धार्मिक सकीणता

इन उपन्यासो म कई पुरुषो म धार्मिक सकीणता के भी दशन होते है। 'अपनाघर' का मखाएल उस यहूदी परिवार का सदस्य है जो दो सौ वर्षों से भारत मे रहता है लेकिन इजराइल बनने पर वह अपनी अन्ध धार्मिक आस्था के कारण परिवार तक को छोड कर इजरायल चला जाता है 'उसको एक ही धुन थी—मैं उस पवित्र नगरी म जाऊँगा, उसके पुरातन मन्दिरो मे प्राथना करूँगा, उन गलियो म घूमकर देखूगा जहाँ हमारे राब्बी रहा करते थे। वह देश देखूगा जो प्रभु ने अपने हाथो पर मोशे को दिखाया था। वह पवित्र सियान पवत देखूंगा जहा प्रभु ने मोशे को दशन दिए थे।'[89] 'नयना' के प जाचस्पति गोस्वामी के समथक है और इस विचार को पालते ह कि महात्मा गाधी धम का नाश करने पर तुले हुए ह 'भारतवष म बाहर वर्णाश्रम धम का लोप हो गया ह, सिफ ब्रह्मावत-क्षेत्र म धम की एक टाग बची है सो उस भी आप लोगो के गाधीजी काट डालना चाहते है।'[90] इनम धार्मिक सहिष्णुता का सवथा अभाव ह। हिन्दू मुस्लिम को एक करने के महात्मा गाधी के विचारो का विरोध करते हुए कहते ह 'म तो उनको त्रिकाल मे भी महात्मा नही मान सकता। हिन्दू मुस्लिम कही एक हो सकते है। हिन्दू पूरब तो मुसलमान पश्चिम। सो य महाशय कहते–हिन्दू मुसलमान एक हो जाय ।'[91] इसी उपन्यास म नयना जब पीयसन की प्रेरणा से शिक्षित होकर ईसाई धम की ओर झुकने लगती है तो उसके पत्नि पति शताब्दी के भडकाने से स्वराज्य के लिए सघष करने वाला कान्तिचन्द्र भी कहता है 'नयना लाख मेहतर की बेटी हो, है तो हिन्दू ही। एक

राजनैतिक धरातल पर पुरुष चिंतन

आज के व्यक्ति के चिन्तन को राजनीति ने अत्यधिक प्रभावित किया है। राजनीति के प्राधान्य के साथ ही वर्तमान युग नूतन भावबोध को लेकर उपस्थित हुआ। 'नरक दर नरक' का जोगेन्दर राजनीति के स्वरूप को व्याख्यायित करते हुए उसे एक निश्चित विश्व आशय समझता है। उसी के शब्दों में 'राजनीति का अर्थ तुम जैसे मदवा के लिए वह पसर पसर है जो तुम्हारे कुए में चलती है। मेरे लिए राजनीति का एक निश्चित विश्व आशय है। हम उससे बचना भी चाहें तो नहीं बच सकते। कोई भी यथार्थजीवी रचनाकार उससे बचकर सार्थक रचना नहीं कर सकता।'[98]

आजादी का मोहभंग

इन उपन्यासों में राजनीतिक स्वतन्त्रता के दुष्परिणामों को लेकर मोहभंग का भाव भी पुरुष पात्रों के चिन्तन का अंग बना हुआ दिखाई देता है। 'सागरपाखी' के स्वरूप आजादी की लड़ाई में सक्रिय भाग लेते हैं। किन्तु आजादी के बाद की स्थितियों को लेकर हुए अपने मोहभंग को इन शब्दों में व्यक्त करते हैं—'तब मुझे पता नहीं था कि जिस आजादी को लेकर मैं इतना आनन्दित हूँ—वही आजादी मेरे लिए उम्र कैद का परवाना है। मेरे सुख, मेरे सपने, मेरी कामनाएँ बंद हो गई हैं। हमेशा हमेशा के लिए। मेरे हाथ पाँव सब जाम है। असहाय सा पड़ा हूँ।'[99]

'इन्द्रधनुषी' में देश की बदलती हुई परिस्थितियों का चित्रण करते हुए पाण्डेजी कहते हैं 'शालीन कपड़े पहन, आँख झुकाकर चलने वाले नम्र राहगीर को अब कोई नहीं देखता पर सड़क पर लेट कर नाचने लगा, प्रधानमन्त्री की गाड़ी का रोकने वाला 'नया निलज्ज व्यक्ति' पल भर में प्रधानमन्त्री से भी अधिक प्रसिद्धि पा लेता है। क्या? इसलिए कि अब इस निराले प्रजातन्त्र में न्युसेंस वैल्यू बढ़ गयी है।'[100]

उसके हिस्से की धूप का मधुकर अपने साथियों के साथ कॉलेज में हड़ताल करा देता है क्योंकि उसकी मान्यता है 'यह लोकसभा भंग करनी होगी। अब न मौजूद व्यवस्था को स्वीकार किया जायगा और न इस भ्रष्ट चुनाव प्रणाली का।'[101] नेताओं की अवसरवादिता से इस इतनी घृणा है कि वह कहता है 'मंत्री बनने या और फरमान के लिए अवसरवादियों की कतार पहले ही कुछ कम लम्बी नहीं है। उनको और उन्हें मुबारक।'[102]

राजनीतिक दलों के प्रति विचार

इन पुरुषों के चिन्तन में राजनीतिक दलों, उनकी विचारधाराओं, उनकी गतिविधियों इत्यादि का चित्रण नहीं हुआ है। पुरुषों के चिन्तन को प्रभावित करने वाला यह पक्ष

अनुपस्थित है केवल काग्रेस की स्वतत्रता पूव की गतिविधियो का उल्लेख हुआ है। इसी प्रकार 'नरक दर नरक' का वजाय अल्पसख्यका की उपेक्षा क प्रश्न पर भिन्न आतिश के दृष्टिकोण को पसन्द नही करता और कहता है अगर हम हिन्दू हिन्दू होकर सोचें तो आप हम जनसघी कहते ह। 103 साम्यवादी चिन्तन का अवश्य इन म जोगेन्द्र साहनी राजनीतिक दल क पीछे विदेशी दिखाई देता है विचारधारा का विरोध करते हुए कहता है 'तुम्हारे साथ यही तो मुश्किल है विनय कि इधर तुम्हारा मास्टर रूस है रूस न होता तो अमरिका होता। बिना मास्टर क तुम अपनी किताब पढना नही सीख। 104

राष्ट्रीयता की भावना

राष्ट्रीयता की भावना को लेकर भी पुरुष चिन्तन उपन्यासा म उपस्थित है। उसके हिस्से की धूप का मधुकर अवसरवादी राजनीतिज्ञा का विरोध करता है और कहता है दुनिया की मुझे चिन्ता नही है वह अपना ख्याल बखूबी रख रही है। म अपने अभागे देश के लिए कुछ कर सकू तो बहुत होगा। जबकि इसी उपन्यास का जितेन पढे लिखे लोगो द्वारा बात बात म विदेश की दुहाई देने की भावना का विरोध करते हुए कहता है ओह! फ्रास! विदेशा के उदाहरण मुझे मत दीजिए बहुत बेमानी लगते है। अपने देश की बात कीजिए है यहा बुद्धिजीवी जो किसी ठोस चीज का सचालन कर रहा है? अलबत्ता सुझाव हर मिनिट तक की रफ्तार से जरूर दे रहा है।'105

देश के पिछडेपन को लेकर भी इन पात्रा म प्रबल क्षोभ दिखाई देता है। 'रुकोगी नही राधिका' का मनीश सात वर्ष विदेश म रह कर वापस लौटता है देश की दुर्दशा से इसे तीव्र दुख होता है। राधिका स अपनी मनोदशा प्रकट करते हुए कहता है मेरा मन बार बार हुआ कि मैं किसी स चीख कर कहूँ कि आप लोगो ने किसी स्वस्थ दिशा की ओर तरक्की क्यो नही की। माना कि हम पिछडे हुए है, पर हम कम से कम सभ्य और शिष्ट तो हो सकते है। अपनी जहालत और आलस्य को दूर कर सकते हैं। पर नही यहाँ तो यह है कि जिसस जितना बन पडता है उतना ही सताने पर तुल जाता है। 106 इन उपन्यासा म राष्ट्रीयता की दृष्टि स सोचने वाले ऐसे पुरुष भी है जो देश क पिछडेपन को दूर करन क लिए मौलिक विचार रखते है। 'पानी की दीवार' के राज के अनुसार हमम मिशनरी भावना होनी चाहिए। विदेशी दूसरे देशा म अपने धर्म भाषा तथा सभ्यता का प्रचार करते है विदेश की जलवायु का प्रकोप सहते है। हम अपने ही देश क जलवायु म अज्ञान को दूर नही कर सकते? हम कोई अधिकार नही कि गर्मियो की छुट्टी म हम शिमला मसूरी और अन्य पहाडा पर जाएँ और सर सपाटे करके आ जाएँ। हम इन छुट्टिया म घूम घूम कर शिक्षा कर प्रचार करना चाहिए। 10

इस प्रकार इन उपन्यासो के युवा वर्ग में जहाँ एक ओर राष्ट्रीयता की तीव्र, दृढ भावना है तो वहीं भ्रष्ट राजनीतिज्ञों अवसरवादी व्यक्तियों के प्रति बेहद अरुचि और घृणा का भाव भी है। किसी दल विशेष के प्रति आस्था या दुराग्रह का भाव इन पुरुषों में सम्भवत इसीलिए दृष्टिगत नहीं होता है। उसकी जगह इनमें दिखाई देती है असन्तोष की, क्रान्ति की या विरक्त समझौतापरस्ती की निरुपाय, हताश चेतना।

व्यवस्था के प्रति दृष्टि

व्यक्ति की आशाओं आकांक्षाओं को कुचल देने वाली एवं उसके विकास में पग पग पर रुकावटें पैदा करने वाली वर्तमान व्यवस्था से भी इन्हें चिढ है।

व्यवस्था के नग्न घिनौने रूप को प्रस्तुत करते हुए जोगेन्दर तन्खी में कहता है 'इस व्यवस्था में आपको अपना भविष्य बनाना है तो एक तोप पैदा कीजिए, ताकत की तोप पैदा कीजिए, ताकत की तोप—कोई मोटा व्यापारी, कोई धाकड संसद-सदस्य, मंत्रीजी का कोई खास सगा-ऐसी कोई तोप ढूंढिये और हिन्दुस्तान के नक्शे पर छा जाइए। फिर भूल जाइए कि देश में एक कानून व्यवस्था है जिसके हाथ लम्बे कहे जाते हैं। कानून जनता के लिए हैं, जनार्दन के लिए नहीं। सूत्र से सूत्र योजना लाइए, उसे पूरा करने के लिए आपको सब सुविधाएँ दी जायेंगी। बरसों आराम से रेत से तेल निकालते रहिए, नज़र में ट्यूबवेल लगाइए, फिल्म बनाइए अभिनन्दन ग्रन्थ निकालिए।'[108] इन नवयुवकों में नेताओं और उनके भाषणों से भी चिढ है क्योंकि इस राष्ट्र ने उन्हें दिया क्या है? 'एक कुत्ता नौकरी एक आधा अधूरा घर, सटाऊ का चार छपी चोलिया, तारों के घेरे।'[109]

साहित्य के माध्यम से भाषा का परिष्कार करने की क्षमता रखने वाले साहित्यकारों के आचरण से भी ये असहमत हैं। इनकी धारणा है कि ये लोग भी या तो व्यवस्था का ही पर्याय हैं या फिर व्यवस्था के पैसों पर पलने वाले जीव हैं। 'उसके हिस्से की धूप' में मधुकर व्यवस्था के साथ जुड़ जाने की लेखकों की प्रवृत्ति का विरोध करते हुए यह कहता है 'मतलब यह कि तुम लोग, जो अपने को लेखक बतलाते हो, अपने-अपने गन्दे पानी के गड्ढों में बैठे मेढक समान अपने अपने अनुभव ही देख सकते हो और कुछ नहीं। उन्हीं को उलट पलट कर कागज काले करने में खुश रहते हो। अव्यवस्था के नाम पर डर कर भाग खड़े होते हो और शान्ति का पाठ पढाने लगते हो। क्यों? इसलिए कि तुम मालमत्ते से भरी पलती हुई व्यवस्था के भरोसे हो।'[110]

परिवर्तन के सम्बन्ध में विचार

व्यवस्था में परिवर्तन के लिए मधुकर क्रान्ति का पक्षधर है। वह समूची व्यवस्था के विरुद्ध मोर्चाबन्दी करना चाहता है इसके लिए वह युवा वर्ग को प्रोत्साहित भी

करता है। इसकी आस्था है कि 'देश के युवा वग की ताकत कोई छोटी मोटी ताकत नही है। सगठन के साथ मोर्चा लेंगे तो व्यवस्था को उनकी बात सुननी ही होगी।'111 क्रांति के प्रति आस्था रखन वाला वह पुरुप वर्ग क्रांति के समय की अराजकता को अनिवाय मानता है लेकिन उस दोप के कारण क्रांति का छोड देन का तयार नही है। मधुकर के अनुसार इस व्यवस्था को तोडकर दूसरी व्यवस्था लान म कुछ समय के लिए अराजकता फलगी ही। पर उसके डर स क्या प्रतिवाद करना छोड देना होगा।'112

क्रांति की रूपरेखा क्या होगी ? यह तो इन उपन्यासा स स्पष्ट बात नही होती लेकिन मधुकर अपने समस्त युवा व्याख्याताओ एव छात्रो के द्वारा हडताल कर क्रांति के साथ आगे बढने की प्रेरणा देता है। पिकेटिंग करना भ्रष्ट लाक सभा को भग करना वतमान चुनाव पद्धति को अस्वीकारना इत्यादि इसम शामिल ह।

इस प्रकार इन उपन्यासा के पुरुप पात्रा म वतमान व्यवस्था के प्रति तीव्र असतोष है और भ्रष्ट व्यवस्था को दूर कर उसम सुधार करन की महती आकाक्षा है। एतद्विपयक उनका चिंतन बहु आयामी है। व्यवस्था स समझौता करन वाले विवश लोग भी यहाँ है आक्रोश की भावना रखन वाल भी हैं क्रांति के द्वारा सम्पूर्ण व्यवस्था को उखाड फकने की अभिलाषा रखने वाले लाग भी है। क्रांति के प्रति आस्था रखने वाला पुरुष वग समाज म स्कूलो कालेजो म सवत्र क्रांति करना चाहता है। क्रांतिकालीन अराजकता को ये अनिवाय मानते ह लेकिन उस दोप के कारण क्रांति को छोडने को ये तयार नही है।

आर्थिक धरातल पर पुरुष चिंतन

आर्थिक धरातल पर पुरुषो का चिंतन राष्ट्रीय एव व्यक्तिगत दोना सन्दर्भों म प्रकट दिखाई देता है। उसके हिस्से की धूप का मधुकर देश की बिगडी अथव्यवस्था के लिये पूजीपतियो को जिम्मेदार ठहराता है। इसका यह भी विश्वास है – कि हमारे अथशास्त्री एसट बुद्धिजीवियो की तरह अथशास्त्र की दलीलो को हवाई पतगो म बाधकर उडाते रहते हैं। वे इस सत्य को नही समझते हैं कि इस देश की आर्थिक समस्याओ को सुलझाने के लिए सामाजिक बदलाव की कितनी और कहा आवश्यकता है ?' दूसरी ओर एक बहुत बड उद्योग समूह से जुडा हुआ जितेन प्राध्यापको की बातो का निष्क्रिय चिन्तन का परिणाम मानता है। यह कमठता को पसन्द करता है और थोथी दलीलो का पक्षधर नही है। उसी के शब्दो मे बात यह है कि इकनामिक्स की जागन मुझे कभी भी अथपूर्ण नही लगी और न ही उसके टोटके जो इकनामिस्ट लोग हर समस्या के हल के लिए इतमीनान स पेश करते रहते है। 113

इन उपन्यासा के पुरुप पात्रो मे व्यक्ति के स्तर पर आर्थिक दशा से विडम्बनापूर्ण

समझौता करने का भाव भी दृष्टिगत होता है। व्यक्ति की इस कुण्ठा की अभिव्यक्ति देते हुए 'अपना घर' का कामगार इसहाक कहता है 'मैं मुश्किल से आटा और दाल खरीद पाता हूँ दुकानदार प्रतिवर्ष नई गाडी खरीदता है। मैं उसकी तरह व्यापारी नहीं बन सकता। उसके लिए पैसे की आवश्यकता है और मेरे पास पैसा नहीं है। मजबूरन मुझे दुकानदार जो देता है वह लेकर चुप रहना पड़ता है। मैं अपनी तरह मेहनत करने वालों की बात कर रहा हूँ।'[111] मेहनत कश व्यक्ति की यह निराशा उसे अवैध तरीके से धनोपार्जन करने की प्रेरणा देती है। इसके सम्बन्ध में इसहाक कहता है 'सभी काम करने के पश्चात् भी यदि आपके बाल बच्चे भूखे मरें, तो क्या काम में मन लगेगा? इसी निराशा के कारण उसका मन गलत की ओर जाता है। वह आसानी से पैसा कमाने की सोचता है। कपडा, लत्ते, घर का किराया राशन के पैसे एक नहीं हजारों समस्याएँ होती हैं। गलत के साथ शराब की लत लग जाती है और इस आग में वह अकेला नहीं जलता, अपने साथ सारे परिवार को समेट ले जाता है।'[110] शिक्षित पुरुषों में भी यही कुण्ठा दिखाई देती है। विदेश में शिक्षा प्राप्त स्वामी नहीं राधिका' का दिवाकर इस बात से कुण्ठित है कि 'उसका वेतन कम है।' मेरा वेतन इतना नहीं कि मैं कभी कभार दोस्तों को बुलाकर उन्हें अच्छी शराब पिला सकूं या एक नौकर रख सकूं। जिससे कम से कम मुझे दूध लेने के लिए खड़ा न होना पड़े।'[11c]

निष्कर्ष

महिलाओं के उपन्यासों में चित्रित पुरुष के व्यक्तित्व के विविध दिशाओं पर प्रथक चर्चा करने के बाद अब उसका निष्कर्ष रूप में निम्न प्रकार रखा जा सकता है—

1 महिलाओं ने अपने उपन्यासों के पुरुषों को मांसल के धनी रूप में ही चित्रित किया है। जहाँ कहीं पुरुषों में शारीरिक दृष्टि से दोष या कमियाँ प्रस्तुत हुई हैं उनको भी पत्नी की दृष्टि में अच्छाई के रूप में स्वीकार कर लिया गया है। इससे लेखिकाओं की पुरुष दृष्टि की प्रारम्भिक जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

2 यही स्थिति पुरुषों की वेशभूषा के प्रति रुचि एवं साज सज्जा की प्रवृत्ति के सम्बन्ध में भी परिलक्षित होती है। सज धजे पुरुषों को चित्रित करने में अधिक रुचि ली गई है। ऐसे पात्र नगण्य हैं जो वेशभूषा के प्रति उपेक्षा का भाव धारण किए रहते हैं। करीब प्रायः समस्त पुरुष पात्रों को मांसल के धनी होने के साथ साथ वेशभूषा में भी सुसज्जित दर्शाया गया है।

3 पुरुष चिन्तन के समस्त धरातलों को इन उपन्यासों के पुरुष पात्रों में देखा जा सकता है यह दूसरी बात है कि जो प्रसंग नारी की मान्यताओं के अधिक निकट

महिलाओं के उपन्यासों में पुरुष व्यक्तित्व

या फिर किसी न किसी रूप में नारी से जुड़े हुए हैं उन्हें ही विस्तार के साथ वर्णित किया गया है। जबकि जीवन के अन्य प्रसंगों को साधारण ढंग से चित्रित कर दिया गया है। यही कारण है कि सामाजिक धरातल पर पुरुष का व्यक्तित्व सर्वाधिक विस्तार से वर्णित हुआ है। इनमें भी परिवार एवं उससे जुड़ी हुई स्थितियों में सम्बन्धित पुरुषों का चिंतन-पक्ष मुखरता से वर्णित हुआ है। पुरुषों का आचरण आज के पुरुषों के समस्त रूपों को उद्घाटित करता है और नारी की पुरुष समझ के बहु आयामों को प्रकट करता है।

4 विवाह के बारे में पुरुषों की जो धारणाएँ हैं उसके विविध पहलू उपन्यासों में उद्घाटित हुए हैं। विवाह के लिए प्रेम को ये अच्छा समझते हैं और प्रेम के बिना विवाह को निरर्थक मानते हैं। विवाह सम्बन्धी संकीर्णताओं से भी मुक्त हो रहे हैं। पत्नी से ये अपेक्षाएँ करते हैं कि वह विवाह के बाद उनकी शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति ही नहीं करेगी बल्कि उसके जीवन का पूरक बनते हुए उन्हें मानसिक संतोष भी प्रदान करेगी। विवाह के लिए रोमांस को भी नयी पीढ़ी के पुरुषों द्वारा स्वीकारा गया है। फिर भी विवाह करते समय ये पत्नी को अक्षतयोनी देखना चाहते हैं। दहेज के सम्बन्ध में इनके विचार अपेक्षाकृत अधिक पुरानापन लिए हुए हैं। दहेज को पसंद करने की प्रवृत्ति इनमें है दहेज के कारण पत्नी के दोषों की ओर ध्यान न देने वाले पुरुष भी हैं। इसको अस्वीकारने वाले पुरुष भी देखे जा सकते हैं। पत्नी की मृत्यु पर पुनर्विवाह करने की प्रवृति है किंतु उम्र में छोटी पत्नी के प्रति सहिष्णुता का अभाव है। पुरानी और नयी पीढ़ी के पुरुषों के चिंतन में अंतर्जातीय तथा अन्तर्धार्मिक विवाह के सम्बन्ध में विरोधी विचार हैं। पुरानी पीढ़ी के लोग अपनी संकीर्णताओं के कारण इन्हें पसन्द नहीं करते जबकि नयी पीढ़ी के पुरुष इस दृष्टि से उदार हैं। तलाक के प्रति इनकी धारणाओं में बदलाव आया है। तनावपूर्ण जीवन जीने की अपेक्षा तलाक ले लेना अच्छा समझते हैं। लेकिन तलाक शुदा नारी के प्रति अभी तक पुरुषों में घृणा का भाव है। पत्नी की इच्छाओं का आदर करते हुए तलाक के बिना भी मनोवांछित पुरुष के साथ चले जाने की अनुमति दे देने वाले पुरुष भी देखे जा सकते हैं।

5 समाज की अन्य समस्याओं के प्रति पुरुषों का दृष्टिकोण अधिक विस्तार से वर्णित नहीं हुआ है। भ्रष्टाचार को स्थापित सत्य मानते हुए ऐसा करने में किसी प्रकार का संकोच नहीं करते। राष्ट्रीय दृष्टि से सोचने वाले पुरुषों में इसके प्रति विरोध का भाव भी है। वे भ्रष्ट व्यवस्था को पूरी तरह बदलकर नयी व्यवस्था स्थापित करना चाहते हैं किन्तु ऐसा सोचने वाले सुधारवादी पुरुषों की संख्या बहुत कम है। वेश्या वृत्ति के प्रति विशेष दृष्टि का संकेत नहीं मिलता लेकिन वेश्यागमन करने की प्रवृत्ति

अवश्य इन पुरुषों में यत्र तत्र परिलक्षित होती है। मुनाफाखोरी, बेरोजगारी जैसी महत्वपूर्ण सामाजिक समस्याओं के प्रति पुरुषों के स्पष्ट विचार उपन्यासों में प्रकट नहीं हुए है।

6 परिवार के प्रति भी इनमे परिवर्तित चिन्तन दृष्टिगत होता है। संयुक्त परिवार को पसंद करते हुए भी उसका निर्वाह करने की अपेक्षा विलग होकर स्वेच्छया स्वतन्त्र रहने की प्रवृत्ति अधिक है। परिवार की कठिनाईयों को वे दलदल की तरह स्वीकारते है और उनसे यथासम्भव भागने की चेष्टा करते है। पारिवारिक दायित्वों के निर्वाह की जिम्मेदारी माता पिता की मानते है युवा पुत्रो की नही।

7 वर्तमान व्यवस्था के प्रति सामान्यत असन्तोष का भाव ही परिलक्षित होता है। भ्रष्ट व्यवस्था को दूर कर उसमे सुधार करने की इच्छा भी रखते है। विवश होकर व्यवस्था मे समझौता करने वाले पुरुष भी चित्रित हुए है। सुधारवादी दृष्टिकोण रखने वाले पुरुषो मे क्रान्ति के समर्थन का भाव है। इनकी दृष्टि मे स्कूल, कालेज भ्रष्ट व्यवस्था से ओत प्रोत है इसलिए उनमे भी बदलाव लाया जाना चाहिए। साहित्यकारो के प्रति इनकी यह धारणा है कि ये व्यवस्था से जुडे हुए है उसी के भरोसे पलते है अत उनसे क्रान्ति का नेतृत्व करने की आशा नही की जा सकती है। ये केवल क्रान्ति के द्वारा ही सुधार की आशा करते है। क्रान्तिहीन अव्यवस्था को भी सत्य मानकर चलते है।

8 धर्म के सम्बन्ध मे इन पुरुषो के विचार आधुनिकता के निकट है। धर्म की सामयिक तथ्यगत व्याख्या करने का प्रयास करते है। वैज्ञानिक जीवन दृष्टि अपना लिए जाने के बावजूद ईश्वर के प्रति आस्था अभी तक पूरी तरह समाप्त नही हुई है। किन्तु धर्म के प्रति उपेक्षा का भाव ही सामान्यत दृष्टिगत होता है। धर्म के नाम पर ढोंग करने वाले, उसे दुकानदारी का रूप दे देने वाले पंडितो, साधुओ के आचरण की ये सुनकर निन्दा करते है। इसी प्रकार बाह्याचारो का विरोध भी इन पुरुषो मे है।

9 राजनीति के सम्बन्ध मे इन पुरुषो का चिन्तन आज के युवा वर्ग के चिन्तन को ही प्रकट करता है। राजनीति को स्वार्थकेन्द्रित संकीर्णताओ से ऊपर उठकर नव विश्व मानव के रूप मे देखते हैं। स्वतन्त्रता के पश्चात् की राजनैतिक संकीर्ण मनोवृत्ति से ये मोहभंग की पीडा से त्रस्त दृष्टिगत होते हैं। सत्ता के लिए दौड धूप करने वाले नेताओ से इन्हे घृणा है। राजनैतिक दलो मे सर्वांगीण चिंतन का सर्वथा अभाव है। राजनीति की आधारभूमि के रूप मे राष्ट्रीयता की भावना को भी स्वीकार करते हैं। इनमे से कुछ पुरुषो मे राष्ट्रीयता की प्रखर भावना दृष्टिगत होती है। ये इन की

समस्त समस्याओं को राष्ट्रीय दिशा देना चाहते हैं। इन के निष्कर्ष में शुभ है और मिशनरी भावना से उसे दूर करने में समर्थ है।

10 इन पुरुषों का आविर्भाव निश्चित ही व्यक्ति एवं राष्ट्र दोनों स्तरों पर प्रकट हुआ है। व्यक्ति के स्तर पर अर्थाभाव की कुण्ठा का संकेत मिलता है। विषम परिस्थितियों से जूझते हुए समझौता करने की प्रवृत्ति के दर्शन भी होते हैं। राष्ट्रीय स्तर पर बिगड़ी हुई अर्थ व्यवस्था के लिए पूँजीपतियों एवं राजनेताओं को दोषी ठहराया गया है। इसी प्रकार बुद्धिजीवियों तथा अर्थशास्त्र के प्रोफेसरों के अध्याय नागरिक चिन्तन के कारण बिगड़ी हुई अर्थ व्यवस्था में सुधार नहीं होता इसका पालन करते हैं। श्रमिकों के प्रति मौखिक सहानुभूति प्रकट करने के प्रति भी उपेक्षा का भाव स्पष्ट है।

इस प्रकार समन्वित दृष्टि से ये पुरुष पात्र आज के साधन सम्पन्न शिक्षित पुरुष की मान्यताओं को ही प्रस्तुत करते हैं। जो वेशभूषा एवं बाह्य व्यक्तित्व के प्रति विशेष जागरूक है। सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, नैतिक इत्यादि समस्याओं के प्रति निजी मान्यताएँ रखता है। इसका जीवन दर्शन इन सबसे सम्बन्धित परस्पर विरोधी भावनाओं से जुड़ कर पुरुष के एक समन्वित व्यक्तित्व को प्रकट करता है।

सन्दर्भ

1 कृष्णकली—पृ 125
2 मायापुरी पृ 15
3 कैंजा पृ 14
4 विषकन्या—पृ 29
5 वही—पृ 28
6 कैंजा—पृ 13
7 ज्वालामुखी के गर्भ में (धर्मयुग 16 मार्च 1975 पृ 11)
8 श्मशान चम्पा—पृ 17
9 गहरा (सा. हि. हिन्दुस्तान 2 नवम्बर 1975—पृ 23)
10 वही
11 कृष्णकली—पृ 160
12 वही—पृ 161
13 निर्झरिणी और पत्थर—पृ 17
14 वह तीसरा (धर्मयुग 28 सितम्बर 1975—पृ 8)

15 उसके हिस्से की धूप—पृ 64
16 मनोविज्ञान—नारमन एल मन (अनु आत्माराम शाह) पृ 206
17 वही
18 टूटा हुआ इन्द्रधनुष—पृ 16
19 कृष्णकली—पृ 169
20 वही—पृ 161
21 वही पृ 162
22 नरक दर नरक—पृ 88
23 कृष्णकली—पृ 126
24 वही पृ 110
25 पानी की दीवार पृ 15
26 सूखी नदी का पुल पृ 131
27 उसके हिस्से की धूप—पृ 147
28 इन्हीं—पृ 110
29 नावें पृ 43
30 पानी की दीवार पृ 66
31 वही पृ 65
32 रुकोगी नहीं राधिका—पृ 184
33 सानाली दी—पृ 18
34 उसके हिस्से की धूप पृ 149
35 काली लम्बी पृ 145
36 बेघर—पृ 153
37 वही
38 वही—पृ 167
39 मोहल्ले की बुआ—पृ 69
40 नावें पृ 112
41 वही—पृ 113
42 पाषाणयुग (धर्मयुग 28 दिस 1975 पृ 33)
43 वह तीसरा (धर्मयुग 28 दिस 1975—पृ 8)
44 वही
45 विषकन्या पृ 24
46 कृष्णकली—पृ 210
47 बेघर पृ 163
48 कृष्णकली—पृ 210
49 सूखी नदी का पुल—पृ 18
50 वही पृ 84
51 रुकोगी नहीं राधिका पृ 41
52 पाषाणयुग (धर्मयुग 28 दिस 1975—पृ 32)

53 वही–पृ 34
54 वही–पृ 39
55 रति विलाप–पृ 19
56 सूखी नदी का पुल–प 70
57 उत्सग–प 86
58 वही–पृ 75
59 रेत की मछली–पृ 54
60 इनी प 168
61 वही–पृ 7
62 श्मशान चम्पा–पृ 41
63 आपका बंटी–प 44
64 वही–पृ 117
65 महानगर की मीता (सा हि दु जन 67–प 40)
66 उसके हिस्से की धूप पृ 149
67 वही–पृ 150
68 वही–पृ 173
69 अमलतास
70 दूरियाँ–पृ 61
71 वही–पृ 67
72 सूखी नदी का पुल–पृ 67
73 नरक दर नरक पृ 58
74 वही–पृ 59
75 पतझड़ की आवाज–पृ 130
76 नरक दर नरक–प 76
77 विवाह और नतिकता (अनु धमपाल)–प 97
78 इच्छाकसी प 36
79 श्मशान चम्पा–पृ 65
80 के एम पनिक्कर हिंदू सोसाइटी एट क्रास रोड्स–पृ 18
81 मित्रो मरजानी–प 64
82 वही पृ 16
83 मावें–प 17
84 बचपन खम्भ लाल दीवारें–पृ 58
85 नरक दर नरक–पृ 102
86 इच्छाकसी–पृ 201
87 चौदहफरे–पृ 130
88 मुझे माफ करना–पृ 46
89 अपनापर–प 40
90 नमना पृ 30

91 वही–पृ 29
92 वही पृ 132
93 वही
94 वही पृ 137
95 अपनाघर पृ 41
96 कविता पृ 125
97 वही–पृ 168
98 नरक दर नरक पृ 110
99 सागर पाखी–पृ 61
100 इन्द्रधनुषी–पृ 215
101 उसके हिस्से की धूप पृ 176
102 वही–पृ 58
103 नरक दर नरक–पृ 102
104 वही–पृ 169
105 उसके हिस्से की धूप–पृ 119
106 रुकोगी नहीं राधिका–पृ 123
107 पानी की दीवार
108 नरक दर नरक–पृ 102
109 वही–पृ 84
110 वही–पृ 97
111 उसके हिस्से की धूप–पृ 175
112 वही पृ 175
113 उसके हिस्से की धूप–पृ 24
114 अपनाघर–पृ 48
115 वही
116 रुकोगी नहीं राधिका–पृ 111

महिलाआ की दृष्टि मे पुरुप एक विवेचन

महिलाआ क उप यास एक दृष्टि

हिन्दी लसकाआ क इन उपन्यासा का अध्ययन करन पर कई महत्वपूर्ण तथ्य दृष्टिगत हात ह । सवाधिक महत्वपूण तथ्य यह है कि इन लखिकाआ न उपन्यास क माध्यम क रूप म प्राय स्वय क जीवन का ही अभिव्यक्ति दी है । लेखिका और पात्रा क बीच रचनाकार और रचना के रूप म जा अतर हाता है उसकी कोई सीमा रेखा नही स्वीकार की गइ है । उपन्यास म कहीं पात्र की बात लखिका की अपनी बात बन जाती है और कहीं लखिका स्वय पात्र बनकर बोलन लगती है इसका पता लगाना मुश्किल ह । अथात् अपने नारी पात्रा स लखिकाएँ कहीं कहा इतना अधिक घुल मिल गई ह कि दाना म विभेद करना सहज नही है । इस प्रकार अपनी बात का उपन्यास के कथ्य की रोचकता के माल पर उपन्यासा म प्रस्तुत करन का प्रयास किया गया है ।

यह बात भी ज्ञात हाती है कि उप यासा क अधिकाश पुरुप स्थिर पात्र ह । उनक व्यक्तित्व म विशेप परिवतन दृष्टिगत नहीं होता । प्राय परिवार एव पति पत्नी सम्ब धा म पुरुप की भूमिका को ही प्रस्तुत किया है इसलिए पात्रो क व्यक्तित्व निर्माण क अनक महत्वपूण पहलु दृष्टि ओट म हो गए ह । उनके चरित्रा म बदलाव स अवसर बहुत कम आए ह एस स्थला पर भी लखिकाआ की नारी के प्रति विशिष्ट रुझान वाली दृष्टि उनको नियत्रित करती रही ह ।

इसी प्रकार किसी एक पात्र क सम्ब ध म मान्य धारणाआ की पुष्टि क लिए लखिकाओ न उनक जीवन म एक सी घटनाआ की आवृति की है । नारी पीडा की चर्चा करत समय उसके जीवन म बार बार पीडाकर प्रसगा की अवतारणा की गई ह जस उसके जीवन म क्षणाश क लिए भी सुख की सृष्टि न हुई हा । पुरुपा क आचरण का भी एसे ही उपाया स नीचा दिखलान का प्रयास हुआ है ।

अस्तु पात्रा क निर्माण म महिलाआ का अनावश्यक हस्तक्षप दृष्टिगत हाता है । पुरुप पात्रा को भी अपनी इच्छानुसार सस्कार दन का प्रयास किया गया है । इसलिए इनक पात्र आत्म विकास के अवसरा स दूर सामान्यत लखिकाआ की इच्छाआ पर अवलम्बित ह ।

उप यासा मे चित्रित पुरुष के विविध रूप

इन उपन्यासा म चित्रित पुरुष पात्र युगीन जीवन की समग्रता का पूर्ण प्रतिनिधित्व नहीं करत । जीवन के नाना क्षेत्रा म क्रियाशील विविध पुरुषा का चित्रण इनम नहीं हुआ है । पुरुषा का चित्रित करन के लिए परिवार को मुख्य आधार बनाया गया है । पारिवारिक सम्ब धा की दृष्टि म ही पुरुष की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है । इनम भी पिता के रूप म पुरुष की भूमिका अधिक विस्तार से चित्रित हुई है । पिता के रूप म चित्रित पुरुष पात्र सामा यत पुरानी पीढ़ी के चितन एव आचरण का प्रस्तुत करत हैं । जहाँ युवावस्था के पुरुषो का चित्रण हुआ है वहा उनका आचरण परिवार म रहते हुए भी भिन्न रुचिया पर आधारित है । दोनो ही पीढ़िया के पुरुषा म पारिवारिक सघर्षों म सीधे जूझने की प्रवृत्ति नहीं है । तनाव उपस्थित होन पर पुरुष प्राय पलायनवादी रूप अपनाते हैं । ज्वालामुखी के गभ म ' उस उपन्यास म पुरानी पीढ़ी के मौसाजी पारिवारिक तनावा के समय 'वधुआश्रम' अपनात हुए पूजाघर म घुसकर समस्याओं स भागत हैं ता नयी पीढ़ी का मनीश घर के कटु वातावरण स भागकर पढाई के बहान दूसर शहर म ही बस जाता है । इस प्रकार परिवार म पुरुष की भूमिका म यद्यपि सम्बन्धा के निवाह के प्रति उत्सुकता का भाव तो दृष्टिगत होता है तथापि उसके आचरण म स्थितिया म प्रत्यक्ष जूझने की अपेक्षा पलायन करन की प्रवृत्ति प्रमुख दृष्टिगत होती है ।

विविध व्यवसायो म कमरत पुरुषा का उपन्यासा म चित्रित करन के प्रयास हुए हैं इनम भी नौकरी पेशा व्यक्तिया की मन स्थितिया को, उनके आचरण का अधिक विस्तार मिला है । अधिकाश पुरुष नौकरी पेशा ह जबकि व्यवसायी व्यापारी या अन्य क्षेत्रा म लगे हुए पुरुषा का चित्रण विस्तार स नहीं हुआ है । इससे महिलाओ क अनुभव क्षेत्र की सीमा का अन्दाजा लगाया जा सकता है । नारियाँ परिवार म ही दुनिया का दश सकी ह उससे बाहर यदि निकली भी हैं ता नौकरी पेशा महिलाओ (वकिंग वूमेन) के रूप म ही । नौकरी का क्षेत्र भी प्राय स्कूलो, कॉलेजो तक ही परिसीमित है । परिवार स बाहर इनका अनुभव क्षेत्र फलत नौकरी पेशा व्यक्ति की जीवन पद्धति तक ही फला हुआ है । यही कारण है कि नौकरी करने वाले पुरुषो को ही उपन्यासा मे अधिक विस्तार से चित्रित किया गया है । किन्तु इस दृष्टि से भी पुरुष पात्र समाज के सभी क्षेत्रो म क्रियाशील पुरुषा का प्रतिनिधित्व नहीं करते । नौकरी पेशा व्यक्तिया म सिफ उन्ही को चित्रित किया गया है जो अपेक्षाकृत अच्छी नौकरियो मे है । लेक्चरर, डॉक्टर, ऑफीसर, इन्जीनियर आदि का काय करन वाले पुरुषा का चित्रण ही लेखिकाओ ने अधिक किया है । इनके चितन मे अर्थाभाव की चिन्ता लेशमात्र भी नहीं है । इस कारण इन्ह प्रेम की पयाप्त फुरसत है । रोमानी भावनाआ से बाहर आकर ये पात्र धम, र

इत्यादि क प्रति आत्म विचार प्रस्तुत कर सक ह । इतर व्यवसाया म सलग्न पुरुपा म स भी अधिकाश साधन सम्पन्न हैं । मजदूर कृपक चपरासी सनिक, सिपाही निम्न दर्जे के व्यापारी इत्यादि अपक्षाकृत कम आय वाल पुरुषा का चित्रण अधिक नही हुआ है । इसस यह सकतित होता है कि महिलाआ का सामाजिक सम्पर्क क्षत्र बहुत सीमित है ।

नौकरी करन वाल पुरुप मिली जुली मान्यताओ क पोषक ह । अलग अलग व्यवसाय क लोगा क सामने जो अलग अलग समस्याएँ आती हैं उनका चित्रण विस्तार स नही हुआ है । तथापि उपन्यासा के पुरुप सामान्यत अपने व्यवसाया के प्रति उदासीन नही है । व्यवसाया के प्रति गम्भीरता क दशन ही होन ह इस दृष्टि म उन्ह कमठ कहा जा सकता है । यही कारण है कि व्यवस्था के प्रति चाह वह सस्थाआ स सम्बधित हा चाह समूचे राष्ट्र स सम्बधित तीव्र असन्ताप का भाव इनम है । कार्यालयो म व्याप्त भ्रष्टाचार एव अव्यवस्था के सदभ म अधिक नही कहा गया है । तथापि जा कुछ भी वणन हुआ है उसक आधार पर यह निष्कष निकाला जा सकता है कि य पुरुप उन्ह स्थापित सत्य मानते है और एसा आचरण करते समय आत्मकुण्ठा का अनुभव नही करत । आकाक्षाआ की पूर्ति के लिए भ्रष्ट साधना को अपनाने म भी सकोच नही करत । अपने अधीनस्थो स भी ऐस ही तरीका से उन्ह सन्तुष्ट करने की आशा भी करत है । कुछ आदशवादी पात्र एस भी हैं जा भ्रष्टता स क्षुब्ध हैं और ऐस चिन्तन के कारण व्यवसाय छोडन का विवश हो जाते है । नौकरी पेशा व्यक्तियो म कामजनित दुबलता को भी प्रकट किया गया है । अधिकाश पुरुप अपनी सहयोगिनी या परिचित महिलाआ के साथ यौन सम्बन्ध स्थापित करने मे सचेष्ट रहत हैं । अपवाद स्वरूप चित्रित कतिपय पुरुपो को छोडकर शप सभी नौकरी पेशा पुरुपो मे सेक्सजनित दुबलताओ का चित्रण हुआ है ।

नौकरी पेशा पुरुपो से इतर व्यवसाया म लगे हुए उद्योगपतिया व्यापारिया का चित्रण अधिक नही हुआ है । बडे उद्योगपतियो व्यापारिया क चित्रण म वविध्य एव सूक्ष्मता के दशन नही होत । उनके चिन्तन को तथा आचरण का विस्तार से प्रस्तुत नही किया गया है । व्यवसायो से जुडे हुए इन सभी व्यवसायियो म स फुटपाथ पर लघु व्यापार करने वाले पुलिस से पीडित है तो बडे उद्योगपति मजदूरो की अकमण्यता और हडतालो की चिन्ता से । बडे उद्योगपतिया म इतनी महत्वाकाक्षा है कि व देश के ही नही समूचे विश्व के सबसे बडे उद्योगपति बनना चाहते है । मध्यम दर्जे के व्यापारी सख्या म कम हैं किन्तु उनकी धन पिपासा का अन्दाजा लगाया जा सकता है । इस प्रकार व्यवसाय के आधार पर चित्रित पात्रा के व्यवहार म व्यावसायिक रुचिया सस्कारा समस्याआ आकाक्षाओ आदि का चित्रण सक्षेप म ही हुआ है ।

दाम्पत्य सम्ब ध की दृष्टि स चित्रित पुरुष पात्र महिलाओ की पुरुष चेतना का अधिक विस्तार स वर्णित करते है। इनके आचरण मे पत्नी पर अपन अहम् का आरोपित करने की प्रवृत्ति प्रमुख है। सभी पति अपनी पत्नी को अनुगता, अनुशासिता के रूप म ही देखना चाहत हैं सहधर्मिणी के रूप मे नही। जहा कही भी उनके स्वाभिमान को ठेस पहुँचती है वे क्रुद्ध हो जाते हैं। पत्नी के लिए पीडाकर स्थितिया की सृष्टि करन वाले ये पुरुष आज के पति का प्रतिनिधित्व ही करते हैं। प्राय सभी मे यौनलिप्सा की वृत्ति है और वे पत्नी से इतर स्त्रियो से सम्ब ध स्थापित करने मे सकोच नही करते। पत्नी की उपस्थिति मे या उसकी जानकारी म भी ऐसा करते हुए लज्जित नही होते। पति रूप मे प्राय सभी पुरुष पत्नी से अपने को ऊँचा समझते हैं और आत्म निर्णय को अन्तिम देखने के अभ्यस्त हैं। विवश पतियो की चर्चा भी इन उपन्यासा म अधिक हुई है। ऐसे पति पुरुष पर नारी के अह के प्रत्यारोपण के लिए प्रस्तुत किए गए है।

सामाजिक वर्गो के आधार पर पुरुषों का चित्रण अपूर्ण है। महिलाओ की लेखनी उ ही पुरुषों को लेखनीबद्ध कर सकी है जो अपेक्षाकृत सुविधा सम्पन्न हैं। जिनकी रुचियाँ कौलीन्य भाव युक्त ह। जो अर्थाभाव मे पीडित नही है। निम्न वग के पुरुष पात्र पूरी तरह अनुपस्थित ह। इससे यह सकेत मिलता है कि ऐस पुरुषो की स्थितिया से महिलाएँ अधिक परिचित नही है। नारी के इद गिद घूमने वाले इनके उपन्यासा के कथानक प्राय उन्ही नारिया की समस्याओ का चित्रण कर पाए हैं जो उच्च या उच्च मध्य वर्ग की है। इसलिए उसी परिवेश मे पुरुष को देखने-आकने का प्रयास हुआ है। पुरुषो मे वग चेतना का चित्रण भी कम हुआ है। उपन्यासो म खानापूर्ति क रूप म या प्रगतिशील लेखन की ख्याति अर्जित करने के मोह में कही-कही बुजुआ वग, दलित वग आदि की चर्चा की गई है। इससे आगे बढकर निम्न-वग के पुरुषो की यथाथ स्थिति को चित्रित करन का प्रयास इन लेखिकाओ के द्वारा नही के बराबर हुआ है।

सामान्यत शिक्षित पुरुषा का ही इन उपन्यासो म चित्रित किया गया है। अर्द्ध-शिक्षित एव अशिक्षित पुरुषा की नितान्त उपेक्षा की गई है। लेखिकाओ ने उच्च शिक्षा प्राप्त, विदेशी शिक्षा प्राप्त पुरुषा को तो उपन्यासो मे स्थान दिया है किन्तु अनपढ पुरुषा की ओर बिलकुल ध्यान नही दिया है।

क्षेत्रीय सस्कारा के आधार पर उपन्यासा मे महानगरीय चेतना को सर्वाधिक प्राथमिकता दी गई है। नगरा म रहने वाले पुरुष भी देखे जा सकते हैं लेकिन ग्राम्याचल के पुरुषा का चित्रण नही हुआ है। यह भी लेखिकाओ की उस दृष्टि की ओर सकेत करता है कि उन्होंने जो पुरुष देखा और चित्रित किया है वह सिफ

म बसाने वाला है। इनके उपन्यासों में किन्हीं पुरुष देखे जा सकते हैं लेकिन अपने ही ढंग के ग्रामीण पुरुष उनकी दृष्टि में नहीं आ सके। शिवानी ने पर्वतांचल के पुरुषों की मन स्थिति को अवश्य विस्तार में चित्रित किया है।

महिलाओं के उपन्यासों का पुरुष कौन सा है?

उपर्युक्त निष्कर्ष इस बात को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त है कि हिन्दी उपन्यास लेखिकाओं के उपन्यासों में जो पुरुष चित्रित हुआ है वह कौन सा पुरुष है? निश्चय ही वह युवावस्था का पुरुष है महानगरीय जिन्दगी जी रहा है शिक्षित है अच्छी नौकरी करता है या बड़े उद्योगों अथवा व्यापारों में लगा हुआ है इसलिए आर्थिक दृष्टि से निश्चिन्त है जिसके चिन्तन में अर्थाभाव की पीड़ा कहीं नहीं है परिवार में जिसकी भूमिका पलायनवादी वृत्तियों से परिचालित है जो घोर अहंवादी है जो पत्नी को अनुगामिनी के रूप में देखना अधिक पसन्द करता है जो यौनाक्रान्त जीवन जीता है जिसकी बौद्धिकता मात्र उसकी अपनी बात को सत्य सिद्ध करने में सचेष्ट रहती है।

उपन्यासों में पुरुष व्यक्तित्व

पात्रों के पृथक पृथक स्वरूप एवं आचरण से पुरुषों का जो एक समन्वित व्यक्तित्व निर्मित होता है उसका विश्लेषण चौथे अध्याय में किया जा चुका है। उसके आधार पर महिलाओं के द्वारा चित्रित पुरुष के व्यक्तित्व को देखा जा सकता है। उनके द्वारा चित्रित पुरुष का व्यक्तित्व निम्न प्रकार है—

महिलाओं द्वारा चित्रित पुरुष नायिकाओं की ही भाँति सुदर्शन है। पाठकों को प्रभावित करने के लिए इन्ह लेखिकाओं में एक सौंदर्य को धारण करने वाला बतलाया गया है। वह सुन्दर वेशभूषा में सुसज्जित रहने वाला है। यही नहीं उसका सौंदर्य बोध उसे अपनी प्रेमिका या पत्नी को भी सुसज्जित देखने की प्रेरणा देता है। किन्तु इस दृष्टि से ऐसे पुरुष भी देखे जा सकते हैं जो वेशभूषा के प्रति लापरवाह हैं अथवा उस दृष्टि से अधिक मितव्ययी है। उसका सामाजिक आचरण सामान्यत शिष्टाचार की सीमा के अंतर्गत ही दृष्टिगत होता है। कहीं कहीं उसके आचरण की अभद्रता परिलक्षित होती है। ऐसे अभद्र पुरुष अभद्रता करते समय किसी भी प्रकार कुण्ठित नहीं होते हैं। पुरुष में आचरणगत दोहरापन भी उसके व्यक्तित्व के एक अंग के रूप में देखा जा सकता है। घर से बाहर समाज में पत्नी के प्रति सहृदय रहने तथा घर में उसके प्रति असहिष्णुतापूर्ण आचरण करने की प्रवृत्ति भी परिलक्षित होती है।

पुरुष के व्यवहार को सुनिश्चित दिशा देने वाला उसका चिन्तन पक्ष विस्तारपूर्वक वर्णित हुआ है। शिक्षा, संस्कार, आस्था एवं निजी मान्यताओं से घिरा हुआ उसका व्यक्तित्व बहु आयामी है। विविध सामाजिक स्थितियों एवं समस्याओं के प्रति

उसकी मा यताएँ विविधोन्मुखी है। उसके चिंतन के वे पहलू जो पारिवारिक स्थितियों से जुडे हुए ह अधिक वर्णित हुए हैं। यह पुरुष सयुक्त परिवार की अपेक्षा स्वतंत्र रहना अधिक पसन्द करता है, यद्यपि सयुक्त परिवार की भावना को पूरी तरह छोड नहीं पाया है। पारिवारिक झगडों को दलदल की तरह देखता है तथा यथासम्भव उनसे भागने की चेष्टा करता है। उसका यह पलायनवाद उसके व्यक्तित्व को महत्वपूर्ण आधार देता है। परिवार के सदस्यों के भरण-पोषण को यह माता पिता की जिम्मेदारी मानता है। अत अर्थोपार्जन करते हुए भी अपनी वयक्तिक सत्ता बनाए रखना चाहता है। विवाह को अनिवार्य शारीरिक आवश्यकता मानता है, किन्तु पत्नी का मानसिक तोष देने वाली गृहिणी देखना पसन्द करता है। अर्थात् पत्नी से वे अपेक्षाए रखता है कि वह न केवल शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति करेगी वरन् उसे मानसिक शान्ति भी देगी। परिवार की समस्याओं से स्वयं जूझते हुए अनुशासिता रहेगी।

विवाह [illegible] पूर्व रोमांस को पसन्द करता है। प्रेम को विवाह का अनिवार्य आधार भी मानता ह। प्रेमिका से शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करने से नहीं हिचकिचाता लेकिन विवाह के समय पत्नी को अक्षतयोनि देखना चाहता है। दहेज से भी इसे अरुचि नहीं है, बल्कि दहेज की आशा रखने वाले पुरुष भी देखे जा सकते ह। दहेज के भारी चक्र के समग्र पत्नी के दोषों को न देखने वाले पुरुष भी हैं तो दहेज को अस्वीकारने वाले भी। पत्नी की मृत्यु पर एकाकीपन की पीडा से इतना त्रस्त है कि पुनर्विवाह करने म ही मुक्ति देखता है। बडे बडे बच्चों का पिता होते हुए भी उम्र म अधिक छोटी लडकी स विवाह करता है। लेकिन नवपरिणीता से यह अपेक्षा करता है कि वह प्रौढा का सा आचरण करेगी। इसी प्रकार एकाधिक विवाह करने म भी उसे सकोच नहीं है। विवाह के सम्बन्ध म जाति, धर्म आदि के बन्धनों को अब छोडता जा रहा है। पति-पत्नी म तनाव हो जाने पर विवश समझौता करते हुए कष्टकर जीवन जीते रहने की अपेक्षा तलाक को अधिक पसन्द करता है। लेकिन तलाक शुदा नारी के प्रति अनुकूल आचरण का भी इसम अभाव है। इस दृष्टि से मर्द के दम्भ को पालने की प्रवृत्ति अधिक है। अत्याधुनिक विचारों से जुडकर यह कहीं कहीं तलाक की आवश्यकता को भी नकारता है। पुरुष की एतद्विषयक विचारधारा का आधार नारियों के चिंतन का वह पक्ष है जिसके अंतर्गत वे आधुनिक जीवन स्थितियों से जुडकर जड मान्यताओं को तोडने की चेष्टा करती हैं।

इस प्रकार विवाह से सम्बन्धित इस पुरुष का चिंतन यद्यपि आधुनिक है तथापि यह संस्कारों की जडता से पूरी तरह मुक्त भी नहीं हो सका है और अनेक बार उन संस्कारों के कारण उसका आचरण नारी के लिए कष्टकर सिद्ध हो जाता है।

उदारमना होते हुए भी व्यवहार से यह पुरुष पूरी तरह नारी स्वातन्त्र्य और स्वावलम्बिता का समर्थक नहीं हो सका है। नारी के प्रति निरंकुशी दृष्टि इसमें यथावद् देखी जा सकती है। उस पर अपना अहं थापने में सचेष्ट रहता है। नारी को अभी तक लोभनीय वस्तु ही समझता है और अनैतिक तरीके से उसे यौनाकांक्षाओं का शिकार बनाता है। पत्नी को अनुगता रूप में ही देखना चाहता है। जब अपने अहं को, अपनी यौन बुभुक्षा को तथा अपनी इच्छा को नारी पर आरोपित नहीं कर पाता तो उससे टकराता है, कुण्ठित होता है, पलायनवादी बन जाता है।

धर्म आदि के सम्बन्ध में विचार यद्यपि अस्पष्ट हैं तथापि ये आधुनिक जीवन मूल्यों पर ही अधिक आधारित हैं। धर्म के प्रति अब बदली हुई दृष्टि दिखलाई पड़ती है। उसकी सामयिक तथा सगत व्याख्या करता है। जिसमें अंधश्रद्धा, पाप पुण्य पर आधारित चिन्तन की अपेक्षा आत्मा की कसौटी पर अच्छी बुरी लगने वाली बात को महत्व देना अधिक है। यह बाह्याडम्बर को पसन्द नहीं करता और ढोंगी तथा भ्रष्ट साधुओं के प्रति इसमें अरुचि का भाव अधिक है। इसी प्रकार राजनीति को यह एक *सुनिश्चित विश्व आशय* मानता है। स्वातन्त्र्योत्तरकालीन मोहभंग से शुरू होकर इसका चिन्तन देश के पिछड़ेपन की भावना से समस्त दृष्टिगत होता है।

महिलाओं की दृष्टि में पुरुष

इस अध्ययन के उपरान्त महिलाओं की दृष्टि में पुरुष के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहा जा सकता है कि इनकी दृष्टि में पुरुष वह है जो सुन्दर है, सुशिक्षित है, सुसज्जित है, युवा है। जो रोमांस को पसन्द करता है, प्रेमिका से शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करने में संकोच नहीं करता लेकिन विवाह के समय पत्नी को अक्षतयौनी देखना चाहता है। दहेज लेने में आनाकानी नहीं करता। पत्नी की मृत्यु पर पुनर्विवाह करता है लेकिन उम्र में अधिक छोटी दूसरी पत्नी के प्रति सहिष्णुतापूर्ण आचरण नहीं करता। पत्नी का जीवन की पूरक के रूप में देखना चाहता है और यह आशा करता है कि वह घर गृहस्थी के सारे झंझटों से उसे मुक्त रखेगी, उसे शारीरिक सन्तोष तो देगी ही साथ ही मानसिक तोष भी प्रदान करेगी। पत्नी से इतर स्त्रियों से यौन सम्बन्ध स्थापित करने में सचेष्ट रहता है। पति पत्नी के बीच तनाव आ जाने पर तलाक ले लेना पसन्द करता है। किन्तु तलाकशुदा नारी के प्रति अनुकूल विचार नहीं रखता। भ्रष्टाचार को युग सत्य मानता है और भ्रष्ट आचरण करने में सकुचित नहीं होता। वर्तमान व्यवस्था को अधिक पसन्द नहीं करता और उसे बदलने का भी इच्छुक है, किन्तु सुधारवाद के प्रति इसका झुकाव कम है। बरोज़ [illegible]
गोरी, वेश्यावृत्ति जैसी सामाजिक बुराइयों के प्रति विचारक या [illegible]
करने की अपना निजी समस्याओं के प्रति अधिक सचेष्ट है इस प्र[illegible]

(ग) पुरुष वासना य है।

1 मरद का मन चाहे वह लाख साधु, औरत मे होना है एकदम देसी कुत्ता। सामने हड्डी रख दो तो कितना सिखाया पढ़ाया हो, कभी लार टपकाए बिना रह सकता है ? (भैरवी–पृ 130)

2 सभी पति पत्नियों को उपया मे गया बीना समझने हैं। (बात एक औरत का पृ 143)

3 उसने सदव यही अनुभव किया कि प्रत्येक स्थान पर पुरुष उसकी ओर एक जसी दृष्टि म ही देखते हैं। माना वह रसगुल्ला की एक प्लेट है जिसम सबका साझे का अधिकार है। (मोम के मोती पृ 149)

4 'भ्रमर' इस भूल का नाम होगा 'भ्रमर', नारी के लिए 'कामना' नाम जितना सार्थक है, पुरुष के लिए 'भ्रमर नाम की उतना ही सार्थक। सूरदास ने 'भ्रमरगीत' ऐसे ही नहीं लिखा। और हर नारी में 'कामना' होती हो या न होती हो, हर पुरुष म भ्रमर अवश्य होता है। और किसी राम को अपने रामत्व को कभी प्रमाणित नहीं करना पड़ता वह तो 'सीतात्व' को ही अग्नि परीक्षा देनी होती है। कृष्णमय हो उठना राधा की विवशता हो सकती है किन्तु कृष्ण केवल 'राधामय' हो उठते तो सहस्त्र गोपियों सहित 'महाभारत' की लीला से लेकर 'गीता' के कर्मयोग का प्रवचन देना कम सम्भव होता ? लीलामय कृष्ण और योगीराज कृष्ण का एक नाम 'भ्रमर' कृष्ण भी तो है। किन्तु 'राधा' का कोई और नाम है क्या ? (प्रिया पृ 152)

(घ) पुरुष नीच और स्वार्थी है।

1 सभ्यता के इस युग म, पुरुष ने मनोरंजन के सब साधन अपने लिए रख लिए हैं, नारी को वसे का वैसा ही विहीन रखा है। उसके हाथ प्रतिबन्धों की एक लम्बी सूची पकड़ा दी है। (पानी की दीवार पृ 87)

2 ओह, यह पुरुष सब नीच होते ह। (मोम के मोती पृ 7)

3 पहले भी नारी की यही समस्या थी कि वह सन्तान को जन्म देती थी, पुरुष उसके शरीर म अधिक उसके व्यक्तित्व का महत्व नहीं देता था। नारी की यह समस्या अभी तक ज्यों की त्यों बनी है। (काली लड़की पृ 62)

(ग) पुरुष कमीन है।

1 मेरा यह वजकल मन जना यही नहीं जानता कि मुझमो दरियाई नार किस सुर म याद आती है मैं निगोरी वन टनके वटनो हूँ ता गवद सीना सुन्द नेत रुठ जाता है। अर जिसने नार सुम्बिार या मथाने की पढ़ाई नहीं पढ़ी वह इन बातों को क्या समझ पायेगा ? (मित्रा मरजानी पृ 34)

2 पुरुष कायर होते हैं। (मोम के मोती पृ 80)

(ङ) पुरुष पशुवत् आचरण करने वाला है।

1 पुरुष एक बहशी जानवर है, उसे बाँधोगी नहीं तो वह कभी भी काट खाता है। (बात एक औरत की पृ 86)

2 पुरुष वह कुत्ता भेड़िया है जिसने चिर पुरातन से नारी का इसी प्रकार पतन किया है। नारी का कौमार्य नष्ट करके यौवन की मादकता को समाप्त करके पुरुष हँसता है और नारी की तड़प को, उसकी पीड़ा को उसका आनन्द समझकर उस पार चला जाता है। (वेदना पृ 127)

3 पुरुष का अर्थ यह नहीं कि वह हिंसक पशु बने। पुरुष सदा ही नारी को मादक मदिरा के समान देखता है और पीता है। इस प्रकार उसकी प्यास बुझती नहीं और अधिक उत्तेजित होती है। मानव ने सुन्दर नारी का नाश कर दिया। (वेदना पृ 127)

4 पुरुष ही तो हो, भेड़िया नहीं भेड़िये से केवल एक सीढ़ी नीचे। (मोम के मोती पृ 86)

5 गिद्ध जानवर नहीं 'आदमी होता है। (प्रिया पृ 96)

6 सजय जैसे ही पति होते हैं क्या ? वहशी जानवर, सुख दुःख और अपने मन के दो शब्द तक नहीं पूछते। परिचय अपरिचय के बीच कोई सेतु नहीं वासना की कमजोर रस्सी। (बात एक औरत की पृ 51)

(च) पुरुष नारी की समता म भी दुबल है।

1 अनुभा तुम भी सुनलो इस मदजात के साथ तभी सोओ अगर माल हासिल होता हो या पोजीशन हासिल होती हो। या फिर शादी करता हो साला। वरना मजे के लिए तो क्या, प्यार की खातिर भी सो जाओ तो ये लोग समझते क्या है ? रंडी ही। रंडी को रंडी नहीं समझेंगे, उससे तो डर भी जाएँगे कभी। (पतझड की आवजें–पृ 97)

2 ओह, नो, पुरुषो को अपनी मुसीबत के बारे मे इतनी बेचारगी से मत बताओ। क्या पता, कब कौन विवश उदासियों को सवारने की आड़ म कितना फायदा उठाने की सोचने लगे। (पतझड की आवाजें–पृ 30)

3 पहले एक पुरुष परिवार भर की नारियो का भार अपने ऊपर ले लेता था। आज अपना पति भी भार लेने को तयार नहीं। (मोम के मोती–पृ 92)

इन पंक्तियो के आधार पर महिला पात्रो की दृष्टि म पुरुष का जो स्वरूप निर्धारित होता है वह मुख्यत तीन बातो पर आधारित है। पहला—पुरुष अविश्वसनीय आचरण

करने वाला है, दूसरा—पुरुष नारी के प्रति अत्याचारी और क्रूर है, तीसरा—पुरुष की यौनवृत्ति नारी को सदैव छलती रहती है। प्रश्न यह खड़ा होता है कि महिलाओं के उपन्यासों में पुरुष के व्यक्तित्व की जो छवि चित्रित हुई है उससे इन बातों का मेल अधिक क्यों नहीं है? क्योंकि उपन्यासों में पुरुष के व्यक्तित्व में सर्वांगीणता दृष्टिगत होती है, किन्तु इन प्रसंगों में नारी पात्रों ने पुरुषों के अत्याचारी स्वरूप को ही प्रायः प्रस्तुत किया है। इसका क्या कारण हो सकता है? सूक्ष्मता से देखने पर इसका जो कारण नजर आता है वह यह है कि लेखिकाओं की मूल दृष्टि नारी की पीड़ा पर ही केन्द्रित है। नारी की पीड़ा ही उनकी प्रेरणा स्रोत रही है। प्रारम्भिक लेखिकाओं ने तो अपनी भूमिकाओं में इसे स्पष्ट स्वीकारा है कि वे दुखिनी नारी की व्यथा कथा को उपन्यास के रूप में अभिव्यक्त कर रही हैं। बाद में उपन्यासों की भूमिका लेखन की प्रथा बन्द हो जाने पर तथा युग की धारा के अनुरूप औपन्यासिक 'पैटर्न' को आत्मसात् कर लेने पर लेखिकाओं ने इस प्रत्यक्ष कथन शैली को तो छोड़ दिया लेकिन इस परम्परा से वे विलग नहीं हो सकीं। दूसरे अध्याय में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि लेखिकाएँ नारी एवं पुरुष के प्रति कुछ पूर्वधारणाएँ रखती हैं। इनकी दृष्टि में नारी पीड़ा और घुटन की प्रतिमूर्ति है तो पुरुष क्रूर, अत्याचारी और वासनान्ध। फ्रायड आदि मनोवैज्ञानिकों के द्वारा निरूपित नारी मनोविज्ञान भी पुरुष के प्रति नारी के ईर्ष्या भाव को संकेतित करता है। इन मान्यताओं की अभिव्यक्ति के अवसर उपन्यासों में बहुत कम थे। अपनी ईर्ष्या को प्रत्यक्ष प्रकट करने की जिम्मेदारी से बचने के लिए इन्होंने नारी पात्रों का सहारा लिया है। अपने पात्र को सामने लाकर लेखिका उसके मुँह से पुरुषों को गालियाँ देने, उनके व्यवहार को निकृष्ट सिद्ध करने में सफल रही हैं। इस प्रकार पुरुष के आचरण का विश्लेषण *अपनी पूर्व धारणाओं* तथा नारी सुलभ ईर्ष्या के परिपार्श्व में किया गया है। इसलिए ये प्रसंग अप्रत्यक्षतः नारी की दृष्टि में पुरुष को व्यंजित करते हैं जिनमें पुरुष की वासनान्धता, *अत्याचारिता*, अहंकार, अपने को ऊँचा समझने की भावना, पलायनवादिता, भीरुता को अधिक उछाला गया है। पुरुष के इसी रूप को नारी की पीड़ा का कारण स्वीकारा गया है। इसी रूप से टकराने की चेष्टा करते हुए नारी के अहं को अधिक गरिमा देने की चेष्टा हुई है। और पुरुष के इसी रूप के समकक्ष सबल नारी चरित्रों की स्थापना करते हुए पुरुष पर नारी के अहं को प्रत्यारोपित करने की चेष्टा की गई है। इसमें यह संकेत मिलता है कि महिलाओं के लिए समाज की किसी समस्या का महत्व नहीं है। वे सिर्फ पति पत्नी सम्बन्धों की आधारशिला पर पुरुष के आचरण को दोषी पाती हैं और उसे उपन्यास के माध्यम से चित्रित करती हैं। यही कारण है कि इनके उपन्यासों में पुरुष सामान्यतः आम आदमी के सन्निकट होते हुए भी लेखिकाओं के इन प्रयासों से मानो नारियों

के विरोधी गेमें का जीव हो गया है। जिसर आचरण के नियामक बिन्दुओं में उसकी यांत्राधंता, उसका अहंकार, उसका अत्याचारी तथा कायरता से भरा हुआ पलायनवादी रूप अधिक मुखरित हुआ है।

निष्कर्ष

इस प्रकार महिलाओं की दृष्टि में जो पुरुष है वह सामान्यत आज का पुरुष ही है। उसका बाह्याचार एवं चिन्तन आम आदमी के व्यवहार को ही प्रकट करता है, किन्तु घर में पत्नी के साथ उसका आचरण दोषपूर्ण है। वहाँ वह पलायनवादी, क्रूर असहिष्णु अहंकारी यौन दुर्बलताओं से ग्रस्त है। इसलिए लेखिकाओं ने पुरुष आचरण के इस दोहरेपन को अधिक स्पष्ट किया है। वह आधुनिक विचारों का है, आधुनिक जीवन जीता है, आधुनिक जीवन मूल्यों को अपनाने में सचेष्ट है नकि अपने संस्कारों से पूरी तरह मुक्त नहीं हो सका है। नूतन मूल्यों की ओर उसका झुकाव सुविधा के भोग तक ही सीमित है। जब तक आधुनिकता उसकी सुविधाओं में बाधक नहीं बनती तभी तक वह उन्हें स्वीकारता है, किन्तु ज्योंही उसके मार्ग में कुछ भी बाधाएँ आती हैं वह तुरन्त प्राचीन संस्कारों की दुहाई देने लगता है। अस्तु वह पुरुष वैचारिक दृष्टि से उदारमना होते हुए भी व्यवहार में संकीर्ण मनोवृत्ति को ही धारण किए हुए है। अर्थात् उसके चिन्तन एवं आचरण में पर्याप्त असमानता है। यह पुरुष पूरी तरह स्वार्थ केन्द्रित है और अपने अहं की तुष्टि के लिए ही प्रयत्नशील रहता है। अपनी दुनिया से बाहर झाँककर देखने की प्रवृत्ति उसमें नगण्य है। किन्तु जहाँ कहीं वह बाहर की दुनिया के बारे में विचार प्रकट करता है वहाँ उसका चिंतन आधुनिक युवा के विचारों का प्रतिनिधित्व करता है। इस प्रकार आधुनिक महिलाओं की दृष्टि में पुरुष का जो स्वरूप प्रस्तुत हुआ है वह न केवल आज के पुरुष के स्वरूप का प्रतिनिधित्व करता है। वहाँ उसके व्यवहार की समस्त त्रुटियों का उद्घाटन भी हुआ है। प्रश्न यह है कि क्या पुरुष अपने व्यवहार को इतना बदल देगा कि जिससे नारियों को उससे किसी प्रकार की शिकायत नहीं रहे?

•



- डॉ पुरुषोत्तम आसोपा
- जन्म, 9 सितम्बर 1942 (जोधपुर)
- जोधपुर विश्वविद्यालय से स्वर्णपदक सहित स्नातकोत्तर उपाधि (1966) एवं राज विश्वविद्यालय से शोध उपाधि (1979)
- शोध विषय—'हिन्दी उपन्यास लेखिकाओं के उपन्यासों में पुरुष चित्रण'
- प्रकाशित पुस्तकें—

1 आदिकाल की भूमिका (1973, आलोचना)
2 हिन्दी साहित्य सदर्भ ग्रन्थ कोश (1976, कोश)
3 पप्पू (1980, राज साहित्य अकादमी से पुरस्कृत उपन्यास)
4 पौराणिक गाथाएँ (1981, बाल साहित्य)
5 आजादी के बाद का हिन्दी उपन्यास (1983, आलोचना)
6 महिलाओं की दृष्टि में पुरुष (1987, शोध प्रबन्ध)
7 परख सिरजण (1987, आलोचना)

- पिछले 21 वर्षों से राजस्थान सरकार के विविध महाविद्यालयों में कार्यरत
- वर्तमान पता—हिन्दी व्याख्याता, डूंगर कॉलेज, बीकानेर।